

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TEXT CUT WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182578

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81.01

Accession No. G. H 657

Author

चतुर्वेदी, फरहाद सय

Title

सावरा के राय-कला 1953

This book should be returned on or before the date last marked below.

मानस की राम-कथा

परशुराम चतुर्वेदी



किताबमहल - इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९५३ ई०

Checked 1969

Checked 1969

मुद्रक—रामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रस्तावना

‘मानस की राम-कथा’ गो० तुलसीदास कृत ‘राम चरित मानस’ का एक अध्ययन है जो उस ग्रंथ की कथा-वस्तु के आधार पर किया गया है। इसमें उसकी मूल राम-कथा के उद्गम, उद्भव एवं विकास के साथ-साथ भिन्न-भिन्न देशों में प्रचलित विविध रूपों का भी दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की गई है। इसके द्वारा पता चल सकता है कि राम-कथा न केवल एक प्राचीन तथा व्यापक विषय है, अपितु यह अत्यंत आकर्षक एवं लोकप्रिय भी है। इसकी अनेक बाते जन-जीवन को सीधे स्पर्श करती हैं जिस कारण इसने विभिन्न समाजों पर भी प्रायः एक समान प्रभाव डाला है। इंदोनेशिया से लेकर बृहत् चीन तक तथा इंदोचीन से खोतान तक के प्रदेशों में यह केवल साहित्य का ही विषय नहीं रही। इस भूभाग के अनेक अंशों में इसने वहाँ के अभिनयों और लीलाओं के माध्यम द्वारा भी अपना कार्य किया तथा वहाँ की संस्कृतियों का एक महत्त्वपूर्ण अंग-सी बन गई। इनमें से कई देशों की जनता का यह दृढ़ विश्वास है कि राम एवं रावण का वास्तविक युद्ध-स्थल हमारे यहाँ था तथा राम-कथा के सभी पात्र हमारे ही देश के थे। उन्होंने इन पात्रों एवं स्थलों के नामों में आवश्यक परिवर्तन कर लिये हैं और कतिपय घटनाओं के भी रूप बदल दिये हैं, किंतु इस प्रकार की बाह्य विभिन्नताओं के होते हुए भी, वे इसकी मूल आत्मा पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं डाल सकी हैं जिस कारण वह शीघ्र पहचान में आ जाती है। राम-कथा का विषय लेकर लिखने वाले अनेक देशों के कवि अमर हो चुके हैं और इसके विभिन्न पात्र वहाँ के समाजों में आदर्श स्थान पा चुके हैं।

गो० तुलसीदास ने राम-कथा को अपनी रचना ‘राम चरित मानस’ का विषय बना कर उसे अपने आदर्शानुसार भारतीय रूप दिया। इसकी भारतीय परम्परा कम से कम वाल्मीकि मुनि के समय से चली आ रही थी और इसका एक अपना स्वरूप था। वाल्मीकीय ‘रामायण’ के समय भारतीय समाज में व्यक्तित्व की मूर्तता अशुष्ण थी और उसका विशुद्ध रूप ही आदर्श भी कहला सकता था। किंतु ‘मानस’ की रचना के समय उस पर किसी न किसी अपूर्वता का भी रंग चढ़ाना

आवश्यक समझा गया। फलतः जिस 'राम' को आदि कवि ने एक स्पष्ट और स्वाभाविक वेश में देखा था उसका गोस्वामी जी ने विविध सामाजिक मर्यादाओं के बीच स्वागत किया और उसे पूर्ण ईश्वरत्व भी दे दिया। इस प्रकार 'मानस' की राम-कथा का मूल्यांकन करने समय उसे 'मानस' कालीन परिस्थितियों के मध्य रख कर ही देखना होगा। यह कवि अपने समय का एक सच्चा भारतीय था और इस कथा के माध्यम द्वारा वह जो कुछ भी करने में समर्थ हुआ वह उसके सांस्कृतिक आदर्श की समुचित रक्षा तथा उसके अंगों की बाह्य विशेषताओं में समन्वय लाने की प्रवृत्ति सदैव कार्यो में ही दृष्टव्य है। उसने इस कथा को एक ऐंगे साँचे में ढाला जो यहाँ के किमी भी सामाजिक स्तर के समक्ष अपरिचित नहीं जान पड़ा और उसने अपने राम एवं सीतादि के ऐंगे गजीव चित्र खोचे जो उन सभी के लिए वास्तविक व्यक्ति प्रतीत होने लगें।

प्रस्तुत पुस्तक के दो खंड हैं। इनमें एक भूमिका रूप में है और दूसरे में 'मानस' की मूल राम-कथा दी गई है। पहले खंड के प्रथम प्रकरण 'राम चरित मानस' के अंतर्गत उनके उन अंशों की विशेष चर्चा की गई है जो मूल कथा में सम्मिलित नहीं हैं। 'मानस' के ये अंश राम-कथा की पूर्व पीठिका निर्मित करते हैं और उसके मर्म के स्पष्टीकरण में सहायक भी हैं। मानसकार ने इन्हें अपनी रचना में जान-बूझ कर स्थान दिया है और इनका अपने ढंग से वर्णन कर इन्हें सर्वथा उपयोगी बना लिया है। द्वितीय प्रकरण 'राम-कथा' में, इसी प्रकार, उस विषय का एक परिचय दिया गया है जिसके साथ उसके इतिहास की एक रूप-रेखा भी सम्मिलित है और प्रसंगवश यहाँ पर इसके उन विविध रूपों का भी उल्लेख कर दिया गया है जो अन्यत्र उपलब्ध हैं। राम-कथा के रूपों में न केवल सांप्रदायिक विभिन्नता पायी जाती है, प्रत्युत उसमें देशगत एवं कालगत भेद भी मिला करते हैं। पुस्तक का आकार बहुत बड़ा जाने के भय से इस प्रकार के उदाहरण अधिक नहीं दिये जा सके हैं और विविध भाषाओं की रामायणों की ओर भी केवल संकेत मात्र-सा ही कर के छोड़ दिया गया है, उनके पूरे विवरण नहीं दिए गए हैं। इससे कुछ अधिक विस्तार उस तीसरे प्रकरण को दिया गया है, जिसका शीर्षक 'मानस की राम-कथा का स्वरूप' है। इसमें 'मानस' की राम-कथा का सार दे कर उसकी तुलना अन्य कुछ ऐसे ग्रंथों की कथा-वस्तुओं के साथ की गई है और इस प्रकार इसकी विशेषताओं की ओर संकेत भी कर दिया गया है। उपसंहार वाले प्रकरण में केवल उपर्युक्त बातों का एक संक्षिप्त रूप दिया

गया है और उन सबका निष्कर्ष भी रखा गया है। इन सबके आरंभ में 'मानसकार तुलसीदास और उनकी रचनाएँ' शीर्षक से भक्त कवि तुलसी और उनकी कृतियों का एक आलोचनात्मक संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। पुस्तक के दूसरे खंड में 'राम चरित मानस' के मूल पाठ से उन अंशों का संकलन कर दिया गया है जिनमें 'मानस' की पूरी मूल कथा आ जाती है। इस खंड के शेष अंश में 'शब्दकोष' एवं 'कथाप्रसंग' द्वारा मूलपाठ समझने के लिए कुछ आवश्यक बातें दे दी गई हैं।

'मानस की राम-कथा' का एक पूर्वरूप, सर्वप्रथम, 'संक्षिप्त राम चरित मानस' के नाम से स्वर्गीय हरिकृष्ण राय के प्रयत्न द्वारा सन् १९३४ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके भी दो खंड थे, किंतु भूमिका वाला खंड प्रकाशित होने के पहले ही खो गया और उस समय केवल मूलपाठ का खंड मात्र छप सका। अद्वितीय पुस्तक के इस द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करते समय प्रथम खंड को पूरा लिखना पड़ा और उसे इधर की खोजों के आधार पर पूर्णतः संशोधित और परिवर्द्धित रूप भी देना पड़ा। दूसरे खंड के भी पाठ में बहुत सुधार किया गया है। पुस्तक को वर्तनाम रूप देने में जिन विद्वानों अथवा कृतियों से सहायता ली गई है उनके नामों का निर्देश यथास्थल किया गया है। प्रथम खंड के 'राम-कथा' वाले प्रकरण के लिखने में मुझे सबसे अधिक सहायता डा० बुल्के की 'रामकथा' से मिली है जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ और, इसी प्रकार, मैं उन कई सज्जनों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी रचनाओं को मैंने उस खंड के अन्य प्रकरणों के लिखते समय पढ़ा है। दूसरे खंड के मूलपाठ का संशोधन मैंने 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'राम चरित मानस' (म० २००५) तथा डा० माताप्रसाद गुप्त संपादित 'राम चरित मानस' (सं० २००६) के आधार पर किया है और पाठ-भेद की चर्चा पृष्ठों की टिप्पणियों में कर दी है।

उपर्युक्त सज्जनों के अतिरिक्त मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ जिनकी सहायता से मुझे इस पुस्तक के लिए सामग्री मिल सकी है और ऐसे लोगों में मेरे अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बलिया

चैत्र सुदी १, सं० २०१०

परशुराम चतुर्वेदी

विषय सूची

प्रथम खण्ड

१. मानसकार तुलसीदास और उनकी रचनाएँ—उपलब्ध सामग्री; जीवनी की रूप-रेखा; जन्म-स्थान; जाति एवं कुल; बाल्यकाल; गुरु; गार्हस्थ्य जीवन; भ्रमण; अंतिम दिन; रचनाएँ १-३७
२. राम चरित मानस—वर्ण्य विषय; वर्णन-शैली; उद्देश्य; आदर्श की स्थापना; पौराणिकता; चरित; हेतु कथाएँ; अंतर-कथाएँ; प्रासंगिक चर्चा ३८-५१
३. राम-कथा—विविध रूप; राम-कथा की व्यापकता (भारत में): हिन्दू राम-कथा; वैदिक साहित्य; वाल्मीकीय रामायण; महाभारत; पौराणिक साहित्य; संस्कृत का ललित काव्य साहित्य; अन्य भाषा साहित्य; तमिळ; नेलुगु; मलयालम; कन्नड़ी; काश्मीरी भाषा; बंगला; उड़िया; मराठी; गुजराती; असमी; हिन्दी; फारसी और अरबी; उर्दू; लोकगीत एवं लोक-परम्परा; बौद्ध एवं जैन राम-कथा; पालि भाषा का जातक साहित्य; जैन राम-कथा; तुलनात्मक अध्ययन; राम-कथा की व्यापकता (विदेश में): खोतान, चीन और तिब्बत; इन्दोनेशिया; इन्दोचीन, श्याम और ब्रह्मदेश; पश्चिमी देश; राम-कथा की उत्पत्ति और उसका विकास ५२-१०५
४. मानस की राम-कथा का स्वरूप—राम-कथा का सारांश; राम चरित मानस और वाल्मीकीय रामायण; राम चरित मानस और अध्यात्म रामायण; राम चरित मानस और संस्कृत के नाटक; राम चरित मानस और श्री मद्भागवत; राम चरित मानस और कुछ अन्य ग्रंथ; राम चरित मानस और उसकी

समसामयिक रचनाएं; राम चरित मानस और तुलसीदास की
अन्य रचनाएँ; राम चरित मानस और रामाज्ञा प्रश्न; राम चरित
मानस और गीतावली; राम चरित मानस और कवितावली;
राम चरित मानस और बरवै रामायण; राम चरित मानस तथा
रामलला नहलू और जानकी मंगल; राम चरित मानस तथा
विनय पत्रिका और दोहावली

१०६-१६३

५. उपसंहार

१६३-१६६

द्वितीय खण्ड

६. मूल पाठ—पूर्वाद्ध

१-८६

उत्तराद्ध

८७-१७०

७. शब्द कोश

१७१-१७८

८. कथा-प्रसंग

१७९-१८५

९. नामानुक्रमणी

१८६-१८८

मानसकार तुलसीदास और उनकी रचनाएँ

(१) उपलब्ध सामग्री

गोस्वामी तुलसीदास की कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं मिलती। उसके लिए जो कुछ साधन उपलब्ध हैं, वे भी अधूरे वा अनपयुक्त-से लगते हैं। उन पर यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें, तो उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित पाते हैं। पहली श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं, जो 'भवतमाल', 'चरित', 'वार्ता', वा 'पुराण' जैसे नामों से प्रसिद्ध हैं और उनमें इस कवि का केवल एक पौराणिक परिचय-मात्र मिलता है। दूसरी श्रेणी में हम उन उल्लेखों वा विवरणों को रख सकते हैं, जिनके अधिकांश का आधार जनश्रुति रहती आयी है, किन्तु जिनमें समाविष्ट की गयी बातों का प्रसंग छेड़ते समय, उनके लेखक बहुधा अपने अनुमान से भी काम लेते रहे हैं। इनमें दिया गया कवि का परिचय अधिक काल्पनिक न होता हुआ भी अधिकतर श्रद्धामूलक है और उसमें परम्परा की रक्षा का भी स्पष्ट आग्रह है। इसी प्रकार तीसरी श्रेणी में वे रेखाचित्र आते हैं, जिनमें गोस्वामी तुलसीदास का एक आलोचनात्मक, किन्तु संक्षिप्त परिचय प्राप्त होता है तथा जिनके आधारों की प्रामाणिकता एवं व्यापकता के विषय में तर्कसंगत विचार भी किया गया पाया जाता है। ऐसे परिचयों के लेखक भरसक उन्हीं सामग्रियों का उपयोग करते हैं, जो अमंदिग्ध कही जा सकती हैं और उनसे परिणाम निकालते समय कभी-कभी इतनी सावधानी प्रदर्शित करने लग जाते हैं कि उनका निर्णय अपना अंतिम रूप नहीं ग्रहण कर पाता।

गो० तुलसीदास ने स्वयं अपने सम्बन्ध में बहुत कम कहा है। परन्तु जो कुछ भी उन्होंने संकेत किया है, वह महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। अपनी रचना 'कवितावली'

में एक स्थल^१ पर उन्होंने बताया है कि रामनाम की महिमा के कारण मेरे जैसा मनुष्य भी महामुनि वाल्मीकि-सा प्रतिष्ठा पा रहा है। इस कथन द्वारा जान पड़ता है कि वे अपने जीवन-काल से ही एक महापुरुष एवं महाकवि के रूप में सम्मानित होने आये। उनके समकालीन भक्त नाभादास (सं० १६४२ के लगभग वर्तमान) ने भी इस तथ्य को चर्चा अपनी 'भक्तमाल' के एक छप्पय (संख्या १२९) द्वारा की है। यह भी कहा है कि कुटिल कलियुगी जीवों का उद्धार करने के लिए स्वयं वाल्मीकि ऋषि ने ही तुलसीदास के रूप में अवतार धारण किया है।^२ फिर इस बात का उल्लेख 'भविष्य पुराण' के रचयिता तक अपने एक श्लोक^३ में करते हैं। इसका प्रसंग महाराष्ट्र-कवि मोगेवंत (सं० १७८६-१८५१) जैसे अन्य प्रातों के निवासी भी अपनी-अपनी रचनाओं में, इनकी प्रशंसा करते समय, छेड़ने लग जाते हैं।^४ इसी प्रकार कवि मोगेवंत ने सम्भवत कुछ ही पूर्व की रचना 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में जहाँ इन्हें कृष्ण-भक्त कवि नन्ददाम का बड़ा भाई माना गया है, वहाँ यह भी कहा गया है कि इनकी भक्ति-रस की दृढ़ता के कारण श्री गोवर्धनजी की कृष्णमूर्ति ने राममूर्ति का रूप धारण कर लिया तथा गो० विट्ठलनाथ जी के पुत्र एवं पुत्र-वधू ने इन्हें अपने में राम-सीता की भाँकी दिखा दी।^५ इन दो उदाहरणों के आधार पर इन्हें एक महान् भक्त भी सिद्ध किया गया है। इनके इस भक्त रूप का वर्णन फिर प्रियादास की 'भक्तमाल' वाली 'टीका' के लगभग एक

^१ रामनाम की प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप, तुलसी-से जग मानियत महामुनी
सो।—तुलसी-ग्रंथावली' (दूसरा खंड) पृ० २१९। (काशी नागरी प्रचा-
रिणी सभा, सं० १९८०)।

^२ 'कलि कुटिल जीव निस्तार-हित वाल्मीक तुलसी भयो'।

^३ 'वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ ब्रूवि भविष्यति'—'श्री गोस्वामी तुलसीदास'
(बाँकीपुर) पृ० ५३ की टिप्पणी।

^४ रामचन्द्र गोविन्द काटे : 'तुलसीदास-स्तव' ('सरस्वती', प्रयाग भा० १९,
पृ० ३७)।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (डाकौर), पृ० २८-३५।

दर्जन छन्दों में विस्तार के साथ मिलता है। इनका चमत्कारपूर्ण गुणगान करने की यह प्रवृत्ति उनके अन्य अनेक परवर्ती धार्मिक व्यक्तियों की कृतियों में भी पायी जाती है। कहा जाता है कि गो० तुलसीदास के बेनीमाधवदास नामक एक शिष्य (मृ०-स० १६९९) ने 'गोसाई चरित्र' नाम से उनकी एक वृहत् जीवनी भी लिखी थी, जिसका उल्लेख शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' ग्रन्थ में किया है^१ और अभीके एक सश्रिप्त रूप 'मूल गोसाई चरित' (रचना-काल स० १६८७) के आधार पर बा० श्यामसुन्दरदाम एवं डा० वन्धवाल ने स० १९८८ में 'गोस्वामी तुलसीदास' लिख कर प्रकाशित किया है। इसी प्रकार किमी भवानीदाम (संभव स० १८१० के लगभग वर्तमान) की एक रचना 'गोसाई चरित' नाम से लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी है। किसी रघुवरदाम का लिखा वैसा ही एक 'तुलसी चरित' भी प्रसिद्ध है, जो अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। इस कोटि की पुस्तकों का अधिकांश काल्पनिक बातों से ही भरा प्रतीत होता है और उनमें आयी हुई अलौकिक घटनाओं के आधार पर कुछ निश्चय नहीं हो पाता।

उपर्युक्त हमारे श्रेणी की सामग्रियों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय डा० विल्सन की 'ए स्केच अफ् दी रेलिजस मेक्ट्स अफ् दी हिंदूज' पुस्तक कही जा सकती है, जिसमें गो० तुलसीदास की जाति, गुरु-परम्परा, जन्मभूमि तथा उनके कार्यक्षेत्र आदि पर खोजपूर्ण प्रकाश डाला गया है। इसका प्रकाशन पहले-पहल स० १८८८ के 'एशियाटिक रिसर्चेज'^२ में हुआ था। इसमें जनश्रुतियों का प्रयोग आलोचनात्मक ढंग से करते हुए, लेखक ने गोस्वामी जी को कवि एवं भक्त के अतिरिक्त एक धार्मिक सुधारक के रूप में भी चित्रित किया था। गार्सी द तासी ने फिर अपनी पुस्तक 'इस्त्वार दला लितरेत्योर इन्दुई ए इन्दुस्तानी'^३ (स० १८९६) में इसी पद्धति का अनुसरण किया और अन्य ऐसे लेखकों ने भी प्रायः यही किया। ग्राउज के अंग्रेजी अनुवाद-ग्रन्थ 'रामायण अफ् तुलसीदास' की भूमिका (स० १९३८) अथवा ग्रीष्म के 'गुसाई तुलसीदास का जीवन चरित' नामक निबन्ध (स० १९५६)

^१ 'शिवसिंह सरोज' (लखनऊ, सन् १९२६) पृ० ४२७ और ४३२)।

^२ भाग १६, पृ० ४८।

^३ पृ० ५१६।

द्वारा भी इस विषय पर कोई नवीन प्रकाश नहीं डाला जा सका। वास्तव में हम शैली के अनुसार लिखने वालों में से डा० ग्रियर्सन को उल्लेखो और निबन्धों को कहीं अधिक महत्त्व दिया जा सकता है। इस विद्वान ने, सर्वप्रथम स० १९४३ की ब्रेन वाली 'अन्तर-राष्ट्रीय ओरियंटल कांग्रेस' में पढ़े गये, अपने एक निबन्ध में तुलसीदास के गम्भीर अध्ययन का सूत्रपात किया। इन्होंने फिर स० १९४६ में हम विषय को अपनी पुस्तक 'मार्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर'^१ में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया और स० १९५० में अपने 'नोट्स ऑन तुलसीदास'^२ में कवि-विषयक तिथियाँ की जाँच की तथा अनेक प्रासंगिक जन-श्रुतियों एवं कथानकों को एकत्र कर उन पर नवीन प्रकाश डाला। इस प्रकार की सामग्रियों का संग्रह की ओर फिर कई भारतीय लेखकों ने भी पूरा ध्यान दिया। श्री शिवनन्दन सहाय ने अपनी पुस्तक 'श्री गोस्वामी तुलसीदास जी' (स० १९७३) में तो केवल ऐसी ही बातों को सब कुछ-सा मान लिया और उन्हें पूरा विस्तार भी दिया। साधारण किवदन्तियों को भी इस प्रकार महत्त्व देते समय ऐसे लेखक, उन्हें प्रमाणित करने की चेष्टा में अन्य वैमं आधारों के भी उल्लेख करते जाते थे और साधारण उक्तियों के महारंगे, अपने अनुमान के बल पर, उनसे भिन्न-भिन्न परिणाम निकाला करते थे। फिर भी डा० ग्रियर्सन जैसे विद्वानों के इन प्रयत्नों के कारण लोगों की जिज्ञासा को बड़ी स्फूर्ति मिली और खोज का काम आगे बढ़ा।

श्री शिवनन्दन सहाय की उक्त रचना के प्रकाश में आने के पूर्व ही लाला सीताराम ने स० १९६५ में राजापुर के 'अयोध्याकाण्ड' की प्रतिलिपि का संपादन करते समय, उसकी 'भूमिका' में 'सूकर खेत' के गो० तुलसीदास के साथ संबंधित होने की ओर कुछ विशेष रूप से ध्यान दिलाया था।^३ फलतः सोरो, जिला एटा के निवासी

^१ पृ० ४७-५७।

^२ 'इंडियन ऐटिक्वेरी' (१८९३)।

^३ इसके सिवाय 'रूपकला' जो ने अपनी भक्तमाल की टीका (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १९१३ ई०, पृ० ७४१) में लिखा कि "श्री गोस्वामी जी का जन्मस्थान वाराह क्षेत्र (सोरो के प्रान्त अन्तर्गत में तरी या तारी था... यह वार्त्ता वहाँ जाके भलीभाँति निश्चय की है।"

प० गोविंदवल्लभ भट्ट ने 'गोस्वामी जी का जन्मस्थान—राजापुर वा सोरो?' का शीर्षक देकर लखनऊ की पत्रिका 'माधुरी' (सं० १९८६) में एक लेख लिखा और सोरो के पक्ष का समर्थन करते हुए उन्होंने कई स्थानीय प्रमाणों तथा अनुश्रुतियों का उल्लेख किया। फिर सं० १९९० में दसी बात की पुष्टि में पं० गौरीशंकर द्विवेदी ने दो ऐसे ग्रन्थों की चर्चा की, जो उस काल तक प्रसिद्ध नहीं थे, किंतु जिनके कारण इस प्रश्न का महत्व और भी बढ़ गया। इसके अनंतर सं० १९९६ तथा १९९७ में कामगंज-निवासी श्री रामदत्त भारद्वाज ने 'विशाल-भारत' (कलकत्ता) के दो अंकों^१ में गो० तुलसीदास की पत्नी रत्नावली और कवि नंददास के विषय में दो लेख प्रकाशित किये और उनके समर्थन में श्री भद्रदत्त शर्मा तथा डा० दीन दयालु गुप्त ने, कई हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार प्रस्तुत करते हुए, उनके विस्तृत विवरण तक देने की चेष्टा की। इन सामग्रियों के प्रत्यक्ष हो जाने से न केवल कवि के जन्म-स्थान का ही प्रश्न महत्वपूर्ण बना, अपितु उसके गुरु, उसकी पत्नी, उसकी जाति आदि के संबंध में भी पुनर्विचार होने लगा। इसके सिवाय खोजो विद्वान् तब से काशी, अयोध्या, राजापुर, सोरो की प्रत्येक स्थानीय वस्तु का मूल्यांकन अधिकाधिक मतर्क होकर करने लगे और कवि की उल्लेख कृतियों के भीतर आए हुए ऐसे प्रसंगों की छान-बीन करने में भी प्रवृत्त हुए, जिनका कोई न कोई संबंध कवि के जीवन में जोड़ा जा सकता है।

गो० तुलसीदास की कृतियों के आलोचनात्मक अध्ययन का कार्य वस्तुतः डा० ग्रियर्सन ने ही आरंभ कर दिया था। किंतु उन्होंने इस संबंध में केवल इने-गिने प्रश्नों को ही उठा कर उन पर प्रकाश डालने के प्रयत्न किये थे। ऐसे सभी ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन को विभिन्न प्राप्त सामग्रियों के सूक्ष्म निरीक्षण का पूरक बनाते हुए, संतुलित मनोवृत्ति के साथ अग्रसर होना और सभी बातों पर व्यापक रूप से विचार करते हुए, युक्तिसंगत मत प्रकट करना उनके लिए उस समय साध्य नहीं था। ईसाई धर्म के साथ घनिष्ठ संबंध रहने के कारण वे कभी-कभी अनेक

पादरी लोगो की शैली में भी लिखने और बोलने लग जाते थे।^१ किंतु उनकी विवेचन-पद्धति का संकेत पा कर कई भारतीय विद्वानों ने भी पृथक्-पृथक् कार्य आरंभ कर दिये और इनके अध्यवसाय के परिणाम-स्वरूप उपर्युक्त तृतीय श्रेणी की सामग्री उपलब्ध होने लग गयी, जिसके आधार पर अब किसी दिन कवि के एक तथ्यपूर्ण परिचय का प्राप्त हो जाना असंभव नहीं है। इस प्रकार की सामग्री अभी तक पर्याप्त नहीं है और इसमें अभी क्रमशः सुधार एवं वृद्धि होते जाने की सम्भावना है। स्थानीय साधनों तथा कवि की कृतियों का गंभीर अध्ययन करके उन पर अपना तर्कसंगत विचार प्रकट करने वाले डा० माताप्रसाद गुप्त, अनं में, इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन “जीवन-सामग्रियों में बहुत थोड़ा अशं ऐंसा है, जिसका उपयोग गोस्वामी जी के जीवनवृत्त-निर्माण में किया जा सकता है और उनका यह उपयोग भी बड़ी सतर्कता के साथ करना होगा।” तथा उनके “अध्ययन का आधार उन्हीं रचनाओं को मानना पड़ेगा, जिनके सबंध में संदेह करने का कोई कारण नहीं है।”^२ इस प्रकार की सामग्रियों का वे कुछ उल्लेख भी करते हैं। गो० तुलसीदास के जीवनवृत्त और उनकी कृतियों के वास्तविक मर्म के अध्ययन पर विचार करने वाले एक दूसरे सज्जन डा० राजपति दीक्षित भी, इसी प्रकार, इस कवि की जीवनकालीन परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन करते हैं और उममें कई प्रकार के परिणाम निकालते हैं। अपने कई वर्षों के अनवरत परिश्रम और अध्ययन के आधार पर गोस्वामी जी के जिस स्वरूप को^३ उन्होंने समझा है, उसकी विशेषताओं का वे परिचय देते हैं। फलतः हमें ऐसा लगता है कि गो० तुलसीदास को केवल भक्त महाकवि अथवा धार्मिक सुधारक के रूप में देखने की परम्परा आजकल

^१ ‘इंपीरियल गजेटियर’ भा० २, पृ० ४१८।

^२ डा० माताप्रसाद गुप्त : ‘तुलसी’ (साहित्य कुटीर, प्रयाग, सन् १९४९) पृ० २३।

^३ वही, पृ० २८।

^४ डा० राजपति दीक्षित : ‘तुलसीदास और उनका युग’ (ज्ञान मण्डल, काशी, सं० २००९), पृ० २।

क्रमशः पुरानी पड़ती जा रही है। विद्वानों की प्रवृत्ति अब उनके उस रूप का भी साक्षात् करने की जान पड़ती है, जो शुद्ध मानवीय है।

(२) जीवनी की रूपरेखा

जीवन-काल—गो० तुलसीदास के जीवन-काल के संबंध में कोई मतभेद नहीं पाया जाता और उनका मृत्यु-संवत् १६८० कदाचित् सभी को स्वीकार है। इसके साथ इतना और भी मान्य है कि उनका देहांत काशी के असीघाट पर हुआ था। केवल 'घटरामायन' के रचयिता इस घटना का 'नदी वरन के तीर' होना बताते हैं^१, जिससे प्रतीत होता है कि कम से कम काशी नगरी का उनका मृत्यु-स्थल होना उन्हें भी स्वीकार था। परन्तु गोस्वामी जी की मृत्यु-तिथि के विषय में दो भिन्न-भिन्न मत दीख पड़ते हैं, जिनमें से श्रावण शुक्ला सप्तमी के पक्ष में पहले अधिक लोग जान पड़ते थे। इस तिथि को सूचित करने वाला एक दोहा भी बहुत प्रचलित था, जो इस प्रकार है—

संवत सोरह सँ असी, असी गंग के तीर।

श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तजे सरीर॥

इस तिथि को 'घटरामायन' के रचयिता ने भी माना है। किन्तु 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' के साथ-साथ इस मत के समर्थक किसी दिन का भी नाम नहीं लेते जिस कारण इसकी जाँच गणना द्वारा नहीं की जा सकी है। उधर दूसरे मत अर्थात् 'श्रावण कृष्णा तीज' के पक्ष में 'मूल गोसाईं चरित' का दोहा—

संवत सोरह सँ असी, असी गंग के तीर।

सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यो सरीर॥१११॥^२

प्रस्तुत किया जाता है और यह भी कहा जाता है कि गोस्वामी जी के मित्र टोडर चौधरी के वंशज प्रतिवर्ष उसी तिथि को उनकी निधन-तिथि मनाया करते हैं। इसके सिवाय यहाँ पर तिथि के साथ शनिवार भी जुड़ा हुआ है, जिसके अनुसार गणना

^१ 'घटरामायन' (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९३२), पृ० ४१८।

^२ 'मूल गोसाईं चरित' (गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० १९९१), पृ० ३६।

करने पर यह शुद्ध भी उतर जाती है।^१ अतएव, श्रावण कृष्ण तृतीया संवत् १६८० को गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु-तिथि स्वीकार न करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

इसके विपरीत, गो० तुलसीदास की जन्म-तिथि निश्चित करने के विषय में अभी तक बहुत कुछ मतभेद दीखता आया है। 'मूल गोसाईं चरित' के लेखक जहाँ इसे,

पंद्रह सैं चौवन दिदै, कार्लिदी के तीर।

खावन मुक्कल सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर ॥२॥^२

दोहे के द्वारा श्रावण शुक्ल सप्तमी, सं० १५५४ बताते हैं, वहाँ डा० विल्सन उसके संवत् को लगभग १६०० तक ले जाते जान पड़ते हैं। अन्य लेखकों में से शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में 'संवत् १५८३ के लगभग'^३ लिखा है और 'घटरामायन' के रचयिता ने इसे,

संवत पंद्रासै नावासी। भादों सुदी मंगल एकादसी ॥^४

द्वारा भाद्रपद शुक्ल ११, मंगलवार, संवत् १५८९ ठहराया है। इस प्रकार उक्त तिथि लगभग ५० वर्षों के भीतर, प्रधानतः चार भिन्न-भिन्न संवत्तों के रूप में, निर्दिष्ट की जाती है। इनमें से डा० विल्सन वाले मत का समर्थन बहुत कम विद्वानों ने किया है और उसका कोई निश्चित आधार भी नहीं जान पड़ता। इसके

^१ डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९४२) पृ० ५७८-९। [किंतु रजनी कान्त शास्त्री ने उस दिन तीज की जगह चौथ वा पंचमी का होना सिद्ध किया है। दे० 'मानस मोमांसा' (किताब महल, इलाहाबाद), पृ० ८३-४]

^२ 'मूल गोसाईं चरित' (गीता प्रेस, गोरखपुर, १९९१), पृ० २।

^३ डा० विल्सन : 'ए स्केच....' पृ० ४१।

^४ 'शिवसिंह सरोज' (लखनऊ, सन् १९२६), पृ० ४२९।

^५ 'घटरामायन' (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९३२), पृ० ४१५।

सिवाय उसे ठीक-ठीक स० १६०० ही मान लेने पर काव की कुछ प्रौढ़ कृतियों का भी रचनाकाल उसके अपेक्षाकृत अल्पवयस में पड़ जाता है, जिससे उसमें संदेह होने लगता है। उधर सं० १५५८ का समथन 'राम चरित मानस' की 'मानस मयंक' नामक प्रसिद्ध टीका के रचयिता प० शिवलाल पाठक करते^१ हैं और 'मूलगोसाई चरित' के लेखक की उक्ति के अनुसार, उसके साथ मास, तिथि, लग्न आदि के विवरण भी दिये गये मिलते हैं तथा कई विद्वानों के कथनानुसार यही सबसे प्राचीन मत भी ठहरता है। किन्तु सं० १६८० को गोस्वामी जी की निधन तिथि मान लेने पर मृत्यु के समय उनकी अवस्था १२६ वर्षों तक की सिद्ध होती है। उनकी कतिपय रचनाओं का निर्माण-काल भी उनकी अत्यन्त वृद्धावस्था में पड़ता है। इसके सिवाय 'मूल गोसाई चरित' में दिये गए विस्तृत विवरण के आधार पर भी यह समय शुद्ध उतारता हुआ नहीं जान पड़ता।^२ शेष दो संवत्तो अर्थात् सं० १५८३ एवं १५८९ में से, प्रथम के पहले 'लगभग' शब्द जुड़ा हुआ होने से, दोनों के बीच का अन्तर इतना नहीं रह जाता, जिस पर समझौता न हो सके। फलतः केवल स० १५८९ के विषय में विचार करने पर भी कोई हानि नहीं है। सं० १५८९ का संवत् देते हुए 'घटरामायन' के रचयिता ने जो उपर्युक्त तिथि, वार, आदि का विवरण दिया है, वह गणनानुसार शुद्ध है और उसे पं० रामगुलाम द्विवेदी, डा० ग्रियर्सन जैसे लोगों ने भी स्वीकार किया है। इसके सिवाय इसे स्वीकार करते समय कोई ऐसी अड़चने भी नहीं आती, जिनकी ऊपर चर्चा की गयी है। अतएव, इसे मान लेने की ओर अधिक प्रवृत्ति होती है। सभव है, उनकी जन्म-तिथि भादो सुदी ११, मंगलवार, संवत् १५८९ ही रही हो और श्रावण कृष्ण ३, शनिवार संवत् १६८० के लगभग ९१ वर्ष की अवस्था में वे मरे हो।

जन्म-स्थान—गोस्वामी तुलसीदास के मृत्यु-स्थान काशी पर एकमत होते हुए भी, लोग उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मत रखते हैं। पहले इसके लिए चार नाम लिये जाते थे—हस्तिनापुर, चित्रकूट के निकट वर्तमान हाजीपुर, तारी

^१ 'मानस मयंक' (बाँकीपुर), १३५ वाँ दोहा।

^२ डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग), पृ० ५६३-७३।

तथा राजापुर। इनमें से अंतिम दो के विषय में अधिक दिनों तक वाद-विवाद चला था। किंतु तारी का भी नाम अब कम सुनने में आता है और उसकी जगह, राजापुर के विरुद्ध, एटा जिले के सोरों ग्राम का नाम लिया जाने लगा है। तारी वाले पक्ष के समर्थकों का कहना था कि वहाँ पर जन्म लेने के बहुत पीछे, और अपनी स्त्री की ओर से विरक्त हो जाने के अनंतर ही, गोस्वामी जी राजापुर आये थे और वहाँ भी वे बहुत काल तक रहे थे। तारी के पक्ष में डा० विल्सन^१ जैसे लोग थे, जिनका मत अधिकतर दंत-कथाओं पर ही अवलंबित रहा करता था और वहाँ पर स्पष्ट स्मारकादि का भी अभाव है। परन्तु सोरो के पक्ष का समर्थन करने वाले केवल अनुश्रुतियों पर ही निर्भर नहीं रहते। वे कुछ लिखित सामग्री भी प्रस्तुत करते हैं। राजापुर के पक्ष में कहा जाता है कि उसका समर्थन 'घट रामायन' में दिये गए राजापुर के विवरण से होता है^२ और यह बात 'मूलगोमाई चरित' में आये हुए 'रजियापुर' संबंधी प्रसंगों^३ से भी सिद्ध होती जान पड़ती है। इसके सिवाय उसकी पुष्टि वहाँ के स्मारक एवं सनदों से भी की जाती है। परन्तु सनदें गो० तुलसीदास के जन्म-स्थान की ओर स्पष्ट संकेत नहीं करती और खीचा-तानी करने पर भी, उनमें अधिक से अधिक उनके वंशजों का ही प्रसंग आता है, जो उनके अन्य कही जन्म ग्रहण करने पर भी, किसी कारण वहाँ आ गये होंगे।^४ इसके अतिरिक्त बाँदा जिले के गजेटियर में, जिसके सं० १९३१ तथा १९६६ के संस्करण हैं, राजापुर कस्बे का विवरण देते हुए, दोनों संस्करणों में यह लिखा गया है, "प्रसिद्ध यह है कि राजापुर कस्बे की स्थापना अकबर के शासनकाल में तुलसीदास ने की, जो सोरों, तहसील कासगंज,

डा० विल्सन : 'ए स्कैच.....' पृ० ४१।

"राजापुर जमुना के तीरा, जहाँ तुलसी का भया सरीरा। विधि बुन्देल खंड बोहि देसा, चित्रकोट बीच दस कोसा॥" (घ० रा०), पृ० ४१५।

"जमुनातट दूवन को पुरवा। बसते सब जातिन कौ कुरवा॥ सुकृती सतपात्र सुधी मषिया। रजियापुर राजगुरु मुषिया॥"—(मू० च०), पृ० २।

'घटरामायण' का संत तुलसी साहब की रचना होना तथा उसमें आई हुई सभी बातों का प्रामाणिक भी होना अभी तक सिद्ध नहीं किया जा सका है।

जिला एटा से आये थे।^१ राजापुर के पक्षवालो का यह कहना कि 'राम चरित मानस' के 'अयोध्याकांड' का 'तापस प्रसंग' भी राजापुर का समर्थन करता है, ठीक नहीं जान पड़ता। किसी तापस का अमुक स्थान पर प्रकट होना उसे उसकी तपोभूमि सिद्ध कर सकता है। वहाँ पर उसकी जन्म-भूमि का भी होना अनिवार्य नहीं है।

उधर सोरों पक्ष के समर्थकों ने अपने मत की पुष्टि में लगभग एक दर्जन ऐसी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज की है, जिनसे इस विषय पर न्यूनाधिक प्रकाश पड़ता है और जिनके आधार पर वे लोग न केवल गोस्वामी जी की जन्म-भूमि का ही पता देते हैं, अपितु उनकी पत्नी, उनके गुरु आदि से भी परिचित कराते हैं। इनमें से 'रत्नावलि लघु दोहा-संग्रह' एक १११ दोहों की रचना है, जिसकी रचयित्री रत्नावली गो० तुलसीदास की पत्नी कही जाती है। इस संग्रह के दोहे इस प्रकार हैं—

तोरथ आदि बराह जे, तोरथ सुरसरि धार ।

याही तोरथ आइ पिय, भजहु जगत करतार ॥

प्रभु बराह पदपूत महि, जन्म मही पुनि एहि ।

सुरसरि तट महि त्यागि असि, गये धाम पिय केहि ॥^१

इनके आधार पर समझा जाता है कि गोस्वामी जी की पत्नी ने उनकी विरक्ति के अनंतर उन्हें लक्ष्य कर के ऐसा कहा था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह उनकी 'जन्म मही' उस स्थान को ही बताती है, जो गंगा नदी के तट पर बसा है और जो 'बाराह तीर्थ' जैसे नाम से भी प्रसिद्ध है। उस तीर्थ का एक नाम 'सूकर क्षेत्र' भी है, जिसके विषय में लिखा गया 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' नामक एक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में दिये गए विवरणों से जान पड़ता है कि वे एक ऐसे स्थान का वर्णन करते हैं, जो वर्तमान सोरों से अभिन्न माना जा सकता है। 'सोरों' अथवा 'सूकर क्षेत्र' के नाम से कुछ अन्य स्थान भी प्रसिद्ध हैं, जिनमें से एक के संबंध में 'मूल गोसाई चरित' में लिखा है—

^१ डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसी' (प्रयाग १९४९), पृ० १८-१९ ।

^२ 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९३९), पृ० ३०२ पर उद्धृत ।

कहत कथा इतिहास बहु, आये सूकर षेत।

संगम सरजू घाघरा, संत जनन सुष देत ॥१०॥^१

यह 'सूकर षेत' वा 'सूकर क्षेत्र' सरजू और घाघरा के संगम पर आज भी प्रसिद्ध है। किन्तु 'वाराह पुराण' के अनुसार उसे गगातटवर्ती होना चाहिए।^२ सोरो को कुछ लोगो ने चित्रकूट के निकट का सोरों भी माना है और उसे गो० तुलसीदास का पवित्र स्थान समझ कर वहाँ उनका 'आश्रम' भी स्थापित किया है। किन्तु उपर्युक्त उल्लेखों के रहते उसे गोस्वामी जी की जन्म-भूमि मान लेना उचित नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार यह कहना भी समीचीन नहीं जान पड़ता कि उक्त एटा जिले का सोरो किसी अन्य तुलसीदास की जन्मभूमि रहा होगा,^३ क्योंकि वैसे ही परिचय वाले किसी दूसरे तुलसीदास का पता भी नहीं है। इसके सिवाय राजापुर वाले पक्ष के समर्थकों ने वहाँ पर पायी जाने वाली 'मानस' के 'अयोध्याकांड' की एक प्रति प्रस्तुत की है, जिसे वे स्वयं कवि के हाथों की ही लिखी बताते हैं, किन्तु जिसके प्रामाणिक होने में कुछ विद्वानों ने संदेह प्रकट किया है। सोरों में उसी 'मानस' ग्रन्थ के 'बालकांड' 'अयोध्याकांड' एवं 'अरण्यकांड' की, भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा लिखी, तीन प्रतियाँ मिली हैं, जिनमें से दो का लिपि-काल सं० १६४३ दिया है। इस प्रकार की हस्त-लिखित प्रतियों में प्रायः अनेक त्रुटियाँ पायी जाती हैं और ये सदा विश्वसनीय भी नहीं समझी जाती, किन्तु ऐसे साहित्य का किसी एक स्थल-विशेष के निकट प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना उसके पक्ष की ओर कुछ बल देता अवश्य जान पड़ता है।

अतएव, हो सकता है कि गो० तुलसीदास का राजापुर, जिला बाँदा, से बहुत घनिष्ठ संबंध रहा हो, जैसा वहाँ के स्मारक प्रस्तर-मूर्ति से भी प्रतीत होता है। किन्तु केवल इसी के कारण उसे उनकी जन्म-भूमि भी मान लेना तर्क-संगत नहीं कहा जा सकता। 'वाराह तीर्थ' वा 'सूकर क्षेत्र' को उनका जन्म-स्थान बताने वाली सामग्रियों का भी महत्व कुछ कम नहीं जान पड़ता, जिस कारण इस प्रकार का अनुमान करना

^१ 'मूल गोसाईं चरित' (गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० १९९१) पृ० ६।

^२ 'वाराह पुराण भाषा' (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ३१६।

^३ 'बीणा' (इन्दौर) मई, सन् १९३८ ई०।

भी कदाचित् असंगत न कहा जाएगा कि उनका जन्म सोरों, जिला एटा, वा उसके निकट ही कही हुआ होगा और वे वहाँ से फिर राजापुर आये होंगे, जैसा 'गजेटियर' का भी संकेत है।

जाति एवं कुल—गो० तुलसीदास का जाति से ब्राह्मण होना उनके एक उल्लेख में ही सिद्ध है। 'कवितावली' में एक स्थल पर वे कहते हैं—

ब्राह्मण ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं,
त्योही तिहारे हिये न हित हौं॥१०२॥^१

किन्तु अपने कुल वा आस्पद के संबंध में उन्होंने स्पष्ट रूप से कही नहीं लिखा है, जिस कारण लोगों ने इस विषय में भिन्न-भिन्न मत दिये हैं। डा० ग्रियर्सन^२ जैसे कुछ विद्वानों का कहना है कि वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे और एक जनश्रुति उन्हें 'पति औजा' का 'दूबे' तक बताती है।^३ परन्तु इस मत का एक पुष्ट आधार गोस्वामी जी का अपने लिए 'जायोकुल मंगन' कहना^४ समझा जाता है, जो केवल 'मंगन' के अर्थ की खीचा-तानी का परिणाम है। इसी प्रकार उक्त जनश्रुति का समर्थन भी 'मूल गोसाईं चरित' की कुछ पंक्तियों^५ द्वारा किया जा सकता है, जिसकी प्रामाणिकता में अभी तक संदेह किया जाता है। उधर मिश्रबन्धु जैसे कुछ विद्वानों का कथन है कि गोस्वामी जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे^६ और श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित ने 'विनयपत्रिका' के एक पद में 'वाजपेयी' शब्द आने के कारण उसके द्वारा इसका

^१ 'तुलसी ग्रन्थावली' (का० ना० प्र० सभा) दूसरा खंड, पृ० २२७।

^२ इंडियन ऐंटिक्वेरी (सन् १८९३), पृ० २६४।

^३ 'तुलसी पाराशर गोत दूबे पतिऔजा के'।

^४ 'तुलसी ग्रन्थावली' (का० ना० प्र० सभा) दूसरा खंड, पृ० २१९।

^५ सरदार सुदेस के विप्र बड़े। सुचिगोत परासर टेक कड़े। सुभथान पतेजि रहे पुरषे। तेहिते कुल नाम पड़ो भुरषे। जमुना तट दूवन को पुरवा, इत्यादि पृ० २।

^६ 'हिन्दी नवरत्न' (गंगा पुस्तक माला, लखनऊ), पृ० ६८।

समर्थन किया है।^१ परन्तु मिश्रबंधु का मत राजापुर के निकट कान्यकुब्जो की बस्ती होने तथा कतिपय प्रथाओं पर अवलंबित है जो अधिकतर असंगत जान पड़ता है और 'वाजपेयी' वाले उल्लेख से भी उसका सम्बन्ध^२ नहीं। एक तीसरा मत उन लोगों का है, जो गोस्वामी जी का जन्म-स्थान सोरो होने के कारण, उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण बताते हैं और उन्हें शुक्ल भी कहते हैं। इस सम्बन्ध में 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' तथा 'विनय-पत्रिका' के एक पद में^३ आये हुए 'दियो सुकुल जनम' वाक्य के प्रमाण दिये जाते हैं। परन्तु, 'विनय-पत्रिका' वाले 'सुकुल' शब्द का अर्थ प्रसंग से स्पष्ट ही 'अच्छा कुल' जान पड़ता है, 'शुक्ल' वा 'सुकुल' आस्पद नहीं और 'वार्त्ता' तथा अन्य इस प्रकार के उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रामाणिकता अभी तक विचाराधीन समझी जाती है। फलतः गोस्वामी जी के सरयूपारीण, कान्यकुब्ज अथवा सनाढ्य होने के विषय में भी अन्तिम निर्णय देना कठिन जान पड़ता है। यह प्रश्न उनके समय के लिए कदाचित् उतना महत्त्वपूर्ण भी नहीं।

बाल्यकाल—गोस्वामी तुलसीदास के बाल्यकाल की स्थिति पर स्वयं उन्हीं की पंक्तियों द्वारा पूरा प्रकाश पड़ता है। कवितावली के एक स्थल पर वे इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

मातुपिता जग जाय तज्यो,
विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई
नीच, निरादर-भाजन, कादर,
कूकर टूकन लागि ललाई ॥^४

अर्थात् माता-पिता ने मुझे जन्म दे कर मेरा परित्याग कर दिया, और ब्रह्मा ने भी मेरे ललाट में भाग्य की कोई उत्तम रेखा नहीं बनायी थी, इस कारण मैं नीच

^१ 'माधुरी' (लखनऊ) भा० २, पृ० ८५।

^२ 'कौन धौंसोमजागो अजामिल अधम कौन गजराज धौं वाजपेयी'—पद १०६ (तु० ग्रं०), पृ० ५१७।

^३ 'दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर, हेतु जो फल चारि को'—पद १३५, पृ० ५२८।

^४ 'कवितावली' (तु० ग्रं०, २१४)।

और अपमानित हो कर कुत्ते की भाँति टुकड़ों के लालच में घूमा करता था। फिर इसी प्रकार 'कवितावली' में ही वे अन्यत्र इस रूप में भी कहते हैं—

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारिही चनक को॥^१॥

अर्थात् ऐसे दरिद्र कुल में मेरा जन्म हुआ कि माता-पिता को उस समय के बधावे को भी सुन कर, अपनी विवशता के कारण, महान कष्ट का अनुभव होने लगा। मैं अपनी बाल्यावस्था से ही दूसरों के द्वार पर दीन बन कर हाथ फैलाता फिरा और उस समय के प्राप्त चार चने के दानों को भी चारो पदार्थ समझता रहा। इसी प्रकार 'विनय पत्रिका' के एक पद में भी वे कहते हैं—

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनि दस दिसा दुखदोष दलन छम, कियो
न संभाषन काहूँ॥

तनु जन्यो कुटोल कीट ज्यों तज्यो मातुपिताहूँ।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग, मोसों

सकुचत छुइ सब छाहूँ॥^१॥

अर्थात् मैं अपनी दीनता की चर्चा द्वार-द्वार पर जा कर किया करता था और अपने दाँतों को दिखाता हुआ लोगों का चरण-स्पर्श करता रहा। संसार में ऐसे दयालुओं की कमी नहीं थी, जो मेरी पीड़ा को दूर कर सकते थे, किन्तु किसी ने मुझसे सीधी बात भी नहीं की और वे मेरी छाँह छूने में भी संकोच करते रहे। उस समय मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म दे कर कुटिल कीट की भाँति छोड़ दिया था। इसके सिवाय उनके 'बाहुक' की कुछ पंक्तियों से यह भी प्रतीत होता है कि उस

^१ 'कवितावली' (तुलसी ग्रंथावली, पृ० २१९)।

^२ तुलसी ग्रंथावली (का० ना० प्र० सभा) दूसरा खंड, पृ० ५९९

दुर्दशा के अवसर पर उन्हें हनुमान् की ओर से ही सहायता मिली थी।^१ अतएव, जान पड़ता है कि गोस्वामी जी के माता-पिता ने उन्हें अपनी हीनावस्था के कारण, माँग खाने के लिए छोड़ दिया था और वे दूसरों के द्वार पर जा-जा कर टुकड़ों के लिए हाथ फैलाते फिरते थे, जब तक हनुमान् जी की कृपा से उन्हें कुछ सहायता न मिल सकी थी।

गुरु—गोस्वामी तुलसीदास ने अपने गुरु के विषय में श्रद्धा प्रदर्शन करते हुए भी उनके नाम का निर्देश कदाचित् कही भी नहीं किया है। 'मानस' की 'वन्दना' में उनका

'वन्दौ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि'

कहना अपने गुरु को केवल 'स्वयं भगवान् स्वरूप' बतलाने मात्र से अधिक नहीं समझा जा सकता, जब तक इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण न हो। फिर भी लोगो ने, संभवतः 'नररूपहरि' के ही आधार पर उनके गुरु का नाम नरहरिदास, नरहर्यानन्द वा नरसिंह चौधुरी रख देना उचित समझा है। 'मूल गोसाईं चरित' में उस गुरु को अनन्तानन्द का शिष्य बतलाया गया है और सोरों की सामग्री के अनुसार उस स्थान पर उनका एक मन्दिर भी दिखाते हैं। इसके विपरीत डा० विल्सन ने उस गुरु का नाम किसी जनश्रुति के आधार पर जगन्नाथदास लिखा है और भविष्य पुराण में उन्हें किसी राघवानन्द का शिष्य ठहराया गया है, जो काशी-निवासी थे और जिन्होंने इन्हें रामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित भी कर लिया था। परन्तु अभी तक इनमें से किसी मत के पक्ष में कोई ऐतिहासिक आधार नहीं पाया गया है और ये केवल अनुमान वा कल्पना पर ही आश्रित जान पड़ते हैं। फलतः इस सम्बन्ध में अभी निश्चित रूप में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी के गुरु कोई राम-भक्त महात्मा थे, जिन्होंने, उन्हीं के अनुसार, उन्हें राम-कथा 'सूकरखेत' में सर्वप्रथम उनकी 'अचेत' अवस्था में सुनायी थी और फिर उसे समय-समय पर कई बार दुहराया भी था। इसका प्रभाव उन पर इतना पड़ा कि उन्होंने उक्त विषय

को सदा के लिए अपना लिया और उसीके आधार पर अपनी पुस्तक 'राम चरित मानस' की रचना भी की। जैसे,

मैं पुनि निज गुरु सन सुनो, कथा सो सूकरखेत ।

समुझो नहिं तसि बालपन, तब अति रहऊँ अचेत ॥२०॥

तदपि कही गुरु बारहि बारा ॥

समुझि परी कछु मति अनुसार ॥

भाषाबद्ध करबि मैं सोई ।

मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥^१

इसके सिवाय गोस्वामी जी के गुरु ने उन्हें 'राम-भजन' का महत्त्व भी उस समय बतलाया था, जब वे अनेक मतवादों की उधेड़-बुन में पड़े हुए थे। जैसे,

बहुतमत सुनि गुनि पंथ पुराननि जहाँ तहाँ भगरोमो ।

गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहि लगत राज डगरोसो ॥

जब कभी विभिन्न सम्प्रदायों की समस्या उनके सामने आ खड़ी होती थी, उन्हें गुरु-निर्दिष्ट मार्ग शांति प्रदान कर देता था।

गार्हस्थ्य जीवन—गोस्वामी तुलसीदास ने गार्हस्थ्य जीवन पर स्वयं प्रायः कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। उनके 'बाहुक' वाले एक कवित्त के आधार पर केवल इतना संकेत मिलता है कि अपने बचपन में भिक्षावृत्ति से जीवन व्यतीत करते हुए राम-भक्ति की ओर उन्मुख हो जाने पर भी, एक बार वे 'लोकरीति' में पड़ गये थे और इसके मोह में आ कर उन्होंने 'राम राय' की 'पुनीति प्रीति' का परित्याग कर दिया था। जैसे,

बालपने सूधे मन राम सनमुख गयो,

रामनाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं ।

परयो लोकरीति में पुनीत प्रीत राम राय,

मोह बस बँठो तोरि तरक तराक हौं ॥इ०^२

^१ तुलसी ग्रंथावली (का० ना० प्र० सभा) प्रथम खण्ड, पृ० १८ ।

^२ वही, दूसरा खण्ड, पृ० ५५०-१ ।

^३ तुलसी ग्रंथावली (दूसरा खंड, पृ० २६३) ।

परंतु केवल इतने आधार पर यह निर्णय कर लेना कि उक्त 'लोकरीति' से उनका अभिप्राय वैवाहिक जीवन था, उचित नहीं। फिर भी लोगों ने उनकी पत्नी, उनकी समुराल, उनकी आसक्ति, उनके पुत्र आदि के विषय में विविध प्रकार की कल्पनाएँ कर ली हैं। उनकी पत्नी को तो यहाँ तक महत्त्व दिया गया है कि उसीके किसी कथन पर इन्हे पूर्ण वैराग्य की उपलब्धि हो सकी थी। इस सबध में सोरो की सामग्री द्वारा इतना और भी प्रकाश पड़ता है कि उनकी पत्नी रत्नावली एक अच्छी कवयित्री भी थी। यदि गोस्वामी जी का जन्म-स्थान सोरो अथवा उसके निकट का कोई गाँव निश्चित किया जा सके, तो रत्नावली के 'लघुदोहा सग्रह' की भी प्रामाणिकता सिद्ध की जा सकती है। वैसी दशा में, सभवतः कवि मुरलीधर का 'रत्नावलि-चरित' भी प्रामाणिक समझा जा सके और दोनों ग्रंथों के आधार पर कवि के गार्हस्थ्य जीवन की एक भाँकी मिल जाए। उस समय कहा जा सकेगा कि गोस्वामी जी का विवाह सं० १६१२ में, उनकी २३ वर्ष की अवस्था में हुआ था, गौना २७वें वर्ष में हुआ और अपनी ३८ वर्ष की वयस में, सभवतः सं० १६२७ में किसी समय, उन्होंने उनकी किसी लगती हुई बात के कारण, उसका परित्याग कर दिया। इन पंद्रह वर्षों के गार्हस्थ्य जीवन में, कवि मुरलीधर के अनुसार, गोस्वामी जी अपनी पत्नी के साथ बड़े आनन्द के साथ रहे और उन्हें तारा नामक एक पुत्र भी हुआ। उनकी जीविका कथावाचक की रही और वे इसके द्वारा पर्याप्त धन एवं सम्मान का अर्जन भी करते रहे। इस बीच उन्हें उस पुत्र की मृत्यु के अतिरिक्त अन्य किसी घटना से कष्ट नहीं मिला। अंत में उनकी प्रेमिका पत्नी ने ही एक दिन उनसे कुछ ऐसी बात कह दी, जिस कारण उसके प्रति उनकी आसक्ति भगवद्-भक्ति में परिवर्तित हो गयी। वह स्वयं कहती है—

धिक मोकहँ मो वचन लगि, मोपति लह्यो विराग।

भई वियोगिनि निज करनि, रहू उड़ावत काग ॥'

डा० माताप्रसाद गुप्त ने अनुमान किया है कि गोस्वामी तुलसीदास की

'हिंदुस्तानी' (प्रयाग, सन् १९४०), पृ० ५ पर उद्धृत।

गोसाई' उपाधि स्थान-विशेष के "महंत की गद्दी मिलने पर प्राप्त हुई थी" और इसके समर्थन में वे उपर्युक्त 'बाहुक' वाले कवित्त की आगे आने वाली पंक्तियाँ—

तुलसी गोसाई भयो भोड़े दिन भूलि गयो

मादि उद्धृत करते हैं तथा असीघाट वाले गोस्वामी जी के स्थान का सं० १७९७ तक 'तुलसीदास का मठ' कहलाना बताते हैं। परन्तु इसके लिए अभी अन्य प्रमाण भी चाहिए।

भ्रमण—गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने भारत के कई प्रमुख स्थानों का भ्रमण भी किया होगा। 'कवितावली' तथा 'विनयपत्रिका' की कतिपय पंक्तियों में जो उन्होंने चित्रकूट का वर्णन किया है उससे जान पड़ता है कि वे वहाँ अवश्य गये होंगे। इसी प्रकार 'मानस' में भी उन्होंने बताया है कि इन्होंने स० १६३१ की चैत्र सुदी ९ को भौमवार के दिन इस ग्रंथ की रचना अवधपुरी में आरम्भ की उससे स्पष्ट है कि वे अयोध्या में भी कुछ काल तक रहे होंगे और वहाँ रह कर उन्होंने इस ग्रन्थ के कुछ अंशों को लिखा होगा। अयोध्या में एक स्थान पर 'तुलसी चौरा' भी बना हुआ है, जिसके विषय में लेखते हुए मोहन साई ने कहा है कि गोस्वामी जी वहाँ पर काशी से होते हुए आये थे। 'कवितावली' के एक स्थल पर उन्होंने 'तीर्थराज' के प्रसंग में कहा है—

सोहं सितासित को मिलिबो,

तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरा।

जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने प्रयाग की त्रिवेणी का भी प्रत्यक्ष दर्शन किया होगा। तीर्थराज का बहुत सुन्दर वर्णन 'मानस' में भी है। 'कवितावली'

'तुलसी' (साहित्य कुटीर, प्रयाग, १९४९), पृ० ५६।

'तुलसी ग्रंथावली' दूसरा खंड, पृ० २३७-८ (कवित्त १४१ और १४२) तथा पृ० ४७१-२ (पद २३ और २४)।

'राम चरित मानस' (बालकांड, ३४)।

'माधुरी' (लखनऊ) वर्ष १२, खंड २, पृ० ३६४।

'तुलसी ग्रंथावली' दूसरा खंड, पृ० २३८ (कवित्त १४४)।

में इसी प्रकार त्रिवेणी एवं चित्रकूट के वर्णन के पहले ही गोस्वामी जी ने सीतावट के विषय में भी तीन कवित्त लिखे हैं। उस बटवृक्ष का उन्होंने गंगा नदी के निकट होना बताया है और उसके पास वाले वाल्मीकि ऋषि के आश्रम तथा लव-कुश के 'जनमथल' की ओर भी संकेत किया है।^१ परन्तु केवल ऐसे उल्लेखों के ही आधार पर यह निर्णय करना कठिन है कि उक्त स्थानों अथवा अन्य स्थलों की भी यात्रा उन्होंने किस क्रम में और कब-कब की थी।

यदि सोरों वा उसके निकट गोस्वामी जी की जन्म-भूमि मान ली जाए और वहाँ से विरक्त हो कर उनका राजापुर की ओर बढ़ने अथवा वहाँ पर कुछ काल तक ठहरने का भी अनुमान कर लिया जाए, तो यह भी कहा जा सकता है कि वहाँ से वे चित्रकूट गये होंगे और फिर काशी को, जहाँ पर अधिक काल तक उनका रहना कई कारणों से समझा जा सकता है, उन्होंने अपना निवास-स्थान बना लिया होगा। काशी के असीघाट पर असी और गंगा के संगम से लगा हुआ एक तुलसीघाट है, जिसके निकट गोस्वामी जी के समय की कतिपय सामग्रियाँ दिखायी जाती हैं। वहाँ पर उनका एक चित्र तथा कुछ कागज-पत्र भी हैं, जिनकी प्रामाणिकता में प्रायः संदेह नहीं किया जाता। इसी प्रकार काशी के ही 'गोपाल मंदिर' एवं 'प्रह्लाद घाट' के पास भी उनके समय की कुछ वस्तुएँ तथा चित्रादि रखे हुए हैं, जो उनके काशी-निवास को प्रमाणित करते हैं। काशी में वे अपने देहात-समय, सं० १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया, तक रहे। किन्तु संभव है, वे वहाँ स्थायी रूप से रहने लगने पर भी कभी-कभी अन्यत्र जाते रहे होंगे। काशी में उनके सर्वप्रथम जाने के विषय में 'घटरामायन' के रचयिता ने जो समय दिया है, वह सं० १६१५ का है। किन्तु वह गणनानुसार शुद्ध नहीं उतरता।^२ उधर 'मानस' (किष्किधाकांड के प्रथम सोरठे) से समझा जाता है कि उसकी रचना के समय तक वे वहाँ अवश्य आ गए होंगे और 'कवितावली' के एक छंद में तो वे स्पष्ट कह देते हैं—

^१ 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खण्ड, पृ० २३६ (कवित्त १३८, १३९ और १४०)।

^२ डा० माताप्रसाद गप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग, सन १९४२), पृ० ५८१-२।

चैरो राम राय को मुजस सुनि तेरो हर,
पाँय तर आइ रह्योँ सुरसरि तीर ह्योँ ॥^१

जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि वे उस समय तक पूरे राम-भक्त भी हो चुके थे।

जब कभी गोस्वामी तुलसीदास काशी पहले-पहल गये हों अथवा जिस किसी समय से वे वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे हो, उनकी निश्चित तिथियाँ ज्ञात नहीं होती। उपर्युक्त संकेतों के अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेखों के आधार पर भी उनके किसी समय-विशेष पर वहाँ उपस्थित रहने का पता अवश्य चलता है। जैसे, 'दोहावली' के दोहे—

अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ।

केहि विधि विनती विस्व की, करौँ विस्व के नाथ ॥२४०॥^२

तथा 'कवितावली' की पंक्ति—

बीसी विस्वनाथ की विषाद बड़ो बारानसी

बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की ॥^३

से विदित होता है कि जिस समय कवि ने इनकी रचना की थी, उस समय वहाँ पर 'रुद्रबीसी' का प्रभाव था। उस समय की अवधि सं० १६५६ और १६७६ के बीच पड़ी थी, जो गणनानुसार सम्भव समझा जाता है, जो कई अन्य बातों पर विचार करने पर भी, ठीक माना जा सकता है।^४ इसी अवधि के भीतर मीन के शनि का भी प्रभाव था, जो सं० १६६९ से सं० १६७१ तक रहा और जिसकी चर्चा भी कवि ने 'कवितावली' के ही १७७वे कवित्त द्वारा की है।^५ गोस्वामी जी ने इसके सिवाय,

^१ 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खंड, पृ० २४३।

^२ वही, पृ० १२४।

^३ वही, पृ० २४५।

^४ डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग), पृ० १५३।

^५ 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खण्ड, पृ० २४७।

किसी महामारी के प्रकोप का भी हृदयद्रावक वर्णन किया है और काशी-निवासियों की विपत्तियों का चित्र खींचा है। वे इसके प्रभाव का विवरण कम से कम पाँच कवित्तों (१७३-६ और १८३)^१ द्वारा देते हैं और देवताओं से, इसकी निवृत्ति के लिए, प्रार्थना भी करते हैं। वे कहते हैं—

संकर सहर सर नरनारि वारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरिजात,
भभरि भगत, जलथल मीचु मई है॥
देव न दयालु महिपाल न कृपालु चित,
वनारसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरि तुही सुधारि लई है॥१७६॥

परन्तु वे इस महामारी के प्रसार का कोई निश्चित समय बतलाते नहीं जान पड़ते। कहते हैं कि ताऊन की महामारी सं० १६७३ में भारत में पहले-पहल फैली थी और वह कदाचित् सं० १६८१ तक इस देश में बनी रही थी।^२ जैन कवि बनारसीदास (सं० १६४३ जन्मकाल) का भी कहना है—

सोलह सै तिहत्तरे साल। अगहन कृष्ण पक्ष हिमकाल॥
× × ×
इस ही सम ईत विस्तरौ। परो आगरै पहिली मरी।
जहाँ-तहाँ भागे सब लोग। परगट भया गाँठि का रोग॥
निकसै गाँठि मरै छिन माँहि। काहू की बसाय कछु नाहीं।
चूहे मरहि वेद मरि जाहि। भय सौ लोग अन्न नहि धाय॥^३

^१ तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २४६-५०।

^२ स्मिथ : 'अकबर दि ग्रेट मुगल' पृ० ३९ तथा ईलिएट : ए हिस्ट्री अफ इंडिया' भा० ६ पृ० ४०६।

^३ 'अर्द्धकथा' (प्रयाग सन् १९४३), पृ० ४२।

जिससे स्पष्ट है कि ताऊन वा प्लेग का प्रभाव सं० १६७३ में आगरे तक भी पहुँच गया था। सम्भव है, यह उसीके निकट काशी तक भी आ गया हो। अतएव, अनुमान किया जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास के स्थायी रूप से काशी में रहने लगने का समय 'रुद्रवीसी' (सं० १६५६-१६७६),^१ मीन के शनि (सं० १६६९-१६७१) एवं महामारी (सं० १६७३-८१) के समय के भीतर उनके मृत्यु-काल, सं० १६८० तक अवश्य रहा होगा। जान पड़ता है कि काशी में रहते समय ही उन्हें कई प्रकार के लोगों की ओर से विरोध एवं अपमान के व्यवहार का भी अनुभव हुआ होगा। इस बात की ओर उन्होंने अपनी रचना 'कवितावली' तथा 'विनयपत्रिका' में स्पष्ट संकेत किया है और उसके प्रति अपना भाव भी प्रकट किया है। उनका कहना है कि कुछ लोग तो मुझे 'कुसाज दगाबाज' बतलाते हैं और कुछ लोग सच्चे राम-भक्त के रूप में भी मेरी चर्चा करते हैं, किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं निर्द्वन्द्व रह कर सभी कुछ सहन कर लेता हूँ।^२ कुछ लोग ऐसे भी थे, जो इनकी जाति-पाँति के सम्बन्ध में कटाक्ष किया करते थे और कभी-कभी इन्हे ढोंगी तक कह दिया करते थे। ऐसे लोगों के प्रति भी इनका यही कहना था कि चाहे मुझे कोई 'धूत', 'अवधूत', 'रजपूत' अथवा 'जोलहा' तक कहता रहे, मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। मुझे किसी के यहाँ बेटा-बेटी का विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं करना है, न मैं ऐसी बातों में किसी की सहायता वा सहयोग का ही अभिलाषी हूँ। मुझे केवल राम से ही काम है।^३ इसके सिवाय एक-आध बार गोस्वामी जी को काशी के मालिक विश्वनाथ को इस बात का उलाहना भी देना पड़ा था, कि उनके भक्त कहे जाने वाले लोग भी कभी-कभी मेरे प्रति शत्रुभाव प्रकट करते हैं; कृपा-पूर्वक उन्हें ऐसे करने से रोक दीजिए।^४ परन्तु इस प्रकार के दुर्व्यवहारों का काल भी निश्चित नहीं है।

^१ अथवा सं० १६५४-५ से लेकर सं० १६७४-५ तक—दे० 'मानस मीमांसा', पृ० ७७।

^२ 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खंड, पृ० २२८ (क० १०८)।

^३ वही, पृ० २२७-८ (सर्वेया १०६)।

^४ वही, ४६३ (पद ८)।

अन्तिम दिन—गोस्वामी तुलसीदास को काशी में रहते समय न कवल रुद्रबीसी, मोन के शनि एव महामारी के कारण उत्पन्न लोगों के कष्टों को अपनी आँखों देवना पड़ा था और नीच स्वभाव वालों की ओर से किये गए अपने प्रति विविध प्रकार के अपमानों को सहन करना पड़ा था, अपितु कई बार अपने अन्तिम दिनों में, उन्हें अनेक शारीरिक व्याधियाँ भी भेलनी पड़ी थी, जिनकी शांति के लिए वे देवताओं से प्रार्थना किया करते थे। महामहोपाध्याय प० मुधाकर द्विवेदी का तो यहाँ तक अनुमान था कि गोस्वामी जी का देहात भी संभवतः प्लेग की गिल्टी निकलने से ही हुआ था। परन्तु, इसके लिए कोई निश्चित आधार उन्होंने नहीं दिया है। डा० ग्रियर्सन ने भी इस विषय में अपना संदेह प्रकट किया है।^१ गो० तुलसीदास को बाहु-पीड़ा से कदाचित् सबसे अधिक कष्ट हुआ था और वह एक दीर्घ काल तक उन्हें सताती भी रही थी। अपनी 'दोहावली' के कुछ दोहों^२ में उन्होंने इस बाहुरोग की शांति के लिए हनुमान्, विष्णु, एवं राम से प्रार्थना की है और अपने 'बाहुक' के अन्तिम छंदों^३ द्वारा अपनी 'बाहुपीर' को दूर करने के लिए वे अपने सहायक अंजनीकुमार के सामने आर्तभाव से गिड़गिड़ाते तक दोख पड़ते हैं। गोस्वामी जी के अनुसार यह पीड़ा कदाचित् सर्वप्रथम 'वात' के कारण आरम्भ हुई^४ और फिर भूत-प्रेत के प्रभाव से^५ दायी बांह से सारे शरीर में फैल गयी^६। इस रोग को दूर करने के लिए उन्होंने पहले औषधि, यंत्र, मंत्र, उपचार आदि भी किए और मनौतियाँ भी कीं किन्तु किसी से कुछ भी नहीं हुआ।^७ वह रोग शांत न हो सका और पीड़ा बराबर बढ़ती ही गयी। जैसे,

औषध अनेक जंत्र मंत्र टोटकादि किये,
वादि भये देवता, मनाये अधिकाति है।

^१ जर्नल अब् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, जुलाई, सन् १९०३, पृ० ४५०।

^२ 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खंड, पृ० १२४ (दो० २३४-६)।

^३ वही, पृ० ५७-६५।

^४ वही, पृ० २५८ (क० ४२)।

^५ वही, पृ० २५७ (क० २६)।

^६ वही, पृ० २६२-३ (क० ३७ और ३८)।

^७ 'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खंड, पृ० २६०।

और इसका कारण उन्हें अपने प्रति हनुमान् की उदासीनता ही जान पड़ी। परन्तु 'बाहुक' के ही एक अन्य कवित्त^१ से यह भी ध्वनि निकलती है कि यह रोग अन्त में राम-कृपा से दूर हो गया।

गोस्वामी तुलसीदास को किसी समय 'घोर बरतोर' के फोड़े भी निकल आये थे, जिनके कारण होने वाले कष्टों का वर्णन उन्होंने किया है। इस विषय में वे यह भी कहते हैं कि इस प्रकार व्याधियाँ उन्हें अपनी साधारण स्थिति से उठकर सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के अनंतर उत्पन्न गर्व के कारण हुई थी^२। य बरतोर के फोड़े कदाचित् रुधिर और पीव भी देते रहते थे और उनके इस प्रकार बहने को कवि 'रामराय के लोन' का 'फूटि फूटि निकलना' समझता था। इस रोग की भी किसी निश्चित तिथि का पता नहीं चलता और न इसकी अवधि के ही विषय में कोई अनुमान करने का आधार मिलता है। गोस्वामी जी के समकालीन जैन कवि बनारसीदास ने लिखा है कि सं० १६५९ के पौष मास में मुझे अकस्मात् एक ऐसा 'बात का रोग' हो गया, जिससे मेरा सारा शरीर 'कुष्ठरूप' हो गया। 'हाड-हाड' में व्यथा उत्पन्न हो गयी। केश एवं रोम टेढ़े हो गए और अनगिनत फोड़ों के निकल आने से हाथ और पैर भी चौरंगी बन गये। कोई साथ में भोजन नहीं करता था, न निकट आता था और जो भोजनादि मुख में डालने अथवा शरीर में दवा लगाने औरतें आती थी, वे भी नाक मूँद कर उठ जाती थी। मैं एक नाई की दवा से लगभग छह मास में नीरोग हो सका।^३ पता नहीं, गोस्वामी जी का बरतोर भी किसी 'बात' के ही कारण हुआ था वा नहीं और वह किसी प्रकार अच्छा हो गया अथवा उनका प्राणवातक सिद्ध हुआ। एक किवदंती इस प्रकार की अवश्य है कि गोस्वामी जी का देहात बरतोड के फोड़ों से हुआ^४ किन्तु इसके लिए कोई समर्थन अभी तक नहीं मिला है। उनके बरतोड वाले कवित्त 'बाहुक' के प्रायः अन्त में संगृहीत किये

१. 'तुलसी ग्रंथावली' पृ० २६३ (क० ३९)।

२. वही, पृ० २६४ (क० ४०-४१)।

३. 'अर्द्धकथा' (प्रयाग सन् १९४३), पृ० १४-५।

४. डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसी' (प्रयाग, १९४९), पृ० ५२।

गये हैं और इस रोग की शांति की भी चर्चा कही की गयी नहीं मिलती। अतएव हो सकता है कि इस कष्टदायक व्याधि ने ही कवि के वृद्ध शरीर को अत्यन्त जर्जर कर दिया हो और इसी से उसका अन्त भी हो गया हो।

(३) रचनाएँ

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कृतियों की मध्या आदि का विवरण कही नहीं दिया है और न सभी में रचनाकाल की ही कोई चर्चा की है। प्रसिद्ध रामायणी स्व० पं० रामगुलाम द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है—

रामललानहछू त्यों विराग संदीपनिहुँ,
 बरवै बनाइ विरमाई मति साई की।
 पारवती जानकी के मंगल ललित गाय,
 रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाई की॥
 दोहा औ कवित्त, गीतबंध कृष्ण कथा कही,
 रामायन बिनै माहि बात सब ठाई की।
 जग में सोहानी जगदीस हूँ के मनमानी,
 संत सुखशानो बानी तुलसी गोसाई की॥^१

इसके अनुसार गोस्वामी जी की १२ कृतियाँ ठहरती हैं। जिनमें से रामायन (राम चरित मानस), विनै (विनय पत्रिका), कवित्त (कवितावली), गीतबंध (गीतावली), दोहा (दोहावली) तथा रामआज्ञा (रामाज्ञा प्रश्न) उनके छह बड़े ग्रंथ हैं और रामललानहछू, विराग संदीपनि (वैराग्य संदीपिनी), बरवै, जानकी-मंगल, पारवती-मंगल और कृष्णगीतावली छह छोटे ग्रन्थ हैं तथा इन्हीं को उनकी प्रामाणिक रचना मानने की ओर आजकल अधिक विद्वान् प्रवृत्त जान पड़ते हैं। इनके सिवाय उनकी लगभग २० अन्य कृतियों के भी नाम लिये जाते हैं, जो इस प्रकार हैं—सतसई, संकटमोचन, छंदावली, छपैरामायन, कइखारामायन,

^१ शिवनन्दन सहाय : 'श्री गोस्वामी तुलसीदास' (बाँकीपुर, सन् १९१६),

रोलारामायन, भूतनागमयन, कुंडलियारामायन, हनुमानचालीसा, कलिधर्म-निरूपण, रामलता, ज्ञानदीपिका, विजयदोहावली, ध्रुवप्रश्नावली, मंगलरामायन, अंकावली, बजरंगसाठिका, राममुक्तावली और गीताभाषा । परन्तु इनके संबंध में बहुत अधिक मतभेद है । इनमें से सर्वप्रथम रचना सतसई वा रामसतसई को भी गोस्वामी जी की शिष्य-परम्परा के समझे जाने वाले पं० शेषदत्त जी प्रामाणिक समझा करते थे । उन्होंने इसकी एक टीका भी लिखी थी और उनके पुत्र के शिष्य कोदोराम ने इसे प्रामाणिक मान कर दोहावली को ही निकाल दिया था । परन्तु इन दोनों रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि इनके अधिकांश दोहे प्रायः एक ही हैं और दोहावली में न दीख पड़ने वाले सतसई के दोहों में गोस्वामी जी की परिचित शैली का रूप नहीं मिलता । इसके सिवाय 'सतसई' का जो रचना-काल उसमें दिया गया है, वह गणना करने पर शुद्ध नहीं उतरता, जिससे उसकी प्रामाणिकता में और भी संदेह होने लगता है । इसी प्रकार उपर्युक्त १२ कृतियों के अतिरिक्त अन्य उल्लिखित रचनाओं के विषय में भी विचार किया गया है और उनकी प्रामाणिकता को सदिग्ध माना गया है ।

उक्त १२ कृतियों में से केवल 'रामाज्ञा प्रश्न', 'राम चरित मानस' और 'पार्वती मंगल' ही ऐसी हैं, जिनमें क्रमशः सं० १६२१, १६३१ और १६४३ रचनाकाल दिया गया है । परन्तु, रचना के अंतर्गत पाये जाने वाले प्रसंगों तथा उनकी हस्त-लिखित प्रतियों के समय एवं विषय-निर्वाह और शैली का अध्ययन कर के डा० माताप्रसाद गुप्त ने उन सभी का काल-क्रम निर्धारित करने की चेष्टा की है, जो इस प्रकार हैं—रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी, रामाज्ञा प्रश्न, जानकी मंगल, राम चरित मानस, पार्वती मंगल, गीतावली, विनयपत्रिका, कृष्णगीतावली, बरवै, दोहावली और कवितावली ।^१ इस क्रम से सभी रचनाओं का अध्ययन करने पर पता चलता है कि कवि ने जिस समय इनका प्रणयन आरंभ किया, तब से ले कर उसके जीवन-काल के प्रायः अंतिम दिनों तक पर्याप्त समय लगा और इस लंबी-सी अवधि के भीतर उसकी विचार-धारा एवं रचना-शैली की प्रौढ़ता में क्रमिक विकास

^१ डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग, सन् १९४२), पृ० २१३ ।

भी होता गया। फिर भी राम-कथा अथवा उसके विविध अंशों के वर्णन की जो प्रमुख प्रवृत्ति उसमें आरंभ से ही जागृत हो चुकी थी, वह अंत तक बनी रही और उसी की प्रधानता का परिणाम इनमें प्रायः सर्वत्र दीखता है। उसकी उपर्युक्त १२ रचनाओं में से 'राम चरित मानस' में राम-कथा का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। किन्तु 'रामाज्ञा प्रश्न', 'गीतावली', 'बरवै' तथा 'कवितावली' में भी वही विषय कुछ संक्षिप्त रूप में आता है। 'रामलला नहछू' तथा 'जानकी मंगल' में उसके केवल फुटकल प्रसंग हैं। इसके सिवाय 'वैराग्य सदीपिनी' एवं 'विनयपत्रिका' के भी विषय ऐसे हैं, जिनका राम-कथा के नायक राम से ही वास्तविक संबंध है। शेष तीन ग्रन्थों में से 'दोहावली' का भी एक बहुत बड़ा अंश राम-कथा अथवा राम-भक्ति की चर्चा करता है और 'पार्वती मंगल' का आरंभ ही 'हृदय आनि सियराम धरे धनुभाथहि' से होता है तथा वह गोस्वामी जी के अनुसार राम के सबसे बड़े भक्त शिव का एक चरित है। केवल 'कृष्णगीतावली' एक ऐसी रचना जान पड़ती है, जिसका विषय कवि की मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल नहीं पड़ता। 'मूल गोसाईं चरित' से पता चलता है कि इस रचना में आये हुए पदों का संग्रह कवि ने स० १६२८ में, कतिपय कृष्ण-भक्तों के संपर्क में आ चुकने पर किया था।^१ इसका अर्थ यह है कि या तो यह कवि कुछ दिनों तक कृष्ण-लीला की ओर न्यूनाधिक आकृष्ट रहा होगा या सूरदास आदि के अनुकरण में कभी-कभी लिख देता होगा।

गोस्वामी तुलसीदास राम के दृढ़ और अनन्य भक्त थे तथा राम के चरित का वर्णन और उनके प्रति अपनी भक्ति का प्रकाशन ही उनका परम ध्येय था। जब से उन्होंने अपने गुरु के मुख से 'राम-कथा' सुनी तथा 'राम-भजन' के महत्त्व को समझा, तब से वे निरन्तर इनके चिन्तन और साधना में लगे रहे। उन्होंने इसे अपने जीवन का अंग-सा बना लिया। इस कारण, जब भी उन्हें कुछ कहने वा लिखने का अवसर मिला, उन्होंने सदा अपने इसी रंग में रंजित प्रवृत्ति के अनुसार काम किया। इसके साथ तादात्म्य ग्रहण करने के ही कारण व इतने सफल और कृतकार्य भी रहे। 'राम चरित मानस' में उन्होंने पूरी राम-कथा का सांगोपांग वर्णन

^१ 'मूल गोसाईं चरित' (गोरखपुर, सं० १९९१) पृ०, १५-६।

किया है। 'विनयपत्रिका' में उन्होंने अपनी राम-भक्ति के परिचायक अत्यन्त गम्भीर और उत्कृष्ट उद्गार प्रकट किये हैं, किन्तु उनका कार्य वही तक सीमित नहीं माना जा सकता। उनके सुदृढ़ सस्कारों के सहयोग में उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने हमें कुछ ऐसी अन्य रचनाएँ भी प्रदान की हैं, जिनका महत्त्व कम नहीं है। वे एक भक्त कवि के रूप में ही हमारे सामने नहीं आते, न इसके कारण हमें उनकी मवेदना पर किसी सांप्रदायिक सकीर्णता की छाप ढूँढ़ने की आवश्यकता पड़ सकती है। अपने जीवन के उषःकाल में उन्हें घोर दरिद्रता का सामना करना पड़ता है। उसके मध्य में वे विविध सामाजिक विडवनाओं का लक्ष्य बनते हैं। उसके अन्त में अपनी शारीरिक व्याधियाँ तक उन्हें तपाने और घुलाने पर तुल जाती हैं। किन्तु इनसे कभी विचलित न हो कर वे इन्हें अपने आदर्श-निर्माण का आवश्यक साधन बना लेते हैं और उनका अपना वास्तविक रूप क्रमशः निखरता ही चला जाता है। इसके सिवाय अपने राम को उन्होंने न केवल विश्व-नियता परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है, अपितु उसे सर्वत्र प्रत्यक्ष एवं सबमें ओत-प्रोत मान कर उसे विश्व-रूप तक ठहराने की चेष्टा की है। वे उसीके अनन्य सेवक हैं और मानव-समाज के सामूहिक चित्त की परख और अभिव्यक्ति में पारंगत भी; अतः उनके लिए कोई विषय कष्ट-साध्य नहीं है। फलतः अपनी राम-कथा में भी वे सर्वत्र विगल मानव हृदय के ही स्पर्दन को अंकित करते हैं। अपनी राम-भक्ति में भी उसके शुद्ध एवं निर्मल मौलिक रूप को ही निरावृत कर सबके समक्ष रख देना चाहते हैं।

राम चरित मानस

गो० तुलसीदास की सबसे उत्कृष्ट एवं लोकप्रिय रचना 'राम चरित मानस' है जो एक प्रबंध काव्य के रूप में है। यह ग्रंथ प्रधानतः दोहे, चौपाइयों में लिखा गया है। जिस कारण कभी-कभी लोग इसे 'चौपाई रामायण' की भी संज्ञा देते हैं। दोहे-चौपाइयों के अनंतर बीच-बीच में इसमें कहीं-कहीं अन्य छन्दों के भी प्रयोग कर दिये गए हैं जिनसे, इसे पाठ करते समय शिथिलता न जान पड़े और साथ ही रुचि-मार्जन भी होता रहे। पूरा ग्रंथ सात कांडों में विभक्त है और उनमें से प्रत्येक के आदि तथा अन्त में कुछ संस्कृत के श्लोक दिये गए हैं। इसका 'राम चरित मानस' नाम कवि का स्वयं दिया हुआ है और वह साभिप्राय भी जान पड़ता है। कवि के अनुसार यहाँ पर 'मानस' शब्द प्रसिद्ध 'मान सरोवर' का बोधक है और यह 'राम चरित' का, एक निर्मल जलाशय के रूप में निर्मित किया जाना सूचित करता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए कवि ने ग्रंथ के प्रारंभिक भाग में ही एक सांग रूपक बाँधा है जो बहुत ही सुन्दर है। वहाँ पर कहा गया है कि इस अपूर्व सरोवर की सीढ़ियों वा सोपानों का काम इसके उक्त सात कांड देते हैं और इसके चार घाट प्रसिद्ध चार संवादों के रूप में रचे गए हैं। इसके चौपाई आदि छंद इसकी 'सघन पुरइत' एवं 'बहुगंग कमल' है और इसके चतुर्दिक सजी बाटिका में विविध 'कथा-प्रसंग' शुक-पिकादिवत् कलरव करते रहते हैं। 'सीअरामजस' को कवि ने इस मनोहर जलाशय का 'मुधासम सलिल' बतलाया है जिसमें श्रद्धा-पूर्वक 'मज्जन' करने से 'हृदय का परिताप' जाता रहता है। इसी जलाशय से कवि की 'कविता सरिता' सरयू नदी की भाँति निकलती है तथा 'राम भगति सुरसरि' में मिलती हुई 'रामसरूप सिधु' तक पहुँच जाती है।^१

'राम चरित मानस' उस कोटि का प्रबंध काव्य है जिसे, संस्कृत की काव्य

^१ 'राम चरित मानस' (बालकांड, दोहा ३६-४३)।

रचना-पद्धति के अनुसार, हम एक 'महाकाव्य' का भी नाम दे सकते हैं। यह ग्रंथ 'सर्गबद्ध' होने के स्थान पर कांडों वा सोपानों में विभाजित है और वाल्मीकीय 'रामायण' की भाँति, इसमें विविध आख्यानों का भी समावेश है। इसके आरम्भ में भिन्न-भिन्न देवताओं की वंदना की गई है और वर्ण्य विषय राम-कथा के राम को इसका 'धीरोदात्त नायक' बनाया गया है। ग्रंथ रचना का लक्ष्य यहाँ पर अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष नामक चतुर्वर्गों की सिद्धि बतलायी गई है। इसमें आये हुए जनकपुरी, अयोध्या एवं लंका के विशद् वर्णन महाकाव्य के 'नगर वर्णन' का स्थान लेते हैं और इसके समुद्र, पर्वत, वन एवं पंपासरदि के वर्णन भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं। ऋतु-वर्णन के उदाहरण में इसके वर्षा, शरद एवं वसंत के सुंदर चित्रण दिये जा सकते हैं तथा इसमें सूर्योदय एवं चंद्रोदय के वर्णन भी मिलते हैं। इसके प्रधान नायक राम एवं सीता के पूर्वानुराग, विवाह-संबंध एवं विरह तथा इसके 'मंत्र', 'दूतकर्म' और 'अभियान' के प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण हैं। यह काव्य-ग्रंथ वस्तुतः शांतरस प्रधान है, किन्तु इसमें वीर एवं शृंगार रसों का भी समुचित समावेश मिलता है। अतः इसमें 'महाकाव्य' के वे प्रायः सभी प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं जिनकी चर्चा दंडी आदि पुराने आचार्यों ने की है और जिनके कारण, स्थूल रूप से, बहुधा संस्कृत एवं भाषा की अनेक प्रसिद्ध रचनाओं को आज तक वह नाम दिया जाता आ रहा है।

परंतु 'राम चरित मानस' को केवल एक महाकाव्य के कतिपय लक्षणों से युक्त बतलाकर ही, हम उसका पूर्ण परिचय नहीं दे सकते। इसके वर्ण्य विषय तथा वर्णन-शैली पर ध्यानपूर्वक विचार करने से जान पड़ता है कि इसे केवल साहित्यिक नियमों की कमीटी पर ही परखना अथवा इसे एक चरितकाव्य मात्र कह देना इसके अधूरे ज्ञान का परिचायक होगा। कवि ने इसके अन्त में दिये गए दो संस्कृत श्लोकों द्वारा अपने इस काव्य ग्रंथ की रचना का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया है:—
 "भगवान् शिव ने, एक मुकवि के रूप में, श्रीरामचन्द्र के चरणकमलों की भक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से, जिस दुर्गम रामायण की रचना की थी उसी रामनाम-परक काव्य को मैंने भी अपने हृदय का अंधकार दूर करने के लिए, केवल भाषा-बद्ध मात्र कर दिया है। यह मानस-ग्रंथ पुनीत है, पापों को हरने वाला है, सदा

कल्याणप्रद है, विज्ञान एवं भक्ति को जागृत करने वाला है, माया-मोह एवं भव-बंधन को दूर करने वाला है तथा निर्मल प्रेमजल द्वारा परिपूर्ण है जिसमें भक्ति के साथ मज्जन करने वाले कभी सांसारिक तापों से दग्ध नहीं हो पाते।” राम-कथा के आधार पर आदि कवि वाल्मीकि मुनि ने भी अपनी ‘रामायण’ की रचना की थी, किंतु उनका वास्तविक उद्देश्य राम को एक चरित्रवान् महापुरुष के रूप में चित्रित करना था। गो० तुलसीदास ने अपने राम को न केवल मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में अंकित किया, अपितु उन्हें इसमें अपना ‘प्रभु और इष्टदेव’ भी स्वीकार किया। उन्होंने इसे एक भक्त कवि द्वारा निर्मित ‘भवितकाव्य’ का रूप दे दिया और इसकी रचना द्वारा ‘स्वान्तः सुख’ का अनुभव भी किया।

इसके सिवाय ‘राम चरित मानस’ के अंतर्गत केवल राम-कथा का ही समावेश नहीं किया गया है। इसके अनेक स्थलों पर आर्य धर्म एवं आर्य सस्कृति के विविध आदर्शों का दिग्दर्शन और प्रतिपादन भी किया गया है। गो० तुलसीदास ने इसमें वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने की सर्वत्र चेष्टा की है और गार्हस्थ्य जीवन के कर्त्तव्यों को विशेष रूप से उदाहृत किया है। इसके नायक रामचंद्र स्वयं ‘मर्यादा पुरुषोत्तम’ है और उनके कर्त्तव्य का आदर्श “करव साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि”^१ द्वारा स्पष्ट है। वे न केवल स्वयं आर्य धर्म के पालन में निरत हैं, अपितु उसके अनुसार दूसरों को उपदेश देते भी दीख पड़ते हैं। वे नारद, शबरी जैसे भक्तों को जहाँ भवित का उपदेश प्रदान करते हैं वहाँ अपने भाइयों को नीतिधर्म तथा सुग्रीव को मंत्रीधर्म बतलाते हैं^२ और नागरिकों को सन्मार्ग भी सुझाया करते हैं।^३ उनके गुरु वशिष्ठ ने भी वर्णाश्रम धर्म की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है और पिता के प्रति एक पुत्र के कठोर कर्त्तव्यों का निर्देश किया है।^४ इस काव्य की नायिका सीता आर्यकुलोचित

^१ ‘राम चरित मानस’, (अयोध्या कांड), दोहा २५७।

^२ वही, (किष्किंधा कांड), दोहा ७।

^३ वही, (उत्तर कांड), दोहा ४३-६।

^४ वही, (अयोध्या कांड), दोहा १७२-३।

पत्नीधर्म से भलीभाँति परिचित है और इस बात का प्रमाण हमें उनके उस कथन में पर्याप्त रूप से मिलता है जो उन्होंने, वनगमन के लिए प्रस्थान करते समय, किया है। किंतु फिर भी उसे अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया के मुख से 'नारिधर्म' के संबंध में एक विशिष्ट उपदेश ग्रहण करना पड़ जाता है।^१ जिन-जिन लोगों ने इस प्रकार उपदेशों का समुचित अनुसरण किया है उनका इस कवि ने कल्याण होना दर्शाया है, किन्तु जिन रावणादि ने उनकी उपेक्षा की है उनका निश्चित नाश भी सिद्ध कर दिया है। इसके अतिरिक्त इस कवि के राम-राज्य वर्णन एवं कलियुग वर्णन में हमें क्रमशः मानव समाज के भी उन उत्कृष्ट एवं निकृष्ट रूपों के दर्शन होते हैं जो एक शुद्ध धार्मिक दृष्टिकोण से ही निर्मित कहे जा सकते हैं। अतएव, इस रचना को यदि एक धर्म ग्रंथ भी कहा जाय तो अनुचित न होगा।

'राम चरित मानस' की रचना पौराणिक ग्रंथों की संवाद-शैली में हुई है और इसमें चार वक्ताओं के कथन का समावेश किया गया है। इन चारों में से कागभृशुडि ने गरुड के प्रति राम-कथा कही है, शिव ने उसे उमा से कहा है, याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज को बतलाया है तथा स्वयं गो० तुलसीदास ने उसका वर्णन 'सकल सज्जन' को संबोधित करके किया है। ये चारों ही संवाद परस्पर एक में गुथे हुए हैं। गो० तुलसीदास का कहना है कि "जिस सुन्दर कथा को याज्ञवल्क्य मुनि ने भारद्वाज को सुनाया था उसे ही उन दोनों के संवाद रूप में कहने जा रहा हूँ।"^२ और इसके अनंतर वे, उन दोनों मुनियों के मिलन आदि के विषय में भी कुछ चर्चा करके, फिर उसे आरंभ करते हैं। इसी प्रकार भारद्वाज के मुख से रामावतार के संबंध में कुछ संशयात्मक बातें सुनकर, याज्ञवल्क्य उन्हें कथा सुनाने को उद्यत होते हैं और उनसे कहते हैं—"इसी प्रकार का संदेह उमा ने भी शिव से प्रकट किया था जिस पर शिव ने उनसे यह कथा कही थी। मैं अब, अपनी बुद्धि के अनुसार, उन्हीं दोनों के संवाद का वर्णन करने जा रहा हूँ जिसे सुन कर विषाद मिट जाया करता है।"^३ शिव भी उमा के प्रति प्रायः इन्हीं शब्दों में कहना

^१ 'राम चरित मानस', (अरण्य कांड), दोहा ४-५।

^२ वही, (बालकांड), दोहा ३०।

^३ वही, दोहा ४७।

आरंभ करते हैं। वे कहते हैं, “हे भवानी, ‘राम चरित मानस’ की शुभ कथा को जिसे गरुड के प्रति कागभुशुडि ने कहा था, मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ।”^१ गरुड ने भी तुम्हारे जैसा ही प्रश्न किया था और मैं उस प्रसंग को भी तुम्हें बतलाने जा रहा हूँ, जो लगा कर सुनो।”^२ उक्त चारों वक्ताओं के कथन से प्रकट होता है कि वस्तुतः एक ही कथा को उनसे संबंधित विविध संवादों में बतलाया गया है। कागभुशुडि एवं गरुड के संवाद से उसे शिव ने ग्रहण किया है, शिव एवं उमा के संवाद से उसे याज्ञबल्क्य ने लिया है तथा, याज्ञबल्क्य एवं भारद्वाज के संवाद के आधार पर, उसे ही गो० तुलसीदास ने ‘सकल सज्जन’ के प्रति व्यक्त किया है। ये चारों संवाद, ग्रंथ के अंतर्गत, एक साथ चलते हैं और इनमें यत्र-तत्र प्रश्नोत्तरों को भी उचित स्थान मिल जाता है। किन्तु इसके कारण रचना में कोई असंगति नहीं आ पाती, कवि ने उनकी विविध कड़ियों को यथास्थल जोड़ने में बड़े कौशल से काम लिया है और मूल कथा के विकास में उनके कारण कोई बाधा नहीं पहुँची।

इन संवादों के कारण वर्ण्य विषय अर्थात् राम-कथा के अनेक भेद होने का भी प्रश्न नहीं उठता। जिस कागभुशुडि एवं गरुड के संवाद के आधार पर क्रमशः उक्त शिव-पार्वती संवाद, याज्ञबल्क्य-भारद्वाज संवाद एवं स्वयं कवि के ही ‘सकल सज्जन’ के प्रति किये गए कथन की नींव खड़ी की गई है उसके वक्ता कागभुशुडि का कहना है कि मैंने इस कथा को शिव-कृपा से प्राप्त किया था। वे गरुड से कहते हैं कि “रामचरित का सरोवर गुप्त है और उस तक मेरी पहुँच केवल ‘संभ्रुप्रसाद’ से ही हो पाई थी। मैंने आज तुम्हें राम-भक्त होने के नाते आत्मीय समझ कर इसे बतलाया है और इसका सांगोपाग वर्णन किया है।”^३ अतएव, रामचरित के मूल रचयिता शिव कहलाते हैं। वे इसकी रचना करते हैं और उसके अनंतर इसे पार्वती एवं कागभुशुडि को भी बतलाते हैं।^४ पार्वती को वे वही कथा

^१ ‘राम चरित मानस’, दोहा १२०। ^२ वही (उत्तर कांड), दोहा, ५५।

^३ वही, (उत्तर कांड), दोहा ११३।

^४ वही, (बालकांड), दोहा १२० और (उत्तर कांड), दोहा ११३।

सुनाते हैं जो कागभृगुडि एवं गरुड के संवाद के रूप में कही गई है और इसी कारण उक्त चारों संवादों की कथा की परम्परा केवल एक और अभिन्न है। ऐसी दशा में एक ही विषय का वर्णन करने के लिए चार-चार संवादों का आयोजन करना कोई महत्त्व रखता नहीं जान पड़ता। फिर भी गो० तुलसीदास ने उनमें से प्रत्येक को स्थान देना आवश्यक समझा है जिसका कारण 'मानस' के अध्ययन से ही स्पष्ट हो जाता है। जैसा पहले कहा जा चुका है 'राम चरित मानस' केवल एक चरित काव्य न होकर उसके साथ एक धर्म ग्रंथ भी है। कवि ने इसमें न केवल राम-कथा का वर्णन किया है, अपितु उसके आधार पर आर्य धर्म का प्रतिपादन एवं कर्म और ज्ञान के समन्वय पर आश्रित भक्ति का निरूपण भी किया है जिसकी समुचित व्याख्या के लिए हमें इसके प्रत्येक संवाद को पृथक्-पृथक् करके देखना होगा।

भारद्वाज मुनि एक 'तापस' है तथा 'परमार्थ पथ परम सुजाना' भी है। उनके आश्रम पर 'ब्रह्म-निरूपण', 'धर्म विधि' एवं 'तत्त्व विभाग' की चर्चा हुआ करती है और 'ज्ञान-विराग' संयुक्त भगवद्भक्ति विषयक सत्संग भी हुआ करता है। एक बार वहाँ पर मकर के अवसर पर याज्ञबल्क्य मुनि आ जाते हैं जो 'परम विवेकी' है और जिन्हें 'वेदतत्त्व' को 'करगत' कर चुकने वाला समझ कर भारद्वाज मुनि उनसे 'राम कवन' जैसा प्रश्न पूछते हैं। याज्ञबल्क्य मुनि उसके उत्तर में पहले शिव चरित की चर्चा करके एक प्रकार की भूमिका बाँध लेते हैं। फिर, शिव-पार्वती-संवाद के आधार पर राम-कथा का वर्णन करते हुए, प्रसंगवश बीच-बीच में आर्य धर्म संबंधी कतिपय बातों की ओर विशेष ध्यान भी दिलाते चलते हैं। भारद्वाज एवं याज्ञबल्क्य के इस संवाद में इसी कारण, हिन्दू समाज के सदाचार एवं कर्मकांड विषयक बातों का ही अधिक समावेश पाया जाता है। इसके विपरीत शिव एवं पार्वती का संबंध दाम्पत्यभाव का है और उनके 'गिरि वरु कैलाश' पर 'सुकृति सकल' उनकी सेवा में निरत है। उस पर्वत के एक विशाल 'बट बटप' के नीचे एक बार शिव अपने हाथ से 'नागरियु छाला' बिछा देते हैं और उस पर 'सहजहि' बैठ जाते हैं। इस 'भल अवसर' से लाभ उठाने के लिए पार्वती

^१ राम चरित मानस, (बाल कांड), बोहा ४४-६।

भी वहाँ पर बैठ जाती है और शिव से राम के संबंध में 'जौ नृपतनय त ब्रह्म किमि' का प्रश्न छेड़ देती है।^१ भारद्वाज मुनि का प्रश्न केवल यही तक सीमित था कि " 'क्या अवधेस कुमार' और वह 'राम' जिसका शंकर जप करते हैं एक और अभिन्न है ? " किंतु पार्वती का प्रश्न उससे कहीं अधिक गंभीर हो गया और उसमें दार्शनिक शब्द 'किमि' अर्थात् क्यों वा कैसे के अनुसार समाधान की आवश्यकता पड़ी। शिव ने इसी कारण उसका तर्क-सम्मत उत्तर देने की चेष्टा की और उनके 'शिव-पार्वती सवाद' पर प्रायः सर्वत्र ज्ञानकांड का प्रभाव दीख पड़ा। भारद्वाज मुनि को 'रघुपति प्रभुताई' 'विदित' थी। उन्होंने 'मूढ' बनकर 'गूढ़ राम गुन' को केवल मुनना मात्र चाहा।^२ किंतु पार्वती के मन में संशय ने घर कर लिया था और उनमें एक 'आरत अधिकारी' की जिज्ञासा जागृत हो गई थी।^३ वे अभी तक भारद्वाज की कोटि में नहीं आ सकी थी। अतएव उनके लिए कथा का वर्णन बहुत गम-भा-वृष्ठाकर करना पड़ा जिस कारण विभिन्न विषयो का प्रतिपादन भी कुछ दूसरी ही शैली में किया गया। कागभुशुंडि एवं गरुड के संवाद का लक्ष्य तथा उसकी वर्णन-शैली इन दोनों से ही भिन्न है। पहले तो वक्ता एवं श्रोता दोनों पक्षी जाति के हैं और उनमें से भी प्रथम एक ऐसी श्रेणी का है जिसके लिए संभव नहीं कि वह पक्षिराज के प्रति कोई उपदेशप्रद बात कहने का साहस करे। किंतु गरुड का हृदय भ्रम द्वारा इतना आच्छादित है कि अनेक प्रकार से तर्क-वितर्क करने पर भी, उम पर ज्ञान ज्योति की किरणें नहीं पड़ पाती। वे तर्काधिक्य के कारण खिन्न हो जाते हैं और किकर्तव्य विमूढ से बनकर कभी नारद कभी ब्रह्मा और कभी शिव के द्वार खटखटाते फिरते हैं। अंत में विवश होकर उन्हें कागभुशुंडि के निकट आ उपस्थित होना पड़ता है जो उनके मुख से उनके आगमन का कारण सुनते-सुनते ही राम-कथा का आरम्भ कर देते हैं।^४ कागभुशुंडि न तो ज्ञानी याज्ञबल्क्य की भाँति श्रुति पंथ की बातें करते हैं और न शिव की भाँति विषय निरूपण में लगते

^१ 'राम चरित मानस', दोहा १०५-८।

^२ वही, (बालकांड), दोहा ४७।

^३ वही, दोहा ११०।

^४ वही, (उत्तर कांड), दोहा ५९-६४।

है। वे जो कुछ कहते हैं वह उनकी निजी गहरी अनुभूति पर अवलंबित हैं। इसी कारण वह अत्यंत स्पष्ट और सरल भी हैं। वे कोई तर्क नहीं उपस्थित करते प्रत्युत कहते हैं,

‘कहेउं न कछु करि जुगति विसेखी। येह सब में निज नयनन्हि देखी।’^१

उनका प्रधान लक्ष्य ऐसी ‘भगति’ का परिचय देना है जिसके ‘बिनु जतन प्रयासा’ करने पर भी ‘संसृति मूल अविद्या’ का नाश हो जाता है।^२ इस प्रकार गरुड एवं कागभुशुडि का संवाद कर्म अथवा ज्ञान का आश्रय न लेता हुआ सीधे भक्ति कांड की चर्चा करता है और यही इसकी प्रमुख विशेषता है। ‘मानस’ का चौथा संवाद जिसमें गो० तुलसीदास ‘सकल सज्जन’ के प्रति कहते दीख पड़ते हैं, अंत में उनके अपने ‘सठमना’ के प्रति दिये गए उपदेश में जा मिलता है।^३

गो० तुलसीदास ने इस ग्रंथ में ‘सीअ राम जस सलिल मुधासम’ का वर्णन स्वभावतः राम-कथा का आधार लेकर किया है। वही इस रचना का प्रमुख वर्ण्य विषय है और इसके सातों कांडों में सर्वत्र उसी को प्रधानता दी गई है। फिर भी स्पष्ट है कि कवि ने उसका उपयोग किसी साधारण कथा के ही रूप में नहीं किया है। उसने उसके साथ-साथ कतिपय भिन्न-भिन्न उपकथाओं का भी समावेश करना उचित समझा है और, उसके इस प्रकार पौराणिक पद्धति का अनुकरण करने के कारण, इस ग्रंथ में विविध चरितों, हेतु-कथाओं तथा अंतर-कथाओं की भी सृष्टि हो गई है जिनका अपना पृथक्-पृथक् महत्त्व है। राम-कथा के साथ उनमें से प्रत्येक का कोई न कोई कार्य-कारण-संबंध स्थापित हो गया प्रतीत होता है जिस कारण इनके बीच वह एक सुंदर सुजटित मणि अथवा सुगुफित पुष्प की भाँति सुव्यवस्थित रूप ग्रहण करती दीख पड़ती है। चरितों में ‘शिव चरित’ सबसे बड़ा है और वह ‘शिव-पार्वती-संवाद’ की प्रस्तावना के रूप में याज्ञबल्क्य द्वारा कहलाया गया है।^४ इसी विषय के आधार पर गो० तुलसीदास ने अपनी रचना ‘पार्वती मंगल’ का भी निर्माण किया है, किन्तु उसकी कथा इतनी विस्तृत

^१ ‘राम चरित मानस’, बोहा ९१।

^२ वही, बोहा १३०।

^३ वही, (बाल कांड), बोहा ४८-१०३।

^४ वही, बोहा ११९।

नहीं है। शिव-पार्वती-विवाह की कथा 'ब्रह्मपुराण', 'कालिकापुराण' और 'शिव-पुराण' में पायी जाती है और इसका एक विशद वर्णन महाकवि कालिदास के 'कुमार संभव' में भी मिलता है। 'मानस' के कवि को सभवतः इन सभी ग्रंथों में परिचय रहा होगा, किन्तु उसने उनका अध्यानुसरण नहीं किया है। उसके 'शिवचरित' तथा 'पार्वती मंगल' की भी तुलना करने पर पता चलता है कि इन दोनों की रचना ठीक एक ही ढंग की नहीं है। 'मानस' की तपस्विनी पार्वती की प्रेम परीक्षा लेने जहाँ सप्तर्षि जाते हैं वहाँ 'पार्वती मंगल' में यह कार्य स्वयं शिव, एक ब्रह्मचारी के रूप में करते देख पड़ते हैं और इसी प्रकार मानस में जहाँ शिव का दूल्हा वेश अत्यंत विचित्र और भयावना लगता है वहाँ 'पार्वती मंगल' में दो 'सतकोटि मनोज मनोहर' बनकर दीख पड़ते हैं। फिर भी, दोनों के एक ही कवि की रचना होने के कारण उनमें सादृश्य मूलक स्थलों की भी संख्या कम नहीं है।^१

'मानस' का एक दूसरा ऐसा चरित 'गहड़-कागभुशुडि संवाद' के वक्ता कागभुशुडि का आत्मचरित है जो इसके 'उत्तर कांड' में आया है। इसकी कथा का आधार कदाचित् 'रामायण महामाला' नामक ५६ सहस्र श्लोको का बृहद्-ग्रंथ है जिसमें, शिव-पार्वती के संवाद के माध्यम से, शिव के मराल वेश में नीलगिरि पर्वत पर कुछ दिनों तक निवास करने, वहाँ कागभुशुडि से राम-कथा सुनने तथा इसी प्रकार गहड़ मोह एवं कागभुशुडि के उपदेशादिक का विस्तृत वर्णन है। 'मानस' का भुशुडि चरित आत्मकथा के रूप में होने के कारण, उसके वक्ता की निजी अनुभूतियों का भी एक रोचक संग्रह बन गया है। भुशुडि ने उसकी प्रत्येक घटना का वर्णन बड़े उत्साह के साथ किया है और उसका कथन करते समय कभी-कभी बड़ी भावप्रवणता प्रदर्शित की है। उनके मोह का प्रसंग 'उत्तर कांड' के १६ दोहों तक चलता है और उनके पूर्वजन्मादिके वृत्तांत उसके २१ दोहों तक स्थान लेते हैं।^२ इन दो चरितों के अतिरिक्त एक तीसरा चरित 'मानस' के प्रति

^१ देखें 'तुलसी के चार दल' पुस्तक पहली (सद्गुरुशरण अवस्थी) जिसमें (पृष्ठ १९४-९) इनकी एक बृहत् सूची दी गई है।

^२ 'राम चरित मानस' (उत्तर कांड), बोहा ७४-११४।

नायक रावण की कथा है जो राम-कथा का आरंभ होने के पहले ही कह दी जाती है।^१ यह वस्तुतः रावण और उसके बन्धु-बाधव राक्षसों के जन्म लेने, उग्र तप करने तथा वर द्वारा शक्ति संपन्न होकर सर्वत्र उभय मचाते फिरने की प्रारंभिक चर्चा मात्र है। यह बहुत कुछ वाल्मीकीय 'रामायण' (उत्तरकांड) एवं 'महाभारत' (रामोपाख्यान) के प्रारंभिक अंश पर निर्भर जान पड़ती है। इसमें रावण-चरित का केवल उतना ही भर उल्लेख है जितना रामावतार के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने की सामग्री के रूप में आवश्यक जान पड़ता है। उसका शेष अंश राम-कथा के अन्य स्थलों और विशेषकर उसके सीता-हरण एवं युद्ध-संबंधी प्रसंगों में विस्तार के साथ मिलता है।

'राम चरित मानस' के अंतर्गत, उक्त चरितों के साथ-साथ कुछ ऐसी अन्य कथाओं का भी समावेश किया गया है जिन्हें हम हेतु-कथा कह सकते हैं और जो इसी कारण, रावण चरित की भाँति, रामावतार का प्रादुर्भाव होने के पहले ही आ जाती है। रावण चरित और इनमें इस बात का अंतर है कि वह जहाँ केवल अधूरा-सा रह जाता है और उसका अंत राम-कथा में पहुँच कर होता है वहाँ ये सभी स्वतः पूर्ण हैं और ये वस्तुतः रावणादि के जन्म की सी पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं। ऐसी हेतु-कथाओं में सबसे बड़ी राजा प्रतापभानु की कथा है जो रावण चरित के ठीक पहले आती है और जिसमें 'विप्रश्राप' वश, उस राजा को सपरिवार 'निसाचर' होना पड़ता है^२। यह कथा संभवतः, 'मंजुल रामायण' से ली गई है जो अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण द्वारा लिखित एक लाख बीस हजार श्लोकों का ग्रंथ प्रसिद्ध है।^३ कहते हैं कि स्वयं अगस्त्य मुनि ने भी किसी 'अगस्त्य रामायण' की रचना की थी जिसमें यह कथा पायी जाती है। पता नहीं दोनों में क्या अंतर है। 'मानस' की एक दूसरी हेतु-कथा 'नारद मोह प्रसंग' के रूप में आती है जिसमें नारद के शाप का प्रभाव दो 'महेस गन' और स्वयं विष्णु तक पर पड़ता है। दोनों

^१ 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दोहा १७६-८४।

^२ वही, दोहा १५३-७५।

^३ रामदास गोड़ : 'हिन्दुत्व' (काशी), पृ० १३७-८।

‘महेस गन’ विपुल वैभव संपन्न तथा शक्तिशाली ‘निमिचर’ के रूप में जन्म लेकर विश्व विजय करते हैं। उन्हें युद्ध में मारने के हेतु विष्णु को न केवल मनुज तनु धारण करना पड़ता है, अपितु उन्हें नारि-विरह के कारण दुःख भी उठाना पड़ता है और बानरों तक से सहायता लेनी पड़ जाती है।^१ कवि ने इस कथा को ‘शिव पुराण’ से लिया होगा यद्यपि इसका एक रूप ‘अद्भुत रामायण’ में भी उपलब्ध है। ‘शिव पुराण’ के वृत्तान्त से यह अधिक निकट है; इसमें केवल पौराणिक अंबरीष की पुत्री श्रीमती शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी बन गई है।^२ इस प्रकार की अन्य-हेतु कथाओं में से दो अर्थात् जय-विजय एव जलधर से संबंध रखने वाली कथाएं केवल संक्षिप्त रूप में ही दी गई हैं। विष्णु के द्वारपाल जय और विजय, एक के अनुसार, ‘विप्रस्राप’ के कारण पहले हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष होत हैं और वाराहावतार तथा नृसिंहावतार द्वारा मारे जाते हैं और अंत में, फिर उनको कुम्भकर्ण एवं रावण के रूपों में भी जन्म लेना पड़ता है।^३ दूसरी कथा के अनुसार जलंधर शिव से सग्राम करके जब उन्हें असफल बना देता है तो विष्णु उनकी सहायता के लिए उसकी पत्नी का पातिव्रत भंग करते हैं। विष्णु को उसकी पत्नी शाप देकर नर रूप धारण करने को बाध्य करती है और वह स्वयं भी रावण के रूप में जन्म लेता है।^४ जय-विजय की कथा ‘आनन्द रामायण’ से ली गई जान पड़ती है जहाँ पर उनके तीसरे जन्म में शिशुपाल दंत वक्र होने की भी चर्चा की गई है।^५ ‘आनन्द रामायण’ में जलन्धर की भी कथा आती है जहाँ कहा गया है कि उसकी पत्नी वृन्दा के शापवश विष्णु के सहायक जय-विजय को ही राक्षस रूप धारण करना पड़ा था और विष्णु के नर रूप में अवतीर्ण होने पर उनकी पत्नी का अपहरण हुआ था।^६ ‘राम चरित मानस’ के जय-विजय इस प्रकार राक्षस का जन्म नहीं पाते प्रत्युत यहाँ स्वयं जलंधर ही रावण के रूप में प्रकट हो जाता है।

^१ ‘राम चरित मानस’ (बाल कांड), दोहा १२५-३९।

^२ ‘रामकथा’ (डा० बुल्के), पृ० २७५-६।

^३ ‘राम चरित मानस’ (बाल कांड), दोहा १२२-३।

^४ वही, दोहा १२३-४।

^५ ‘रामकथा’ (डा० बुल्के), पृ० ४२०।

^६ वही, पृ० २७५।

हेतु-कथाओं का एक दूसरा रूप उन वृत्तान्तों में लक्षित होता है जिनका किन्हीं रावणादि राजसों के कथन ग्रहण करने के साथ ही प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। ऐसी कथाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय मनु एवं अतरूपा की तपश्चर्या एवं उसके परिणामस्वरूप भगवान् की अपने पुत्र रूप में प्राप्ति की कथा कही जा सकती है। उसके अनुसार 'स्वायम्भू मनु' बहुत दिनों तक राज्य करके अपन चौथेपन में सस्त्रीक गोमती तट पर तपस्या करने हेतु उनके 'अपार' तप द्वारा प्रभावित होकर अत मे, स्वय 'विश्ववाम भगवान्' प्रकट होते तथा उन्हें उनके यहाँ पुत्ररूप में जन्म लेने का वचन देते हैं। उग अवसर पर वे यह भी कह देते कि 'स्वायम्भू मनु' को उस दशा में 'अवध भुआल' के रूप में रहना पड़ेगा और मैं अपने अर्गों के साथ आर्जुना।^१ स्वायम्भू मनु एवं अतरूपा की यह कथा 'पद्मपुराण' (उत्तर खण्ड) के २६९ वें अध्याय में आती है। किन्तु ये दोनों यहा भगवान् को अपने पुत्र रूप में तीन बार तक पाते हैं और स्वय भी क्रमशः दशरथ-कौशल्या, वसुदेव-देवकी एवं हरिपुत्र-देवप्रभा के रूपों में अवतार ग्रहण करते हैं।^२ उग प्रकार की एक अन्य हेतु-कथा का उल्लेख 'मानस' के उस स्थल पर हुआ है जहाँ जय-विजय को उक्त कथा समाप्त कर दी गई है और बतलाया गया है कि उन्हीं दोनों के कारण एक बार विष्णु ने कश्यप और अदिति के घर भी पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था।^३ यह बात फिर अन्यत्र भी दुहरायी गई है जहाँ भयभीत देवतादि को सान्त्वना देते हुए 'गगन गिरा' द्वारा कहा गया है कि कश्यप एवं अदिति ने बड़ी तपस्या की थी जिस कारण मैंने उन्हें पहले से ही वर दे रखा है और मैं उनके दशरथ-कौशल्या रूप में रहते समय, 'कौशलपुरी' में जन्म लूँगा।^४ कश्यप एवं अदिति की कथा का यह रूप वाल्मीकीय 'रामायण' में नहीं पाया जाता। यह संभवतः, 'अध्यात्म रामायण' पर निर्भर है।

^१ 'राम चरित मानस', (बालकांड), दोहा १४२-५२।

^२ 'रामकथा', (डा० बुल्ले), पृ० २७३-४।

^३ 'राम चरित मानस' (बालकांड), दो० १२३।

^४ वही, दोहा १८७।

ये हेतु-कथाएं तथा उपर्युक्त शिव चरित आदि मूल राम-कथा की केवल भूमिका का निर्माण करते हैं और ये उसके बाह्य अंग-से हैं। इस कारण 'मानस' में इन्हे मानो आरंभ में ही स्थान दे दिया गया है अथवा उसके अंतिम भाग में रखा गया है। अंतर-कथाएं इनसे कुछ भिन्न महत्त्व रखती हैं और उनका उपयोग भी, राम-कथा के भीतर, उसके कतिपय प्रसंगों पर समुचित प्रकाश डालने के लिए, किया गया है। इनमें से कुछ परिचयात्मक हैं और वे कही-कही स्वयं उनके पात्रों द्वारा ही कहला दी गई हैं। उदाहरण के लिए संपाति ने अपना परिचय देते समय अपने तथा अपने भाई जटायु के युवकोचित दुःसाहस का उल्लेख किया है^१ तथा, इसी प्रकार, जाम्बवंत ने भी अपने साथी वानरो से वामनावतार के समय प्रदर्शित अपने शारीरिक बल की चर्चा की है।^२ कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि किसी एक पात्र को दूसरे के प्रश्न करने पर अपनी कथा स्थिति को स्पष्ट करने के लिए कहनी पड़ी है। रामचन्द्र के पूछने पर कि, आप अपनी किष्किंधा नगरी छोड़ कर इस पर्वतीय वन में क्यों बसते हैं, सुग्रीव ने अपने भाई के वैर-भाव की पूरी कथा कह डाली है।^३ ऐसी अंतर-कथाओं का उपयोग कुछ स्थलों पर प्रस्तावना रूप में भी किया गया मिलता है। उदाहरण के लिए मूल राम-कथा के बाहर वाले संवादों में से, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद के पहले, भरद्वाज के आश्रम पर याज्ञवल्क्य के पहुंचने का कारण बतलाया गया है^४ तथा भुशुडि-गरुड संवाद के पहले भी गरुड के मोहग्रस्त हो जाने की कथा कही गई है।^५ इसी प्रकार शिव-चरित आरंभ करने के पहले सती-मोह की कथा कह कर आगे की बातों के लिए एक क्षेत्र तैयार किया गया है।^६ मूल कथा के विश्वामित्र-प्रसंग में भी इसका एक रूप, उस मुनि के आश्रम की वास्तविक स्थिति बतला कर, दिखलाया गया है।^७ फिर भी ये अंतर-

^१ 'राम चरित मानस' (किष्किंधा कांड), दोहा २८। ^२ वही, दोहा २९।

^३ वही, दोहा ६।

^४ वही (बालकांड), दोहा ४४-५।

^५ वही, (उत्तर कांड), दोहा ५८-६३।

^६ वही, (बाल कांड), दोहा ५०-५।

^७ राम चरित मानस (बालकांड), दोहा २०६।

कथाएं केवल प्रासंगिक उल्लेखों का काम करती हैं और इन्हें केवल संक्षिप्त वृत्तांतों अथवा कोरे वृत्तों का ही नाम दे सकते हैं। 'मानस' में अनेक स्थल ऐसे भी मिलते हैं जहाँ ऐसी कथाओं का केवल उल्लेख मात्र कर दिया है अथवा जहाँ इन्हें केवल दृष्टांतवत् रख दिया गया है। पहले प्रकार के उदाहरण में हम विश्वामित्र द्वारा कही गई अहल्या की 'सकल कथा' तथा गंगावतरण की 'सब कथा' को दे सकते हैं। इसी प्रकार दृष्टांतों के लिए शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, परशुराम, त्रिशंकु आदि संबंधी अनेक कथाओं का नाम ले सकते हैं।

'राम चरित मानस' के अंतर्गत इन चरितों, हेतु-कथाओं तथा अंतर-कथाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसी बातें भी पायी जाती हैं जो वस्तुतः प्रासंगिक मात्र हैं और जिनमें से दो-चार की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। इन शेष बातों में कतिपय दार्शनिक हैं और कुछ धार्मिक हैं। दार्शनिक विषयों में से इसमें माया, ब्रह्म, जीव एवं जगत् संबंधी प्रश्नों पर अपने सिद्धांत का निरूपण किया गया है और उसीके आधार पर निर्गुण एवं सगुण की तुलना कर के सगुणवाद का महत्त्व दर्शाया गया है। इसी प्रकार इसके अनेक स्थलों पर धार्मिक विषयों में से ज्ञान, भक्ति तथा नाम-स्मरण की चर्चा विशेष रूप से की गई है और भक्ति-साधना का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। कवि ने शिव, ब्रह्मा, इंद्र, नारद, सनकादिक ऋषियों तथा चारों वेदों तक से अपने इष्टदेव राम की बार-बार स्तुति करायी है और ग्रंथ में आयी हुई कतिपय कथाओं तथा स्वयं उसके भी श्रवण का फल-निर्देश किया है। इस प्रकार, इन जैसे विविध विषयों तथा बाह्य प्रसंगों के कारण, 'मानस' की राम-कथा कभी-कभी संकुचित एवं भाराक्रांत-सी भी प्रतीत होने लगती है। किंतु उसकी अपनी पृथक् महत्ता है जिस कारण उसका विवरण देने तथा विवेचन करने के पहले उसकी व्यापकता और उत्पत्ति एवं विकास की चर्चा भी आवश्यक होगी।

राम-कथा

गो० तुलसीदास ने अपनी रचना 'राम चरित मानस' (बालकांड) के वदना-प्रकरण में उन लोगों की भी वदना की है जिन्होंने राम-कथा का आधार लेकर अपने काव्य-ग्रंथ लिखे हैं और वहाँ पर उन्होंने सभी युगों एवं सभी भाषाओं के ऐसे कवियों की ओर संकेत किया है। वे वहाँ पर न केवल 'रामायण' के प्रसिद्ध रचयिता वाल्मीकि मुनि की चर्चा करते हैं, अपितु 'व्यास आदि कवि पुंगवों' का भी नाम लेते हैं और उनके साथ वैसे कवियों का भी उल्लेख कर देते हैं जो 'प्राकृत' मात्र हैं और जिन्होंने राम-कथा की रचना किसी न किसी 'भाषा' के माध्यम से की है। जैसे,

व्यास आदि कवि पुंगव नाना । जिन्ह सादर हरि मुजस बखाना ।
चरन कमल बंदौं तिन्ह केरे । पूरहुँ सकल मनोरथ मेरे ।
कलि के कविन्ह करौं परनामा । जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ।
जे प्राकृत कवि परम सदासे । भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने ।
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे । प्रनवों सबनि कपट छल त्यागे ।

×

×

×

बंदौ मुनिपद कंजु, रामायन जेहिं निरमयेउ ।

सरबर सुकोमल मंजु, दोषरहित दूषन सहित ॥^१

वास्तव में राम-कथा का साहित्य अत्यंत विस्तृत है और उसके आकार-प्रकार में भी अनेक भेद-विभेद पाये जाते हैं। गो० तुलसीदास ने स्वयं उसे प्रधानतः उस रूप में अपनाया है जो शिव की रचना समझा जाता है ! शिव ने, उनके अनुसार, उसे निर्मित कर पहले उसे अपने 'मानस' में ही रख छोड़ा था और पीछे समय पाकर उन्होंने उसे अपनी पत्नी पार्वती से कहा था। गो० तुलसीदास ने अपनी

^१ 'राम चरित मानस' (बालकांड), दोहा १४ ।

राम-कथा का आधार उसी 'उमा-महेश-मवाद' को बनाया और इसका 'राम चरित मानस' नाम भी उसके मूल स्त्रोत शिव के 'मानस' के अनुसार ही रखा।

रखि महेश निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ।
ताते रामचरित मानस वर । धरेउ नाम हिअँ हौर हरषि हर ।
कहाँ कथा सोइ सुखद सुहाई । सारद सुनहु सुजन मन लाई ।
संभु प्रसाद सुमति हिअँ हुलसी । राम चरित मानस कवि तुलसी ।^१

उम 'उमा-महेश-मवाद' से भी पता चलता है कि राम-कथा का रूप मदा एक ही नहीं रहा है। भिन्न-भिन्न 'हेतुओं' वा कारणों के अनुसार रामावतार के रूपों में विभिन्नता आती गई है और उन्हें पृथक्-पृथक् आधार मानने के कारण राम-कथा का रूप भी भिन्न-भिन्न होता गया है। गो० तुलसीदास ने अपने 'राम चरित मानस' के प्रारम्भिक अंशों में उन सभी 'हेतुओं' का उल्लेख कर देने की चेष्टा की है। इसके लिए, उन्हें अपने 'कथा प्रबन्ध' को कुछ 'विचित्र' रूप भी देना पड़ गया है और उसके कारण उन्हें इस बात की आशंका है कि वह लोगो को आश्चर्यजनक प्रतीत होगा। अतएव, वे वही पर इसका समाधान भी कर देते हैं और कहते हैं कि, वास्तव में, राम-कथा की कोई 'मिति' ही नहीं है। राम ने अपना अवतार अनेक प्रकार से धारण किया है जिस कारण रामायणों की 'अपार' संख्या 'सत् कोटि' तक पहुँच गई है। कल्पभेद के कारण रामावतार के चरित में भी अनेक भेद-प्रभेद होते गए हैं और उनके आधार पर भिन्न-भिन्न कवियों ने अपनी रचनाओं को भिन्न-भिन्न रूप दे दिये हैं। राम के जन्म का कारण सदा एक ही नहीं रहा करता, प्रस्तुत भिन्न-भिन्न तथा एक से एक विचित्र भी हुआ करता है। प्रत्येक कल्प में वे अपना अवतार धारण करते हैं, विविध प्रकार की सुंदर लीलाएं करते हैं और उन्हें लेकर कवि लोग अपने 'पुनीत प्रबन्धों' की रचना कर डालते हैं।

कोन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी । जेहि विधि संकर कहा बखानी ।
सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई ।

^१ 'राम चरित मानस', दोहा ३५-६।

जेहि यह कथा सुनी नहि होई । जनि आचरज करै सुनि सोई ।
 कथा अलौकिक सुनिहि जे ज्ञानी । नहि आचरजु करहि अस जानी ।
 रामकथा कै मिति जगनाहो । असि प्रतीति तिन्हके मनमाहीं ।
 नाना भांति राम अवतारा । रामायन सतकोटि अपारा ।
 कल्पभेद हरि चरित सुहाए । भांति अनेक मुनीसन्ह गाए ।
 करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सादर रतिमानी ।^१
 राम जनम के हेतु अनेका । परम विचित्र एक ते एका ।^२
 कल्प कल्प प्रीत प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना विधि करहीं ।
 तब तब कथा मुनीसन्ह गाई । परम पुनीत प्रबंध बनाई ।
 विविध प्रसंग अनूप बखाने । करहि न सुनि आचरजु सयाने ।^३

इस कारण गो० तुलसीदास ने, अंत में, इसके आगे इतना और भी कह दिया है,

हरि अनंत हरि कथा अनंता । कहहि सुनिहि बहु विधि सब संता ।
 रामचंद्र के चरित सुहाए । कल्प कोटि लगि जाहि न गाए ।

इस प्रकार गो० तुलसीदास ने राम-कथा के विस्तार और उसकी विभिन्नता अर्थात् ऐसी भिन्न-भिन्न कथाओं में पारस्परिक विरोध का अस्तित्व, स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है, किंतु एक परमभक्त कवि होने के नाते, उन्होंने इसका मूल कारण राम के विविध कल्पानुसार होने वाले अवतारों के 'हेतुओं' में ही ढूँढने की चेष्टा की है तथा इस बात को 'उमा महेश संवाद' के द्वारा कहला भी दिया है। उन्हें इसके लिए कुछ सांप्रदायिक आधार भी अवश्य मिला होगा क्योंकि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के लगभग की रचना 'आनन्द रामायण' में भी कहा गया है—

^१ 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दो० ३३ ।

^२ वही, दोहा १२२ ।

^३ वही, दोहा १४० ।

पुनः पुनः कल्पभेदाज्जातः श्रीराधवस्यच ।

अवतारः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित् क्वचित् ॥२९॥^१

अर्थात् कल्पभेद के अनुसार श्री रामचन्द्र का जन्म बार-बार होता आया है और करोड़ों ऐसे अवतार हुए हैं। इनमें कही-कही पारस्परिक भेद भी पाया जाता है। इसके सिवाय 'चरित रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्' के अनुसार भी रामकथा-साहित्य अत्यन्त विस्तृत है और उसके निर्माता वाल्मीकि मुनि बतलाये जाते हैं। 'पद्मपुराण' (पाताल खण्ड) में एक स्थल पर कहा गया है कि "जिस समय वाल्मीकि ने कौच पक्षी को आहत पाकर तीव्र शोक का अनुभव किया और निषाद को शाप दिया उस समय ब्रह्मा ने आकर उन्हें बतलाया कि निषाद वस्तुतः स्वयं रामचंद्र थे जो वहाँ पर मृगयार्थ आ गए थे। इस कारण आप उनके चरित का वर्णन कीजिए और संसार में यशस्वी बन जाइए। ब्रह्मा यह कह कर उधर ब्रह्मलोक चले गए और वाल्मीकि मुनि ने इधर रामचरित का वर्णन 'ग्रन्थकोटिभिः' में कर डाला"^२ जिसका अर्थ कभी-कभी 'शतकोटिभिः' के अनुसार सौ करोड़ श्लोकों का भी किया होता है। "अद्भुत रामायण (दे० मर्ग १), आनन्द रामायण (दे० राजाकाण्ड, सर्ग १) आदि में एक वाल्मीकि कृत 'शतकोटि श्लोक रामायण' का उल्लेख भी मिलता है, जिसके विभाजन से विभिन्न रामायणों की उत्पत्ति मानी गई है।"^३ और इस विचार से गो० तुलसीदास की उपर्युक्त पंक्ति 'रामायन सत कोटि

^१ 'आनन्द रामायण' (पूर्ण कांड, सर्ग ७)।

^२ "शापोक्त्या हृदि संतप्तं प्राचेतस मकल्मषम्।

प्रोवाच वचनं ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः॥

न निषादो सर्वं रामो मृगयां चर्तुमागतः।

तस्य संवर्णनैव सुश्लोक्यस्त्वं भविष्यसि॥

इत्युक्त्वा तं जगामाशु ब्रह्मलोके सनातनः।

ततः संवर्णयामास राघवं ग्रन्थकोटिभिः॥"—(हिंदुत्व, पृ० १२९-३०

पर उद्धृत)।

^३ डा० बुल्के : 'रामकथा' (हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय), पृ० ४६४।

अपारा' का आशय वाल्मीकि मुनि कृत सौ कर्गेः श्लोको तत्र सीमित भी समझा जा सकता है।

राम-कथा की रचना न केवल अत्यन्त प्राचीन काल से यहाँ होती आई है, अपितु उसका प्रसार वादर वी दूर-दूर तक के देशों में भी हो चुका है। उसके आज कुछ ऐसे भी रूप उपलब्ध हैं जिनकी समति वाल्मीकि मुनि रचित 'रामायण' के साथ सरलतापूर्वक नहीं बिटायी जा सकती और न उनके पारस्परिक भेदों का ही समाधान केवल किसी सांप्रदायिक समन्वय द्वारा किया जा सकता है। राम-कथा की व्यापकता और उसके विविध रूपों की पारस्परिक विभिन्नता का कुछ आभास दिलाने के लिए हम यहाँ पर उपलब्ध सामग्रियों की एक मक्षिप्त रूपरेखा देने जा रहे हैं।^१ फिर उनके आधार पर उसकी उत्पत्ति एवं क्रमिक विकास पर भी विचार करते हुए, हम इस बात को देखने की चेष्टा करेंगे कि इस विषय में उक्त सांप्रदायिक समन्वय के अतिरिक्त कोई अन्य वैज्ञानिक वा ऐतिहासिक समाधान भी दिया जा सकता है या नहीं।

राम-कथा की व्यापकता (भारत में)

अ (क)—हिन्दू राम-कथा

(१) वैदिक साहित्य—गो० तुलसीदास ने अपने 'राम चरित मानस' में चारों वेदों को रामचंद्र के विशद यश का वर्णन करने वाला बनलाया है।^२ वे इस बात का उल्लेख उस ग्रंथ के अन्य अनेक स्थलों पर भी करने हुए जान पड़ते हैं। परंतु किसी भी वेद में हमें राम-कथा का कोई श्रुतखलित रूप नहीं मिलता। वैदिक साहित्य में राम-कथा के अनेक पात्रों के नाम अवश्य आये हैं किंतु उनका पारस्परिक संबंध वा कथात्मक प्रसंग कहीं पर भी स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए 'ऋग्वेद'

^१ आगे की सामग्रियों के लिए विशेष सहायता डा० बुल्के की 'रामकथा' से ली गई है—लेखक।

^२ वंदौं चारिउ वेद, भव बारिधि वोहित सरिस ।

जिन्हहि न सपनेहुँ खेद, बरनत रघुबर बिसद जसु—राम चरित मानस (बाल कांड), दो० १४।

के द्वितीय अष्टक वाले १२६ वे सूत्र में दशरथ नाम आता है, जो किसी प्रतापी राजा की ओर निर्देश करना जान पड़ता है। जैसे,

‘चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति’^१

अर्थात् दशरथ के बालीम लाल रंग वाले घोड़े सहस्र घोड़ों के दल का नेतृत्व कर रहे हैं। इसी प्रकार ‘ऋग्वेद’ के हो एक अन्य स्थल पर राम का भी नाम आता है और वह भी कदाचित् किसी राजा के ही लिए है। जैसे,

‘प्र तद्ः शीमे पृथवाने देने प्र रामे दोच मसुरे मयवत्सु।

ये युवत्वाय पञ्चशतास्मयु पथा विश्वाव्येषाम्’ ॥१४॥^२

अर्थात् मैंने दुःशीम, पृथवान, वैन एवं राम असुर यजमानों के लिए यह प्रवचन किया है। उन्होंने पांच सौ रथ वा घोड़े जुतवाए हैं जिस कारण मेरे प्रति उनका अनुग्रह चागे ओर विदित और प्रसिद्ध हो गया है। उसके अतिरिक्त जो प्रयोग ‘राम’ के हुए हैं वे कतिपय ब्राह्मणों के विषय में हैं। वैदिक साहित्य में हमें ‘जनक वैदेह’ का परिचय कुछ अधिक विस्तार के साथ मिलता है। कृष्ण यजुर्वेदीय ‘तैत्तिरीय ब्राह्मण’ के अंतर्गत तो वे केवल देवताओं से भेंट कर उनसे एक विशेष यज्ञ के परिणामों की जिज्ञासा करनेवाले ही प्रतीत होते हैं (दे० ३-१०-९) किंतु ‘शतपथ ब्राह्मण’ में वे एक तत्त्वज्ञानी के रूप में हमारे सामने आते हैं और इस बात का उल्लेख वहाँ पर चार जगह तक मिलता है। प्रथम प्रसंग (११-३-१-२-४) में जनक वैदेह याज्ञवल्क्य से अग्निहोत्र के विषय में प्रश्न करते हैं और उनके उत्तर से प्रसन्न होकर उन्हें १०० गांव दान कर देते हैं। द्वितीय प्रसंग (११-४-३-१०) में, इसी प्रकार, वे याज्ञवल्क्य को मित्र विद यज्ञ का जानकार पाकर उन्हें एक सहस्र गावों का दान देते हैं और एक तृतीय प्रसंग (११-६-२-१-१०) में वे याज्ञवल्क्य के अतिरिक्त अन्य दो ब्राह्मणों से भी अग्निहोत्र की विधि पूछते हैं तथा उन्हें सबसे कुशल पाकर भी इसका रहस्य स्वयं समझाने लगते हैं। इस प्रसंग में जनक वैदेह एक विज्ञ ब्राह्मण की कोटि में भी गिने जाते जान पड़ते हैं। फिर चौथे प्रसंग (११-६-

^१ ‘ऋग्वेद’ (१ मण्डल १२६ सूक्त ४ मंत्र)।

^२ वही, (१० मं० १९३ सू० मं० ४)।

३-१ आदि) में किसी यज्ञ का प्रबंध करते समय वे सबसे विद्वान् ब्राह्मण को १००० गांव देने हैं और, अंत में, अधिक जिज्ञासा प्रकट करने के कारण, किसी शाल्व्य याज्ञबल्क्य के सामने मर भी जाते हैं।

परंतु राम-कथा का प्रसिद्ध 'सीता' नाम वैदिक साहित्य में अनेक बार आया है और वह स्थूलतः दो भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रकट करता है। एक प्रसंग (कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण, २-३-१०) के अनुसार सीता-सावित्री प्रजापति की पुत्री है और वह सोम राजा के साथ विवाह करती है। 'प्रजापति' वहाँ पर सूर्य के लिए कहा गया समझा जाता है। सोम राजा चन्द्रमा माने जाते हैं। इस कारण कुछ विद्वानों का अनुमान है कि राम-कथा के नायक रामचंद्र के नाम में लगा हुआ 'चंद्र' शब्द इस वैदिक उपाख्यान का स्मरण दिलाता है। उपाख्यान की सीता-सावित्री, अपने शरीर को सोमराजा के लिए आकर्षक बनाने के निमित्त, कतिपय अंगरागों का भी प्रयोग करती हैं जो 'वाल्मीकि-रामायण' की सीता को, दिव्य सौंदर्य प्राप्त करने के लिए, अनुसूया द्वारा दिये गए अंगराग का वीज रूप समझा जा सकता है। क्योंकि यहाँ पर भी अनुसूया ने स्पष्ट कहा है—

अंगरागेण दिव्येन लिप्तांगी जनकात्मजे ।

शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्री विष्णु मव्ययम् ॥२॥^१

किंतु रामचन्द्र शब्द में लगा हुआ 'चंद्र' शब्द मूलतः उस नायक के उत्कृष्ट शील एवं सौम्यता का ही द्योतक जान पड़ता है। उसके सूर्यवशी होने के कारण भी उक्त अनुमान कुछ असंगत-सा लगता है। इसके सिवाय आकर्षण के लिए किया गया अंगराग का प्रयोग भी ऐसी बात नहीं जो किसी प्रसंग विशेष की ओर ही निर्देश करती हो और वह अन्यत्र भी लागू न हो सके।

इस 'सीता सावित्री' शब्द से कहीं महत्वपूर्ण केवल 'सीता' शब्द ही माना जा सकता है जो वैदिक साहित्य के अंतर्गत एक नितात भिन्न अर्थ का बोधक है। 'ऋग्वेद' के तृतीय 'अष्टक' में जो चतुर्थ 'मण्डल' का ५७ वां सूक्त है उसमें सीता शब्द कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वहाँ कहा गया है कि "हे सीते,

^१ 'वाल्मीकीय रामायण' (२-११८-२०) ।

(अर्थात् हल चलाये जाने से भूमि में उत्पन्न चिराव वा 'हराई') तेरी हम वदना करते हैं जिससे तू हमारे लिए सुंदर धन एवं फल की देने वाली होवे। हे सुभगे, तू हमारी ओर अभिमुख हो।" "इंद्र सीता को ग्रहण करे और सूर्य उसका संचालन करे। वह पानी से पूर्ण रह कर प्रति वर्ष हमें धान्य प्रदान करती रहे।"^१ यहाँ पर 'सीता' शब्द कृषि-कार्य के एक परिणाम के अतिरिक्त किसी दिव्य व्यक्तित्व का भी परिचायक है और इसका संबंध इंद्र एवं सूर्य के साथ भी जोड़ा गया है। इस प्रकार व्यक्तित्व का आरोप हो जाने पर फिर सीता इंद्र-पत्नी के रूप में अवतीर्ण हो गई।^२ वृष्टि एवं विद्युत् का स्वामी होने के कारण इंद्र ने स्वभावतः जल वृष्टि द्वारा उसका सिचन किया और वह बीज पाकर आप से आप शस्य-श्यामला हो उठी जिस कारण इंद्र का अन्यत्र 'उर्वरा पति' नाम भी सार्थक हुआ।^३ पृथ्वी के ऊपर जब जल वृष्टि नहीं हो पाती और सीता इसके कारण आतुर हो जाती है तो इंद्र ही मेघों को प्रेरित करता है और वृष्टि की सारी बाधाओं को नष्ट कर देता है। वह अपनी पत्नी की उर्वरा शक्ति को कुठित करने वाले राक्षस वृत्र का नाश कर देता है और ऐसा करते समय उसे मरुत् से भी पूरी सहायता मिलती है। मरुत् इसके युद्ध में भी प्रवृत्त होता दीख पड़ता है।^४ सीता, इंद्र, वृत्र एवं मरुत् इस प्रकार, एक उपाख्यान के पात्रों जैसा रूप ग्रहण कर लेते हैं। वे क्रमशः एक रूपक की सृष्टि कर देते हैं जिसके आधार पर 'वाल्मीकीय रामायण' की राम-कथा के उत्तरार्द्ध (सीता हरण से लेकर रावण बध तक) की भित्ति खड़ी हो जाती है। आगे चल कर, जिस समय विष्णु इंद्र का पद ग्रहण कर लेते हैं उस समय उनके अवतार राम के साथ भी सीता का संबंध संभव हो जाता है। 'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार "विष्णु ने अवतार ग्रहण करने से पूर्व सभी देवताओं से अपने सहायक रूप में जन्म लेने को कहा और इन्होंने किसी न किसी रूप में अवतरित होकर राम को रावण-

^१ 'ऋग्वेद' (चतुर्थ मण्डल, ५७ सूक्त, मंत्र ६-७)।

^२ 'पारस्कर गृह्य सूत्र' (२-१७-९)।

^३ 'ऋग्वेद' (८ मण्डल, २१ सूक्त, ३ मंत्र)।

^४ वही, (६ मं० ६६ सू०, ११ मं०)।

वध में सहायता प्रदान की।^१ तदनुसार “मग्नीव सूर्य के, नल विद्यवकर्मा के, नील द्विविद् एव मयंद अश्विनो के, नारा वृहस्पति के, मुपेण वरुण के, शरभ पर्जन्य के तथा हनुमान वायु अथवा मरुत् के अवतार हूँ।”^२ इन सभी देवताओं ने व्यक्त-अव्यक्त रूप में छत्र वृत्र कथा में भाग लिया था और इस प्रकार राम के सभी प्रमुख महायुद्धों का मूल हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है।^३ राम-कथा की सीता एवं कृषि की अधिष्ठात्री देवी उपर्युक्त वैदिक साहित्य की सीता के सवध का कुछ आभास ‘रामायण’ की सीता-जन्म-कथा में भी मिलता है। कहते हैं कि मेनका को आकाश मार्ग से जाती हुई देखकर जनक के मन में कामना हुई कि उससे कोई संतान हो। फलतः खेत की ‘हराई’ में जनक की सीता मिल गई और वह जनक की मानस-पुत्री एवं भूमिजा बन कर भी प्रसिद्ध हुई।^४ फिर भी सभी उक्त पात्रों का पारस्परिक संबंध केवल कल्पना पर ही आश्रित है।

(२) **वाल्मीकीय रामायण**—राम-कथा का एक सुशृंखलित रूप, सर्वप्रथम, हमें ‘वाल्मीकीय रामायण’ में ही दीख पड़ता है। उल्लिखित त्रौच-वध प्रसंग में प्रकट होता है कि राम कोई राजा थे जिनके चरित की ओर ब्रह्मा ने वाल्मीकि मुनि का ध्यान दिलाया और वे उस विषय पर काव्य रचना में प्रवृत्त हो गए। स्वयं ‘वाल्मीकीय रामायण’ में एक श्लोक आता है जिससे पता चलता है कि ‘रामायण’ नामक एक महान् आख्यान उसकी रचना के समय भी प्रचलित था। वह इक्ष्वाकु वंश के राजाओं से संबंध रखता था और संभवतः उसकी कोई मौखिक परंपरा उसके पहले से ही चली आ रही थी। जैसे,

इक्ष्वाकूणा मिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।

महदुत्पन्न माख्यानं रामायण मिति श्रुतम्॥३॥^५

राम इक्ष्वाकु वंश के ही थे इसलिए अधिक संभव यही है कि वह ‘रामायण’ नाम का महान् आख्यान उनके चरित को लेकर निर्मित हुआ होगा। अश्वघोष

^१ ‘वाल्मीकीय रामायण’ (१-१७)। ^३ वही, (१-१७)।

^२ ‘नागरी प्रचारिणी पत्रिका’ (वर्ष ५५, अंक ४), पृ० ३०५।

^४ ‘वाल्मीकीय रामायण’ (१-६६-१४)। ^५ वही, (१-५-३)।

कवि के 'बुद्ध चरित' महाकाव्य के एक श्लोक से यह भी पता चलता है कि वाल्मीकि कवि के पहले उनके पूर्वज च्यवन महर्षि ने उनके समान पद्यों की रचना की होगी। च्यवन महर्षि को वहाँ पर इस कार्य में वाल्मीकि मुनि की अपेक्षा असफल भी दिखलाया गया है। उसमें कहा गया है,

वाल्मीकि नादश्च ससर्ज पद्यं जग्रथ यन्न च्यवनो महर्षिः ॥४८॥^१

अर्थात् वाल्मीकि मुनि के केवल नाद ने ही वह पद्य बनाया जिसे महर्षि च्यवन नहीं बना सके थे और यहाँ पर 'नाद' शब्द कदाचित् उस शोकोद्गार की ओर संकेत करता है जिसे वाल्मीकि मुनि ने कौच वध प्रसंग के समय प्रकट किया था। ये च्यवन महर्षि 'महाभारत' के एक स्थल पर^२ 'भार्गव' कहे गए हैं और उसी में, अन्यत्र^३ भार्गव द्वारा रचे गए किसी श्लोक का भी उल्लेख है जो उनके 'रामचरित' में आया है। वह श्लोक 'वाल्मीकीय रामायण' में भी पाया जाता है, किन्तु भार्गव के ग्रंथ 'राम चरित' का कहीं पता नहीं चलता। यदि च्यवन महर्षि एव उक्त भार्गव अभिन्न व्यक्ति सिद्ध हो सकें तो वाल्मीकि मुनि के पहले उनकी रचना 'राम चरित' के के निर्मित हो चुकने का भी अनुमान किया जा सकता है तथा यह भी संभव माना जा सकता है कि जिस 'महान् आख्यान रामायण' का उल्लेख 'वाल्मीकीय रामायण' के उपर्युक्त श्लोक में हुआ है वह 'रामचरित' ही रहा होगा। कृत्तिवासी बगला रामायण के अनुसार वाल्मीकि मुनि च्यवन के पुत्र^४ थे और च्यवन के भी वाल्मीकि द्वारा आच्छादित होने की कथा प्रसिद्ध है। फिर भी 'बुद्ध चरित' में ही आये हुए एक अगले श्लोक,

तस्मात्प्रमाणं न वयो न कालः कश्चित्त्वचिच्छैष्ठ्य मुपैति लोके।

राज्ञाम्बोणां च हितानितानि, कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वं ॥५१॥

^१ 'बुद्ध चरित' (सर्ग १, श्लोक ४८)।

^२ 'भृगोर्महर्षेः पुत्रोऽभूच्च्यवनोनामभार्गवः।' — 'महाभारत' (६-१२२-१)।

^३ 'श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेन महात्मना।

आख्याते रामचरिते नृपतिं प्रति भारत' ॥ वही, शांतिपर्व (५६-४०)।

^४ 'च्यवन मुनिर पुत्र नाम रत्नाकर' — कृत्ति वासी रामायण' (पृ० २)। जहाँ वाल्मीकि मुनि का ही एक अन्य नाम 'रत्नाकर' भी बतलाया गया है।

अर्थात् 'इसलिए न तो अवस्था प्रधान है, न काल, लोक में कोई कभी श्रेष्ठ हो जाता है। राजाओं तथा ऋषियों के कई हितकारक कार्य हैं जो पुरखाओं से न हो सकें और उनके पुत्रों ने कर दिखाए।' के आधार पर स्व० चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने केवल इतना ही परिणाम निकाला है कि "च्यवन वाल्मीकि का पिता, पितामह या पूर्वज था, किंतु यह नहीं कह सकते कि च्यवन ने गद्य या पद्य में रामायण लिखा था।"^१ वैसी दशा में उक्त 'रामचरित' प्रसंगतः च्यवन भार्गव के पुत्र वाल्मीकि भार्गव की ही रचना माना जा सकेगा और वह उनके प्रसिद्ध 'रामायण' से अभिन्न भी समझा जा सकता है। फिर भी 'महान् आख्यान रामायण' की प्राचीनता में सदेह नहीं।

'वाल्मीकीय रामायण' में कोई एक सर्व स्वीकृत पाठ नहीं पाया जाता, प्रत्युत तीन भिन्न-भिन्न पाठ प्रचलित हैं जिन्हें दाक्षिणात्य पाठ, गौडीय पाठ एवं पश्चिमोत्तरीय पाठ कह सकते हैं और जिनकी पारस्परिक तुलना करने पर पता चलता है कि इनमें से द्वितीय एवं तृतीय में अपेक्षाकृत अधिक साम्य है। इस प्रकार अतः में केवल उदीच्य एवं दाक्षिणात्य नामक दो ही भिन्न-भिन्न पाठ रह जाते हैं जिनमें से भी दूसरा पहले की अपेक्षा अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। 'वाल्मीकीय रामायण' के 'प्रायः समस्त समालोचक' इस बात पर सहमत जान पड़ते हैं कि उसका 'उत्तर कांड' प्रक्षिप्त है और उसके 'बालकांड' के लिए भी बहुधा इसी प्रकार का मत प्रदर्शित करते हुए वे विभिन्न तर्क उपस्थित करते पाये जाते हैं। फलतः ऐसे लोगों ने वाल्मीकि रचित किसी 'आदि रामायण' के भी अस्तित्व की कल्पना की है। उस 'आदि रामायण' में, इनके अनुसार, केवल बीच वाले पांच कांडों की ही कथा थी और वह, संभवतः, कांडों अथवा सोपानों में विभाजित भी नहीं था। उसकी कथा का मुख्य सारांश केवल यही था कि राम एक चरित्रवान् व्यक्ति थे जिन्हें अपने पिता के आदेशानुसार अपना घर छोड़ कर वन में जाना पड़ा था और वहाँ पर अपनी पत्नी के अपहरण के कारण युद्ध द्वारा रावण का बध करना पड़ा था। इस पद्यमयी कथा को पीछे वाल्मीकि मुनि के शिष्य आदि भिन्न-भिन्न आश्रमों एवं राजदरबारों

१ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग २ (सं० १९७८), पृ० २३६।

में गाते फिरे और उसका अधिक विकास एवं प्रचार होता गया। 'रामायण' का नामकरण भी पहले कदाचित् राम के 'अयन' अथवा उनके वन में भ्रमण करने की प्रधान घटना के ही कारण हुआ था। कालानुसार इस कथा के अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय होते जाने के साथ ही, इसके प्रमुख पात्रों के विषय में स्वभावतः अनेक प्रश्न उठने लगे और सीता कौन थी? राम कौन थे? उनका जन्म और विवाह कहाँ, कब और कैसे हुआ तथा वे कब और किस प्रकार घर लौटकर अपने राज्य का उपभोग करने में लगे के समाधान में उक्त पाच काडों के पहले और पीछे एक-एक नवीन काडो की सृष्टि हो गई जो क्रमशः 'वालकांड' एवं 'उत्तरकांड' कहलाए। इसके अतिरिक्त उन पाचो काडो में भी समयानुसार अनेक प्रसिद्ध अंश जुड़ते चले गए और पूरी उपलब्ध रचना 'आदि रामायण' की दूनी तक हो गई। 'आदि रामायण' की रचना वाल्मीकि ने मौखिक आख्यानों वा प्रचलित लोक गीतों के आधार पर की थी और वह भी कदाचित् बहुत दिनों तक मौखिक रूप में ही प्रचलित थी जिस कारण भिन्न-भिन्न प्रदेशों में उसे क्रमशः भिन्न रूप मिलते गए और भिन्न-भिन्न पाठ संभव हो सके। 'वाल्मीकीय रामायण' के वर्तमान रूप का निर्माण ईसा की दूसरी शताब्दी तक सम्पन्न हुआ जब कि 'राम विष्णु के अवतार' भी समझे जाने लगे थे।^१

(३) महाभारत—'महाभारत' में राम-कथा का वर्णन अनेक स्थलों पर आता है जिनमें से सबसे अधिक उल्लेखनीय 'रामोपाख्यान' है। द्रौपदी का हरण हो जाने पर जब युधिष्ठिर शोकाकुल होकर अपने भाग्य को कोसने लग जाते हैं तो मार्कण्डेय उन्हें 'रामोपाख्यान' सुनाकर आश्वस्त करते हैं। इसके सिवाय 'द्रोण पर्व' एवं 'शांति पर्व' के अंतर्गत भी राम-कथा 'षोडशराजीय' नामक उपाख्यान में कही गई है और दाशरथि राम वहाँ चक्रवर्ती माने गए हैं। 'सभा पर्व' एवं 'भीष्म पर्व' में भी राम का उल्लेख प्राचीन प्रतापी राजाओं की सूचियों में किया गया है।

^१ 'दि एज अव् इम्पीरियल युनीटो' (भारतीय विद्या भवन, लम्बई) २५४.

(आदि रामायण की रचना बौद्ध धर्म के आरंभ से एक दो शताब्दी पहले हो चुकी थी। 'हेलेनिज्म इन ऐश्वेत इंडिया': जी० एन० बनर्जी, पृ० २३६)

‘पोडश राजीय’ उपाख्यान में जहाँ पर नारद शोकातुर संजय के प्रति राम-कथा का वर्णन करते हैं वहाँ पर उस कथा का विस्तार केवल ‘अयाध्या कांड’ से लेकर ‘युद्ध कांड’ तक को ही घटनाओं तक है जिससे प्रतीत होता है कि उसका आधार ‘आदि रामायण’ की मूल कथा मात्र ही रहा होगा, किंतु अन्य स्थलों पर ऐसी बात नहीं पायी जाती। उन प्रसंगों में न केवल राम के जन्म एवं सीता की अग्नि-परीक्षा तक का वर्णन है, अपितु वे विष्णु के अवतार भी बन गये दीख पड़ते हैं। अतएव, यह अनुमान किया जाता है कि जिस प्रकार ‘रामायण’ का मूल रूप पहले-पहल ‘आदि रामायण’ था उसी प्रकार, ‘महाभारत’ की रचना पूर्ण होने के पहले, उसका भी केवल एक ‘भारत’ का ही रहा होगा और वह वर्तमान ‘वाल्मीकीय रामायण’ के पहले ही बन चुका होगा। “इतना असंदिग्ध है कि ‘भारत’ तथा ‘रामायण’ स्वतंत्र रूप से उत्पन्न हुए, ‘भारत’ पश्चिम में तथा ‘रामायण’ पूर्व में। दोनों के संपर्क के पदवात् ‘भारत’ ने ‘महाभारत’ का रूप धारण कर लिया है।”^१ आर्यही कारण है कि एक ही ग्रंथ के अंतर्गत ‘राम-कथा’ के दो भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। ‘वन पर्व’ वाला ‘रामोपाख्यान’ पहले कह दिया गया है कि “राजन् पुरातन इतिहास में जो घटना हुई है उसे सुनो”^२ जिससे राम-कथा की प्राचीनता का पता चलता है और इसी प्रकार ‘द्रोण पर्व’ के एक श्लोक में यह भी विदित होता है कि वाल्मीकि ने उसकी रचना बहुत पहले कर दी होगी।^३

(४) पौराणिक साहित्य—पौराणिक साहित्य के अंतर्गत प्रधानतः १८ महापुराणों तथा अनेक उपपुराणों के नाम लिये जाते हैं। उनकी रचना का एक ही समय होना सिद्ध नहीं, किंतु उनके भीतर जो वर्णन आते हैं उनकी शैली लगभग एक-सी ही जान पड़ती है। उनमें वंशावलियों की चर्चा विशेषतः उल्लेखनीय है। इन वंशावलियों में न केवल प्रतापी राजाओं के नाम आते हैं, अपितु उनमें से कई के प्रमुख महान् कार्यों का विवरण भी दिया गया रहता है। फलतः राम-कथा के

^१ डा० बुल्के : ‘रामकथा’ (प्रयाग), पृ० ४१।

^२ ‘महाभारत’ (वनपर्व), अ० २७३, श्लोक ६।

^३ वही, (द्रोण पर्व), अ० १४३, श्लोक ८५।

राम, उनके वनगमन, राक्षसों के साथ युद्ध एवं अयोध्या के राज्य आदि का वर्णन संक्षिप्त रूप से अनेक पुराणों में पाया जाता है। केवल 'वामन पुराण', 'मत्स्य पुराण', 'भविष्य पुराण', 'लिंग पुराण' तथा 'मार्कण्डेय पुराण' नामक महापुराणों में राम-कथा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। 'विष्णु पुराण' तथा 'वायु पुराण' में उसका प्रायः एक ही प्रकार का संक्षिप्त रूप उपलब्ध है और 'भागवत पुराण' में सीता लक्ष्मी का अवतार हो गई है। 'अग्नि पुराण' में भी राम-कथा का संक्षिप्त रूप है, किंतु वह वाल्मीकीय 'रामायण' के सातों कांडों का सीधा अनुसरण करती जान पड़ती है। 'नारदीय पुराण' में यह बात केवल उसके 'उत्तर कांड' की कथा में ही दीख पड़ती है, उसके 'पूर्व खंड' की कथा का विस्तार केवल 'युद्ध कांड' तक ही हुआ है। 'पद्म पुराण' एवं 'स्कंद पुराण' बड़े-बड़े महापुराण हैं और इनके भिन्न-भिन्न खंडों में राम-कथा की चर्चा कई बार कर दी गई है। परन्तु 'ब्रह्मवैवर्त पुराण', 'वाराह पुराण' और 'कूर्म पुराण' में हमें इस कथा के केवल कुछ अंशों की ही चर्चा की गई मिलती है और 'ब्रह्मांड पुराण' के अंतर्गत भी यह 'अध्यात्म रामायण' के एक विशिष्ट रूप में ही लक्षित होती है। अन्य पुराणों में से 'नृसिंह पुराण', 'सौर पुराण' एवं 'हरिवंश' में राम-कथा का रूप संक्षिप्त मिलता है और वह वाल्मीकीय 'रामायण' के अनुसार है। 'देवी भागवत' का 'रामोपाख्यान' तथा 'वल्किपुराण' की विस्तृत राम-कथा भी उससे भिन्न नहीं है। शेष पुराणों में उसके केवल फुटकर प्रसंग ही आते हैं, इन पुराणों की राम-कथा के राम अधिकतर अवतार के ही रूप में हमारे सामने आते हैं और उसकी घटनाएं 'रामायण' के विरुद्ध जाती नहीं जान पड़ती।

प्रसिद्ध पुराणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे रामायण-ग्रंथ भी उपलब्ध हैं जिनकी शैली बहुत कुछ पौराणिक ही कही जा सकती है। इनमें से 'अध्यात्म रामायण' का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है जिसमें सारी राम-कथा को एक शुद्ध सांप्रदायिक रूप दिया गया है। 'अद्भुत रामायण', 'आनन्द रामायण', 'महारामायण', 'भुशुंडी रामायण' तथा उन 'संवृत रामायण', 'लोमश रामायण', 'अगस्त्य रामायण', 'मंजुल रामायण', 'सुवर्चस रामायण', 'सौर्य रामायण', 'चान्द्र रामायण' आदि में भी राम-कथा को अलौकिक रूप प्रदान किया गया है जिनकी चर्चा स्व० रामदास

गौड ने अपने 'हिन्दुत्व' ग्रंथ में की है।^१ इन रामायण-ग्रंथों में कुछ ऐसी रचनाएं भी मिलती हैं जिनमें राम-कथा का कोई अधिक विवरण नहीं पाया जाता, किंतु जिनमें राम को केवल प्रमुख स्थान मिला है। ऐसे ग्रंथों में सबसे अधिक प्रसिद्ध 'योग वासिष्ठ' है जिसमें रामावतार को विशेष महत्व दिया गया है। अन्य ऐसी रामायणों में राम-कथा के केवल कुछ फुटकर प्रसंगों का ही विशद उल्लेख मिलता है और वे कई दृष्टियों में प्रमुख रामायणों की केवल पूरक-सी प्रतीत होती हैं। इनके सिवाय डा० बुल्के ने कुछ ऐसी रचनाओं के भी नाम दिये हैं जिनमें राम-कथा की प्रधान घटनाओं की तिथियाँ भी दी गई हैं।^२ 'हनुमत्संहिता' तथा 'बृहत्कोशल खड्ग' जैसे राम-कथा विषयक ग्रंथ रामायण नहीं कहे जाते, किन्तु उनमें उस पर पड़े हुए कृष्ण-लीला का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार पौराणिक साहित्य का अध्ययन कर लेने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन राम-कथा में राम अवतार के रूप में नहीं आते। पहले वे एक प्रतापी राजा अथवा चरित्रवान् व्यक्ति-सं ही प्रतीत होते हैं, फिर ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में वे विष्णु का एक अवतार बन जाते हैं और अंत में, उसकी १३ वीं शती के अनंतर उनके प्रति भक्ति का प्रचार विशेष रूप से होने लगता है।

(५) संस्कृत का ललित काव्य साहित्य—'बृहद्धर्म पुराण' में एक स्थल पर कहा गया है कि वाल्मीकि मुनि ने सर्व प्रथम रामायण महाकाव्य की रचना की और वही पीछे के सभी काव्यों, इतिहासों एवं पुराणों का मूल स्रोत बन गया तथा संहिताएं तक भी उसीके आधार पर निर्मित हुईं।^३ फलतः हम देखते हैं कि जिन 'रघुवंश' आदि महाकाव्यों की रचना होती आई है उनके राम

^१ 'हिन्दुत्व' (काशी), पृ० १३८-४३।

^२ 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० १६९-७०। (उदाहरण के लिए वे० 'अब्द रामायण' के अनुसार रामायण का तिथि पत्र—'कल्याण' सं० १९८७, पृ० ३०२-५)।

^३ रामायण महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।

तन्मूलं सर्वं काव्यानामितिहास पुराणयोः॥२८॥

संहितानां च सर्वासां मूलं रामायणं मतम्॥—(पूर्व भाग, अध्याय २५)।

चरित संबंधी कथानकों में 'वाल्मीकीय रामायण' का ही अनुसरण है। कालिदास के 'रघुवंश' का विषय समस्त प्रमुख इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का वर्णन है जिसमें राम चरित को विशेष स्थान दिया गया है। इसी प्रकार 'भट्टिकाव्य' 'जानकी हरण' अभिनंद कृत 'राम चरित' तथा काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र की काव्य-रचना 'रामायण मंजरी' में भी यही किया गया है। क्षेमेन्द्र के अन्य काव्य 'दशवतार चरित' के राम चरित की यह एक विशेषता है कि वहाँ पर कथा का विकास रावण के दृष्टिकोण से होता है। उसका आरंभ भी रावण की तपस्या, वर प्राप्ति अत्याचार आदि से होता है, किंतु आगे के अनेक स्थलों पर वह 'रामायण' की कथा से अधिक भिन्न नहीं जान पड़ता। पौराणिक साहित्य एवं ललित काव्य-साहित्य की रचनाओं में एक अंतर इस बात का दीख पड़ता है कि प्रथम वर्ग में जहाँ पात्रों के केवल उदात्त रूप की ही ओर अधिक ध्यान दिया गया है और कथा के प्रमुख नायक राम एक अवतार अथवा इष्ट देव तक बन जाते हैं वहाँ द्वितीय वर्ग के भीतर श्रैंगारिक वर्णनों का भी पूरा समावेश कर दिया जाता है और इसके प्रभाव से राम एवं सीता तक को मुक्त नहीं रखा जाता।

राम-कथा-संबंधी नाटकों में कथानक का परिवर्तन कहीं अधिक स्पष्ट है। ये रचनाएँ 'रामायण' की मूल की कथा-वस्तु वनवास, सीता-हरण एवं रावण-बध को अपेक्षाकृत कम महत्त्व प्रदान करती हैं और नवीन पात्रों की सृष्टि कर उसकी अन्य घटनाओं में भी बहुत कुछ परिवर्तन ला देती हैं। इनमें विस्तृत वर्णनों एवं संवादों के कारण भी बहुत-सी गौण बातों का समावेश हो गया है और कई अद्भुत और अलौकिक बातें आ गई हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इस बात में दीख पड़ती है कि ये अधिकतर पूरी राम-कथा के केवल थोड़े से ही अंशों को लेकर चलते हैं। भास कवि के 'प्रतिमा' नाटक में वाल्मीकीय 'रामायण' के अयोध्या कांड की कथा एवं सीता-हरण का वर्णन है जहाँ उसके 'अभिषेक' नाटक की कथा-वस्तु बालि बध से आरंभ होकर राम के युद्धोत्तर होने वाले अभिषेक तक चलती है। इसी प्रकार भवभूति के 'महावीर चरित' एवं 'उत्तर राम चरित' में भी राम-कथा विभाजित हो गई है। केवल राजशेखर कृत 'बाल रामायण', जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव', मुरारि कृत 'अनर्थ राघव' तथा 'महा नाटक' वा 'हनुमन्नाटक'

ही ऐसी रचनाएं हैं जिनमें कथानक का विस्तार सीता-स्वयंवर अथवा उसके आस-पास से लेकर रामाभिषेक तक किया गया है। अन्यथा कुछ अन्य नाटकों में तो यह केवल राम एवं सीता के प्रेम-संबंध और विवाह, अगद के दूत-कार्य एवं युद्ध-वर्णन तथा सीता-त्याग से लेकर सीता-राम-मिलन तक के प्रसंगों तक ही सीमित रह जाता है जैसा क्रमशः हस्तिमल्ल कृत 'मैथिली कल्याण', सुभट्ट कृत 'दूतागद' तथा धीर नाग रचित 'कुन्दमाला' नामक नाटको में पाया जाता है।

संस्कृत के ललित काव्य साहित्य के अंतर्गत हम उन रचनाओं की भी गणना कर सकते हैं जो खंड काव्य, कथा काव्य वा चम्पू जैसे नामों से अभिहित होते हैं। राम-कथा का आधार इन सभी प्रकार की साहित्यिक रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में लिया गया दीख पड़ता है। खंड काव्य या तो 'मेघदूत' वा 'गीत गोविन्द' के अनुकरण में 'हंसदूत', 'भ्रमर दूत', 'कपि दूत' अथवा 'चंद्रदूत' तथा 'राम गीत गोविन्द', 'गीता राघव', 'जानकी गीता', जैसे नामों के साथ गीति काव्य के रूप में मिलता है या उसका रूप श्लेष काव्य, विलोम काव्य अथवा चित्र काव्य जैसे फुटकर काव्यों के अंतर्गत लक्षित होता है। इन अंतिम तीन प्रकार के काव्यों में से श्लेष काव्य के उदाहरणों में हम संध्याकर नन्दि कृत 'राम चरित', धनजय कृत 'राघव पाण्डवीय', तथा हरदत्त सूरि कृत 'राघवनैषधीय' के नाम ले सकते हैं जिनमें हमें राम-कथा के साथ-साथ क्रमशः राजा रामपाल के चरित्र, महाभारत की कथा एवं राजा नल का भी चरित्र श्लेषार्थ के द्वारा उपलब्ध होता है। विलोम काव्य के उदाहरणों में भी, इसी प्रकार 'राम कृष्ण विलोम काव्य' तथा 'यादव-राघवीय काव्य' के नाम लिये जा सकते हैं जिनके प्रत्येक श्लोक को एक ओर से पढ़ने से यदि राम-कथा-परक अर्थ लगता है तो उसीको दूसरी ओर से पढ़ने पर श्रीकृष्ण के चरित्र का बोध होने लगता है। चित्र काव्यमयी राम-कथा का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण कृष्ण मोहन कृत 'रामलीलामृत' में पाया जाता है जिसमें विश्वामित्र के आगमन से लेकर रावण-बध तक वर्णन पद्मबंध, गो मूत्र बंध, सोपान, आदि चित्रालंकारों द्वारा कलात्मक ढंग से किया गया है जिसके कारण उसकी कथा-वस्तु को समुचित महत्त्व नहीं मिल सका है। राम-कथा-संबंधी कथा-काव्य अथवा चम्पू-काव्य के उदाहरण हमें अधिक संख्या में नहीं मिलते और जो उपलब्ध

हैं उनमें भी अधिकतर वाल्मीकीय 'रामायण' का ही अनुसरण है। 'कथा सरित्सागर' में आयी हुई दो सक्षिप्त राम-कथाओं में से केवल दूसरी में ही कुछ नवीनता पायी जाती है जो कांचन प्रभा द्वारा नरवाहन के प्रति कही गई है। राजा भोज का 'चम्पू-रामायण' ग्रंथ तो स्पष्ट ही वाल्मीकीय 'रामायण' के दाक्षिणात्यपाठ का चम्पू रूप समझा जाता है।

(६) अन्य भाषा साहित्य—(क) प्राकृत—महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा हुआ प्रवरसेन का 'रावणवह' (रावण बध) काव्य 'सेतुबंध' के नाम से भी अभिहित होता है। इसमें वाल्मीकीय 'रामायण' (युद्ध काण्ड) की कथा-वस्तु का विस्तृत वर्णन पंद्रह सर्गों में किया गया मिलता है। इसमें सेतुबंध के समय समुद्र की मछलियों द्वारा बाधा उपस्थित किया जाना जैसी अनेक कथाओं की कल्पना कर ली गई है और इसमें राक्षसियों के संभोग वर्णन को भी स्थान दिया गया है। जान पड़ता है कि इस काव्य के 'कामिनी केलि' नामक दसवें सर्ग का अनुकरण पीछे के अन्य कवियों ने भी किया है जिसके उदाहरण में सस्कृत के कुमारदास कृत 'जानकी हरण' और अभिनन्द कृत 'राम चरित' तथा तमिळ भाषा के कम्बन कृत 'रामायण' के नाम लिये जा सकते हैं।

(ख) तमिळ—तमिळ भाषा के उपर्युक्त कम्बन कृत 'रामायण' में वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल प्रथम छः काण्डों की ही कथा पायी जाती है। कम्बन ने अपनी रचना के मंगलाचरण में ही स्वीकार कर लिया है कि मैं वाल्मीकि तथा दो अन्य कवियों के आधार पर लिख रहा हूँ। इन अन्य दो कवियों में से एक सस्कृत के उक्त कवि कुमारदास समझे जाते हैं जिनके 'जानकी हरण' काव्य का प्रभाव इस पर स्पष्ट प्रतीत होता है। इसमें वाल्मीकीय 'रामायण' से भिन्न जितने भी वृत्तांत मिलते हैं उनका अधिकांश 'जानकी हरण' से उद्धृत किया जाना सिद्ध किया जा सकता है। तमिळ 'रामायण' का 'उत्तर काण्ड' किसी ओत्तकुथन कवि की रचना माना जाता है जिसमें धोबी द्वारा कहे जाने पर राम का सीता-परित्याग करना दिखलाया गया है।

(ग) तेलुगु—तेलुगु भाषा के बुद्धुराजु कृत 'रंगनाथ रामायण' में भी कम्बन कृत उक्त 'रामायण' की भाँति, वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल छः काण्डों की ही

कथा है। इस रचना को इसके द्विपाद छंद के कारण, बहुधा 'द्विपाद रामायण' का भी नाम दिया जाता है। इसका उर्मिला प्रसंग विशेषतः उल्लेखनीय है। तमिळ 'रामायण' के उत्तर कांड की भाँति 'रंगनाथ रामायण' में भी एक उत्तर कांड पीछे से जोड़ दिया गया है। परंतु तेलुगु भाषी जनसाधारण में सबसे लोकप्रिय 'रामायण' मोल्ला कृत 'मोल्ला रामायण' है जो किसी कुमारी कुम्हारिन की रचना समझी जाती है। इसमें भी वाल्मीकीय 'रामायण' की ही कथा संक्षिप्त रूप में कह दी गई है और इसकी रचना-शैली भी सरल है। 'भास्कर रामायण' तेलुगु का सबसे अधिक साहित्यिक ग्रंथ है।

(घ) **मलयालम**—मलयालम भाषा की सबसे पहली 'रामायण' 'इराम चरित' वा 'राम चरित' है जो उसका सबसे प्राचीन सुरक्षित ग्रंथ भी समझा जाता है। यह कदाचित् ट्रावनकोर के किसी राजा की रचना है और इसमें वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल 'युद्ध कांड' की ही कथा-वस्तु पायी जाती है। मलयालम भाषा में अन्य कई रामायणें भी मिलती हैं, किन्तु वे अधिकतर संस्कृत की रामायणों का अनुवाद मात्र ही प्रतीत होती हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय रामायण 'अध्यात्म रामायण' है जो इसी नाम के संस्कृत ग्रंथ के आधार पर निर्मित है।

(घ) **कन्नड़**—कन्नड़ी भाषा के केवल अर्वाचीन 'रामायण' ग्रंथों में ही हमें वाल्मीकीय 'रामायण' का प्रभाव लक्षित होता है। इस प्रकार की प्राचीन रचनाओं की कथा-वस्तु का संबंध अधिकतर जैन राम-कथा साहित्य से है जिसकी चर्चा अन्यत्र की जायगी। अर्वाचीन कन्नड़ी रामायणों में 'तोरावे रामायण' सबसे अधिक प्रसिद्ध है जो तोरावे निवासी किसी नरहरि कवि की रचना है। इसमें भी वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल प्रथम छः कांडों के ही विषय सम्मिलित किये गए हैं और उसके उत्तर कांड की कथा को लेकर किसी तिरुमल वैद्य ने 'उत्तर रामायण' की रचना पृथक् कर दी है।

(ङ) **काश्मीरी भाषा**—'काश्मीरी रामायण' के रचयिता दिवाकर प्रकाश भट्ट हैं जिन्होंने वाल्मीकीय 'रामायण' की पूरी कथा का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने अपनी रचना में बहुत-सी नवीन बातों का भी समावेश कर दिया है जिनका आधार उक्त 'रामायण' नहीं हो सकती। इसमें सबसे नवीन बातें सीता का मदोदरी

के गर्भ से उत्पन्न होना तथा रावण के किसी चित्र के कारण राम द्वारा सीता का परित्याग किया जाना है। इनके अतिरिक्त इस रचना में बहुत-सी अलौकिक बातें भी सम्मिलित कर दी गई हैं जिनका राम-कथा के लिए बहुत महत्त्व नहीं है।

(च) बंगला—बंगला भाषा की सबसे प्रसिद्ध 'रामायण' कृत्तिवास कृत है। उसमें ऐसी सबसे पहली रचना भी समझी जाती है। इसका कोई सर्वमान्य संस्करण उपलब्ध नहीं है और इसका जो रूप आजकल प्रचलित है उसमें डा० दिनेश चंद्रसेन के अनुसार बहुत से प्रक्षिप्त अंशों का भी समावेश हो गया है।^१ इस 'रामायण' की भी कथा वस्तुतः वाल्मीकीय 'रामायण' के ही कथानक का अनुसरण करती है, किन्तु इसके अनेक अंशों पर भक्तिवाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसमें भिन्न-भिन्न राक्षसों की ओर से भी राम के प्रति भक्ति का प्रदर्शन किया गया दोख पड़ता है। इसका रावण तक अवतारवाद में पूर्ण विश्वास रखता है। कहीं-कहीं तो इसमें कृष्ण-भक्ति एवं शाक्त संप्रदाय की महत्ता का भी गहरा प्रभाव लक्षित होता है। कृत्तिवासीय 'रामायण' के अतिरिक्त बंगला में अन्य अनेक रचनाएं भी ऐसी मिलती हैं जिनमें राम-कथा अथवा उसके किसी न किसी का वर्णन किया गया है। इनमें से सबसे उत्कृष्ट रघुनन्दन गोस्वामी कृत 'राम रसायन' है। जिसके कई अंशों पर कृष्ण-लीला की भी छाप का सदेह किया जाता है।

(छ) उड़िया—उड़िया भाषा की सबसे प्रसिद्ध 'रामायण' बलरामदास कवि की 'जगन्मोहन रामायण' है जिसे छन्दानुसार 'दांडिरामायण' भी कहते हैं। इसकी रचना शिव-पार्वती-संवाद के रूप में हुई है और यह भी वाल्मीकि मुनि की 'रामायण' का ही अनुसरण करती है। इस भाषा की अन्य ऐसी रचनाओं में 'विलंका रामायण' तथा 'विचित्र रामायण' का सम्मान अधिक देखा जाता है और इनमें दोनों में कुछ न कुछ नवीनता भी पायी जाती है।

(ज) मराठी—मराठी के प्राचीनतम रामकथा-ग्रंथ 'भावार्थ रामायण'

^१ डा० डी० सी० सेन : 'हिस्ट्री अफ् बंगाली लैंग्वेज ऐण्ड लिटरेचर' (कलकत्ता युनिवर्सिटी, १९११), पृ० १७७-९।

की रचना संत एकनाथ ने की है। उसका आधार वाल्मीकीय 'रामायण' के अतिरिक्त 'अध्यात्म रामायण' एवं 'आनन्द रामायण' की कथाओं में भी निर्दिष्ट किया जा सकता है। एकनाथ के अनंतर श्रीधर एवं मोरोपंत ने भी राम-कथा को लेकर अपनी-अपनी रचनाएं की हैं जिनमें दूसरे कवि का 'रामविजय' नामक काव्य अधिक लोकप्रिय ग्रंथ है।

(झ) गुजराती—गुजराती भाषा के साहित्य में वस्तुतः राम-कथा से अधिक कृष्ण-कथा को ही महत्त्व दिया गया जान पड़ता है। फिर भी राम-कथा के फुटकर प्रसंगों को लेकर उसमें कई आख्यान काव्यों की रचना की गई है जिनमें भालण कृत 'राम-विवाह' और 'राम बाल चरित' प्रसिद्ध हैं। अर्वाचीन गुजराती रामायणों में सबसे अधिक लोक प्रिय ग्रंथ गिरधरदास कृत 'रामायण' है। जिसकी रचना १९ वीं शताब्दी की है।

(ञ) असमी—असमी भाषा के साहित्य में भी गुजराती की ही भाँति कृष्ण-लीला को अधिक महत्त्व मिला है। फिर भी उसमें रामायणों का अभाव नहीं। माधव कंदलि ने वाल्मीकीय 'रामायण' का एक भावानुवाद ईसा की १४ वीं शताब्दी में ही कर दिया था जिसके प्रथम और अंतिम कांड अप्राप्य हैं। असमी के सर्वश्रेष्ठ कवि शंकरदेव ने भी 'उत्तर कांड' का अनुवाद किया है तथा 'राम विजय' नामक एक नाटक की रचना की है। इनके सिवाय दुर्गावर कवि की 'गीति रामायण' भी प्रसिद्ध है जिसमें राम-कथा का वर्णन पद्यों में किया गया मिलता है।

(ट) हिन्दी—हिन्दी के साहित्य में राम-कथा संबंधी सबसे प्रसिद्ध एवं लोक-प्रिय रचनाएं गो० तुलसीदास की हैं जिनके विषय में अन्यत्र कुछ विस्तार के साथ लिखा गया है। गो० तुलसीदास के कुछ पहले कवि सूरदास ने राम-कथा का वर्णन अपने 'सूरसागर' में किया था। उसमें वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण है। उसकी प्रमुख घटनाएं यहाँ पर फुटकर पदों में उसी क्रम से दी गई हैं किन्तु वर्णन में प्रबंधात्मकता नहीं है। यही बात हमें कवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' में भी लक्षित होती है जिसमें 'सूरसागर' से अधिक नवीन प्रसंगों का समावेश भी पाया जाता है। राम-कथा के विषय को लेकर हिन्दी के पिछले बहुत से कवियों

न भी अपनी रचनाएं निर्मित की हैं जिनमें से कुछ ने उसे केवल आंशिक रूप में भी अपनाया है। कवि बालकदास की रचना 'सत्योपाख्यान' तथा महाराज रघुराजसिंह के 'राम-स्वयंवर' को हम इस दूसरे प्रकार के उदाहरणों में रख सकते हैं। इनके कवियों ने न केवल सीता एवं राम के विवाह पर्यंत की ही राम-कथा को स्थान दिया है, अपितु उत्तने ही अंश को बहुत विस्तृत भी बना डाला है। आधुनिक राम-कथा-संबंधी हिन्दी-काव्यों में सबसे प्रसिद्ध बाबू मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' ग्रंथ है जिसमें लक्ष्मण एवं उर्मिला की कथा को भी स्थान मिला है।

(ठ) फ़ारसी और अरबी—मुसल्मानी राज्यकाल में बहुत-से संस्कृत-ग्रंथों का अनुवाद फ़ारसी में हुआ था जिनमें एक वाल्मीकीय 'रामायण' भी था। कहते हैं कि सबसे पहले यह अनुवाद मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी ने सन् १५८९ ई० में सम्राट् अकबर की प्रेरणा से, किया था और फिर उसे सचित्र और सुसज्जित भी कर दिया गया था। यह अनुवाद पद्यमय था। उस समय 'रामायण फ़ैजी' नामक एक गद्यानुवाद भी हुआ था। इसी प्रकार पीछे मुल्ला मसीह कृत 'रामायण' मसीही, लाला अमानत राय लालपुरी कृत 'रामायण' (सन् १७५४ ई०), चंद्र भान 'बेदिल' कृत 'रामायण' आदि पद्य में तथा लाला अमर सिंह का 'रामायण अमर प्रकाश' जैसे कतिपय ग्रंथ फ़ारसी गद्य में लिखे गए जिन्हें वाल्मीकीय 'रामायण' का अक्षरशः रूपांतर नहीं कह सकते। फिर भी उनकी राम-कथा में अधिक अंतर नहीं है। इन फ़ारसी रामायणों के अतिरिक्त राम-कथा की चर्चा हमें प्रसिद्ध अलबेरूनी द्वारा लिखे गए भारत विषयक ग्रंथ में भी मिलती है। इसमें उसकी कोई विस्तृत एवं सुशृंखलित कथा नहीं दी गई है, किन्तु प्रसंगवश उसके कई अंशों का उल्लेख कर दिया गया है। अलबेरूनी ने लंका का वर्णन करते समय बतलाया है कि "जब रावण दशरथ के पुत्र राम की पत्नी को हर ले गया तो यही पर उसने एक दुर्ग का निर्माण किया।" "राम ने किष्किंद के बानरों के साथ मैत्री करके रावण पर चढ़ाई की और समुद्र को सेतुबंध की सहायता से पार किया जो सीलों के पूरब की ओर १०० योजन का था। सेतुबंध को फिर राम ने अपने बाणों द्वारा दस जगह तोड़ दिया और अपनी राजधानी लौट आए। राम के राज्य में कोई पुत्र अपने पिता के जीवनकाल में नहीं मरता था और यदि मर जाता था तो उसका

कारण राज्य में होने वाले किसी अधर्म का सूचक समझा जाता था ' आदि ।^१

(ड) उर्दू—उर्दू भाषा में अधिकतर फुटकर पद्यों की ही रचना हुई है और जो कुछ प्रबंध काव्य भी मिलते हैं उनमें प्रेमाख्यानों की मसनवियों की ही भरमार है । राम-कथा विषयक स्वतंत्र क्या अनुवादिन रचनाओं की भी संख्या बहुत कम बतलायी जाती है ।^२ कुछ उर्दू कवियों ने राम-कथा के एकाध फुटकर प्रसंगों के आधार पर भी अपने पद्य लिख दिये हैं, किन्तु उनमें बहुत कुछ कल्पना का ही समावेश पाया जाता है । फकीर ग़ाह जलालुद्दीन वमाली के लिए कहा जाता है कि वह राम का दृढ़ भक्त हो गया था और उसने कुछ फ़ारसी में और कुछ उर्दू में चरित-गान भी किया था । परंतु उसकी ऐसी रचनाएं इस समय उपलब्ध नहीं हैं और न 'नज़ीर' अथवा 'चकबस्त' जैसे कवियों के फुटकर पद्य ही अधिक मिलते हैं ।

(ढ) लोकगीत एवं लोकपरंपरा—प्रकाशित भाषा-साहित्यों के अतिरिक्त हमें कुछ ऐसी सामग्री भी मिलती है जिसमें राम-कथा अशत प्रतिबिंबित है । इस प्रकार की सामग्री अधिकतर ग़ैर पद्यों के रूप में पायी जाती है और उनमें राम-कथा की किन्हीं घटनाओं की तथा उसके पात्रों के चरित की झलक रहती है । सिंहाल देश की प्राचीन धार्मिक विधि 'यक्कम' को सम्पन्न करते समय कतिपय काव्य-कथाओं का पाठ किया जाता है जिनमें एक सीता त्याग संबंधी भी है । इस कथानुसार बालि लकादहन करके सीता को राम के निकट पहुँचा देता है । रावण-चित्र के कारण सीता का परित्याग होता है, वाल्मीकि सीता के लिए दो बालकों की सृष्टि कर देते हैं और ये दोनों सीता के एक अन्य पुत्र को लेकर राम की सेना के साथ युद्ध करते हैं । बिहोर प्रांत के आदि वामियों की बिहोर तथा मुंडा जातियों की दत्त कथाओं में भी इसी प्रकार, राम-कथा के कुछ अंश मिलते हैं । बिहोरियों की राम-कथा भगवान् राम के जन्म में लेकर उनके द्वारा किये गए रावण

^१ अलबेरूनी कामेमोरेशन वा'यूम', पृ० ७७-८१ (कलकत्ता)

^२ 'रामायन ख़ुशतर' और 'रामायन फ़रहद' 'मानस' के स्वतंत्र पद्यानुवाद जैसी रचनाएं नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित देखने को मिलती हैं ।

एवं कुंभकर्ण के बध तक चलती है और उसमें केवल थोड़ा-बहुत परिवर्तन पाया जाता है। मुंडा जाति की कथा में सीता की खोज का जो वर्णन मिलता है उसमें बगुला राम की सहायता करने से इंकार करता है। जिस कारण वे उसकी गर्दन खींच देते हैं, वे उच्छे सीता की साडी के कुछ टुकड़े देता है इसलिए उसे वे अमर बनाते हैं और गिलहरी को मार्ग-प्रदर्शन के लिए चिह्नित कर देते हैं। भारतीय समाज की ग्रामीण बोलियों में भी राम-कथा के विविध प्रमगों से संबंध रखने वाले गीत मिलते हैं। भोजपुरी के 'सोहर' छंद बहुधा राम के पिता दशरथ का उनके जन्म से पूर्व, सतानोत्पत्ति के लिए चितातुर होना, उसके लिए अनुष्ठान करना तथा सफल हो जाने पर सपरिवार उत्सव मनाना पाया जाता है और उसी प्रकार 'बारहमासा' में प्रायः लक्ष्मण का शक्ति लग कर मूर्छित होना, राम का उनके लिए विलाप करना तथा हनुमान का संजीवनी बूटी लाकर उन्हें फिर से जीवित कर देना विस्तार के साथ वर्णन किया गया मिलता है। उसमें सीता के परित्याग की घटना बड़ी सरस शैली में कही गई सुन पड़ती है और मंदोदरी एवं रावण के विविध संवाद भी कई भिन्न-भिन्न छंदों में मिलते हैं। कई बोलियों में राम-सीता के प्रसंग भी बड़े सुन्दर ढंग से कहे गए देखे जाते हैं और उनसे ग्रामीण जनता प्रभावित होकर कुछ काल के लिए अपने आप को भूल-सी जाती है। राजस्थानी भाषा की एक बोली 'हाडोती' के लिए कहा जाता है कि उसमें इसी प्रकार के रामलीला-संबंधी प्रसंगों का वर्णन बड़ी चित्ताकर्षक शैली में किया गया है। वास्तव में इन बोलियों के माध्यम द्वारा चित्रित राम-कथा के पात्र ग्रामीणों के रंग में रंगे हुए होते हैं और उसकी विविध घटनाएं भी उनके ग्राम्य जीवन के ही सर्वथा अनुकूल बन जाती हैं। राम-कथा वहाँ ग्राम-कथा के रूप में परिणत रहती है।

अ (ख) बौद्ध एवं जैन राम-कथा

(क) पालिभाषा का जातक-साहित्य—बौद्धों का जातक-साहित्य बहुत विस्तृत है और वह मूलतः पालिभाषा में लिपिबद्ध हुआ था। उसकी अनेक गाथाओं के साथ वाल्मीकीय 'रामायण' के श्लोकों की समानता स्पष्ट है। 'दशरथ जातक' एवं 'देवधम्म जातक' में राम-कथा की पूरी रूपरेखा वर्तमान है और 'जवद्दिस जातक' के अंतर्गत राम का दंडकारण्य जाना दिखलाया गया है तथा 'साम जातक'

के कुछ अंश 'रामायण' से बहुत मिलते-जुलते हैं और 'वेस्संतर जातक' की कथा से भी राम-कथा का बहुत कुछ साम्य है।^१ फिर भी इन जातकों में पायी जाने वाली राम-कथा एवं वाल्मीकीय 'रामायण' के कथानक में कई दृष्टियों से मौलिक अंतर प्रतीत होता है। सबसे प्रसिद्ध 'दशरथ जातक' है जिसके अनुसार—

“दशरथ महाराज वाराणसी के राजा थे जिनकी पटरानी से उन्हें तीन संतानें थी—दो पुत्र (राम पंडित और लक्ष्मण) तथा एक पुत्री (सीता देवी)। उस पटरानी के मरने पर दशरथ ने दूसरी पत्नी को पटरानी बनाया जिससे उन्हें भरत कुमार नामक पुत्र हुआ और राजा ने उस रानी को एक वर दिया। भरत कुमार जब सात वर्ष का हुआ तो उस रानी ने उसके लिये राज्य माँगा और राजा के इन्कार कर देने पर भी वह बार-बार अपनी माँग दुहराती गई। इस पर भावी षड्यंत्र की आशंका से भयभीत होकर राजा ने अपने प्रथम दो पुत्रों को बुला कर कहा, “यहाँ रहने से अनर्थ हो सकता है, इसलिए तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ और बारह वर्ष के अनंतर, मेरे मर जाने पर, फिर लौट कर राज्य सँभालो।” पिता की इस अनुमति के अनुसार दोनों चल पड़े और उनके साथ उनकी बहन सीता देवी चली तथा तीनों हिमालय तक पहुँच कर वहाँ आश्रमवासी बन गए। इधर दशरथ का नव वर्ष में ही देहान्त हो गया और अपनी माता के परामर्श को ठुकरा कर भरत कुमार राम को वापस लाने चल पड़े। भरत कुमार ने रोकर पिता के देहांत का समाचार दिया, किंतु राम उससे विचलित नहीं हुए और उन्हें तथा लक्ष्मण एवं सीता देवी को भी धैर्य प्रदान करते रहे। राम पंडित भरत कुमार के बार-बार कहने पर भी बारह वर्ष की अवधि के भीतर लौटने पर राजी नहीं हुए और उन्होंने भरत को अपनी तृण पादुका देकर विदा किया। भरत के साथ लक्ष्मण और सीता देवी तथा अन्य लोग भी लौट आए और पादुकाओं के सामने वे राज्य कार्य करते रहे। अन्याय होते ही पादुकाएं एक दूसरे पर आघात करती थी। अंत में तीन वर्ष व्यतीत होते ही राम पंडित भी लौटे और अपनी बहन सीता देवी के

^१ भरतसिंह उपाध्याय : 'पालि साहित्य का इतिहास' (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. २००८). पृ० २९३।

साथ विवाह करके १६००० वर्षों तक राज्य-शासन करते रहे।” इस कथा में सीता देवी के अपहरण, बंदरो के साथ राम की मैत्री, राम रावण युद्ध एवं सीता परित्याग जैसी कथाओं का नितांत अभाव है।

परंतु ‘अनामकं जातक’ नामक एक अन्य जातक में इन प्रसंगों का समावेश निम्न प्रकार से कर दिया गया है—“किसी समय बोधिसत्व एक महान् राजा था और उसका मामा भी राजा हो गया था, किंतु वह लोभी और निर्दयी था। मामा ने उसका राज्य छीनने के लिए सेना एकत्र की, किंतु उसने सामना नहीं किया और युद्ध जनित हिंसा की आशंका से खिन्न होकर अपनी रानी के साथ वन चला गया। वहाँ पर समुद्र के नाग ने ऋषि का छद्म वेष धारण करके रानी का, उस समय अपहरण कर लिया जब बोधिसत्व फल लाने गये हुए थे। वह मार्ग में बाधा पहुँचाने वाले एक पक्षी का दाहिना पंख तोड़कर, रानी को अपने साथ लिये हुए, अपने समुद्री द्वीप में पहुँच गया। फल तोड़ कर लौटने पर और अपनी रानी को न देख कर राजा दुखी हुआ और धनुष-बाण लेकर उसे खोजता हुआ एक बड़े बंदर के निकट पहुँचा जो उदास और खिन्न था। पूछने पर बंदर ने कहा कि मेरे चाचा ने मेरा राज्य छीन लिया है और, राजा के भी वृत्तांत कह चुकने पर, दोनों के बीच मैत्री हो गई तथा राजा ने बड़े बंदर के चाचा को मार भगाया। बड़े बंदर ने अन्य बंदरों को रानी का पता लगाने का आदेश दिया और इनको एक आहत पक्षी से अपहरण का पता चल गया। अंत में एक छोटे बंदर (इंद्र) की सहायता से समुद्र पर एक मार्ग बनाया गया जिससे होकर सभी लोग द्वीप तक पहुँच गए। नाग ने बिपैल घने कुहरे तथा आँधी और बादल जैसी वस्तुओं के द्वारा राजा एवं बंदरों को कष्ट देने के अनेक प्रयत्न किये, किंतु इनका कुछ न हुआ और नाग को अंत में राजा ने मार गिराया। रानी को तब छोटे बंदर ने मुक्त किया और उसके साथ राजा, अपने मामा की मृत्यु का समाचार सुन कर अपने देश लौटा। यहाँ पर राजा ने अपनी रानी पर इस बात का संदेह किया कि वह नाग के यहाँ रह चुकी थी, किंतु रानी के कहने पर जब पृथ्वी फट गई तो उसका संदेह दूर हो गया। फिर राजा एवं रानी मिलकर शासन करने लगे और उनके प्रभाव के कारण सभी अपने-अपने धर्म में प्रवृत्त रहने

लगे।” इस कहानी की एक विशेषता यह जान पड़ती है कि इसके घटनानुसार बहुत कुछ ‘रामायण’ की कथा-वस्तु से मिलने पर भी इसमें राम, सीता, आदि उसके पात्रों के नाम नहीं आते।

एक तीसरे जातक ‘दशरथ कथानम’ में भी राम-कथा आती है किन्तु वह उक्त दोनों से कुछ न कुछ बातों में भिन्न दीखती है। उसके अनुसार “प्राचीन काल में जम्बू द्वीप के अंतर्गत दशरथ नाम का एक राजा राज्य करता था जिसकी प्रधान रानी से राम, दूसरी से रामण, तीसरी से भरत और चौथी से शत्रुघ्न नामक चार पुत्र थे और इन रानियों में से तीसरी के प्रति राजा अत्यधिक प्रेम करता था। दशरथ ने एक दिन उस रानी से कहा कि मैं तुम्हारी किसी भी इच्छा की पूर्ति के लिए अपना सारा कोप न्योछावर कर दूँगा और इसमें संकोच नहीं करूँगा। रानी ने कहा मैं किसी दिन बतलाऊँगी। कुछ दिन बीतने पर दशरथ बीमार पड़ा और उसने राम को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। रानी ने इस पर ईर्ष्यावश राजा से कहा कि मैं अपना वर माँगती हूँ और चाहती हूँ कि मेरा पुत्र राजा बने और राम को निर्वासित किया जाय। दशरथ यह सुन कर दुखी हुआ किन्तु वचन भग्न न कर सका। रामण ने राम से कहा कि तुम इस अपमान को सहन न करो और इसके विरुद्ध सचेष्ट हो जाओ, किन्तु राम ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। फलतः दशरथ ने उन दोनों पुत्रों को बारह वर्षों का वनवास दे दिया जिस समय भरत भी किसी दूसरे देश में था। भरत को लौटने पर अपनी माता के प्रति घृणा हुई और वह अपनी सेना के साथ राम को लौटाने के लिए उस पर्वत पर गया जहाँ राम रहा करते थे। राम ने लौटना स्वीकार नहीं किया। अपनी खड़ाऊँ देकर उसे वापस कर दिया। भरत प्रति दिन खड़ाऊँ की पूजा करता और उनसे आज्ञा लेकर राज्यकार्य सँभालता। अंत में अवधि समाप्त होने पर राम अपने देश लौट आए और भरत के आग्रह पर राज्यभार लेकर योग्यतापूर्वक शासन करने लगे।”^१ इस कहानी में भी पहली ही की भाँति किसी स्त्री का अपहरण

^१ डा० बुल्के : ‘रामकथा’ (प्रयाग), पृ० ५५-७।

^२ वही, पृ० ५७-८।

नहीं है और न उसके कारण किसी युद्ध का ही आयोजन है। वास्तव में इस कथा के अंतर्गत राम की किसी पत्नी की चर्चा ही नहीं है, प्रत्युत दशरथ की ही चार रानियों से पृथक्-पृथक् चार पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन है।

पाली 'तिपिटक' के अंतर्गत जो राम-कथा अन्यत्र सुरक्षित है वह भी प्रायः उपर्युक्त कथाओं का ही न्यूनाधिक अनुसरण करती है और आशिक भी है। उन कथाओं पर कही-कही वाल्मीकीय 'रामायण' वाले कथानक का भी प्रभाव लक्षित होता है। उपर्युक्त 'जयद्विंश जातक' में जो राम के दंडकारण्य की ओर जाने का वर्णन है वह 'दशरथ जातक' वाली उनकी हिमालय यात्रा से सर्वथा भिन्न है और वह 'रामायण' के अनुसार है। इसी प्रकार 'साम जातक' में जो मातृ-पितृ भक्त साम के बनारस के राजा पिलियक के विपैले बाणों द्वारा आहत होने की कथा है वह 'रामायण' की अधम्वनि पुत्र-बध की कथा के समान है और 'संबुला जातक' में जो संबुला की पति सेवा तथा 'संच्चक्रिया' की कथा आती है वह भी सीता की पति-सेवा तथा अग्नि परीक्षा से भिन्न नहीं है। बौद्ध साहित्य के अंतर्गत राम-कथा अन्यत्र भी कई ग्रंथों में मिलती है, किन्तु उन पर भी वाल्मीकीय 'रामायण' के कथानक की ही छाया स्पष्ट है। बौद्ध धर्म के पौराणिक साहित्य में राम-कथा का कोई भी रूप सुरक्षित नहीं देख पड़ता। केवल 'लंकावतार सूत्र' के प्रारंभिक अंशों में लंकापति रावण के मलयागिरि जाने तथा वहाँ पर शाक्यसिंह के साथ धर्मविषयक वार्तालाप करने का वृत्तान्त आता है जिसका राम कथा से कोई संबंध नहीं है। अतएव जान पड़ता है कि प्राचीन काल में निर्मित बौद्ध जातकों की राम-कथा का रूप भिन्न रहा होगा, किन्तु पीछे के बौद्ध साहित्य में वह 'रामायण' से भी प्रभावित हो गई।

(ख) **जैन राम-कथा**—बौद्ध राम-कथा की ही भाँति जैन राम-कथा का भी एक अपना रूप है। बौद्ध राम-कथा में महात्मा गौतम बुद्ध राम के एक पुनरावतार के रूप में दीख पड़ते हैं, किन्तु जैन राम-कथा में राम (पङ्क), लक्ष्मण एवं रावण जैन धर्म के अनुयायी महापुरुष प्रतीत होते हैं। जैन राम-कथा भी सभी जैन ग्रंथों में ठीक एक सी ही नहीं जान पड़ती और वह कम से कम श्वेताम्बर एवं दिगम्बर संप्रदायों के अनुसार दो भिन्न-भिन्न प्रकार की कही जा सकती है। श्वेताम्बर

संप्रदाय वाली राम-कथा का मूलरूप वह समझा जाता है जिसे सर्वप्रथम विमल सूरि ने अपने 'पउम चरिय' द्वारा प्रचलित किया था और इसी प्रकार दिगम्बर संप्रदाय वाली राम-कथा में हमें प्रधानतः गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' की राम-कथा का रूप उपलब्ध होता है।

विमल सूरि के उपर्युक्त प्राकृत ग्रंथ 'पउम चरिय' के आधार पर पीछे अन्य अनेक वैसे ग्रंथों का भी निर्माण हुआ जिनमें से रविषेण का 'पद्म चरित' अथवा 'पद्म पुराण' नामक संस्कृत ग्रंथ सबसे प्रसिद्ध है और वह वस्तुतः उक्त 'पउम चरिय' का परिवर्द्धित छायानुवाद सा ही जान पड़ता है।^१ फिर भी वह श्वेताम्बर संप्रदाय के अनुयायियों में अत्यंत लोकप्रिय है और उसके हिन्दी अनुवाद का भी इस समय बहुत अधिक प्रचार है। 'पउम चरिय' के आधार पर लिखी गई दो अन्य ऐसी रचनाएं भी उल्लेखनीय हैं जिनमें एक स्वयंभू देव कृत अपभ्रंश काव्य 'पउम चरिउ' है तथा दूसरी कन्नड़ी भाषा की रचना 'पप्पप रामायण' है जिसके रचयिता कोई नागचंद नामक कवि है। स्वयंभूदेव की रचना 'पउम चरिउ' के विषय में कहा जाता है कि वह कुछ अंशों में गो० तुलसीदास के 'राम चरित मानस' के लिए आदर्श ग्रंथ बना होगा। श्री राहुल सांकृत्यायन का तो अनुमान है कि "तुलसी बाबा ने 'क्वचिदन्यतोपि' से स्वयंभू रामायण (पउम चरिउ) की ओर ही संकेत किया है। . . . जिस सोरों या शूकर क्षेत्र में गोस्वामी जी ने राम की कथा सुनी, उसी सोरों में जैन घरों में स्वयंभू रामायण पढ़ा जाता था।"^२ नागचंद की रचना 'पप्पप रामायण' अथवा 'पम्प रामायण' का एक अन्य नाम 'रामचंद्र चरित पुराण' भी है और यह भी कन्नड़ी के कई रामचरित संबंधी ग्रंथों का आधार है। इन दोनों के आधार पर हम वाल्मीकीय 'रामायण' के कथानक के साथ उक्त जैन रामायण की तुलना इस प्रकार कर सकते हैं—'पउम चरिउ' के अनुसार राम और लक्ष्मण को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा था, राम का विवाह सीता के अतिरिक्त सात और कन्याओं से हुआ था और लक्ष्मण का सोलह राजकुमारियों के साथ, सीता

^१ नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' (बंबई), पृ० २७१-४।

^२ राहुल सांकृत्यायन : 'हिंदी काव्यधारा' (अवतरणिका), पृ० ५२।

रावण-मंदोदरी की सत्तान थी जिसे, अतिष्ठकरी होने के कारण, मजूषा में बंद करके कैद दिया गया था और वह जनक को भिड़ गई थी, सीता-हरण वाराणसी के समीपवर्ती वन में नारद द्वारा उतेजित किये जाने पर रावण ने किया था। रावण का वन लक्ष्मण द्वारा हुआ था और स्वयं लक्ष्मण को मृत्यु रोग से हुई थी। उन्हें नरक वास भी भोगना पड़ा था तथा राम जैनमत के नव बलदेवों में थे। लक्ष्मण उसके नव वामुदेवों में अंतिम थे और रावण भी, उसी प्रकार, उसके नव प्रतिवामुदेवों में अंतिम था।^१

इसी प्रकार 'पद्म रामायण' के अनुसार भी पता चलता है कि—राम तथा रावण आदि सभी पात्र जैनों हैं और प्रायः सभी अंत में जैन मती बन जाते हैं, जो राक्षस हैं वे सभी विद्याधर कहलाते हैं और आकाश में विचरण कर सकते हैं। बानर वस्तुतः बंदर नहीं हैं, अपितु मनुष्य हैं जिनकी ध्वजाओं पर बंदर के चिह्न हैं। राम की सेना किसी सेतु के मार्ग से नहीं जाती, वह 'नभोगमन विद्या' का प्रयोग करती है, राम एवं लक्ष्मण अवतारी पुरुष नहीं हैं, वे केवल 'कारण पुरुष' हैं। लक्ष्मण कृष्ण केशव एवं अच्युत भी कहलाते हैं और वे ही रावण का बंध भी करते हैं, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माताएं भिन्न-भिन्न हैं और राम की माता का नाम कौशल्या के स्थान पर अरराजिता है और सीता का एक यमज भ्राता प्रभामंडल है जो सीता को उसके स्वयंवर के अवसर पर ही पहचान पाता है।^२

गुणभद्र ने अपनी रचना 'उत्तर पुराण' को जिनसेन कृत 'आदि पुराण' की कथा को पूर्ति में लिखा था और कुछ लोगों का अनुमान है कि उसने उसकी राम-कथा का आधार किसी प्राचीन जैनाचार्य के ग्रंथ को स्वीकार किया होगा।^३ गुणभद्र की इस परम्परा का भी अनुसरण कई अन्य जैन कवियों ने किया है जिनमें से कृष्ण कवि, पुष्प दन्त, चामुंडराय, आदि के नाम लिये जाते हैं। इन कवियों की रचनाएं संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत अपभ्रंश एवं कन्नड़ी में भी हैं। उनमें

^१ 'त्रिश्रभारती पत्रिका' (खंड ५, अंक ४), पृ० ५८९-९१।

^२ ई० पी० राइस: 'कनारिज लिटरेचर', पृ० ३०-१।

^३ नाथूराम प्रेमो: 'जैन साहित्य और इतिहास', पृ० २८२।

अधिकतर राम के साथ-साथ तिरपठ अन्य महापुरुषों के भी चरित्र सम्मिलित है। गुणभद्र के अनुसार राम-कथा का मार यह है—दशरथ वाराणसी के राजा थे और उनके चार पुत्रों में से राम की माता का नाम सुबाला तथा लक्ष्मण की माता का नाम कैकेयी था। भरत एवं शत्रुघ्न की माता का नाम नहीं आता, किंतु सीता का मदोदरी के गर्भ में उत्पन्न होना बतलाया गया है। रावण सीता को अनिष्टकरी जान कर उसे मगीच के द्वारा मिथिला में भेजकर किसी मज्जूषा के साथ वही गन्वा देता है जिसे जनक दैवयोग में हल जोतते समय पा लेते हैं। उसे अपनी पुत्री की भाँति पालते हैं, उसके विवाह के उपलक्ष्य में फिर वे एक वैदिक 'यज्ञ' करते हैं। यज्ञ की रक्षा के लिए राम एवं लक्ष्मण बुलाये जाते हैं और सीता का विवाह राम के साथ कर दिया जाता है। रावण यज्ञ में निमंत्रित नहीं होता। इस कारण, नारद के द्वारा सीता के सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर, वह उसे हर ले जाने की सोचने लगता है। बनारस के पास वाले चित्रकूट के बन में वह सीता को हर ले जाता है जिस कारण लंका में राम-रावण युद्ध होता है और रावण को मारकर तथा दिग्विजय करते हुए बनारस लौट कर राम राज्य करने लग जाते हैं।^१ राम, अंत में दीक्षा लेकर मुक्ति पाते हैं और सीता भी अनेक रानियों के साथ दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग जाती है।

इस प्रकार गुणभद्र की इस कथा-परम्परा में कैकेयी के हठ करने, राम को वनवास देने आदि की चर्चा नहीं है और न इसमें पंचवटी, दंडकवन, जटायु, शूर्पणखा, खरदूषण आदि संबन्धी प्रसंगों का ही समावेश किया गया है, अथवा सीता के निर्वासित किये जाने का उल्लेख मिलता है। "पउम चरिय' और पच्चरित्त की कथा का अधिकांश वाल्मीकीय 'रामायण' के ढंग का है और 'उत्तर पुराण' की कथा का जानकी जन्म 'अद्भुत रामायण' के ढंग का। दशरथ बनारस के राजा थे, यह बात बौद्ध जातक से मिलती-जुलती है और 'उत्तर पुराण' के समान उसमें सीता-निर्वासन, लव-कुश जन्म आदि नहीं है।"^२ जब विमल सूरि ने अपनी रचना

^१ नाथूरामप्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' (बंबई), पृ० २७९।

^२ वही, पृ० २८०।

‘पउम चरिय’ का आरम्भ सर्व प्रथम किया होगा उस समय उनके सामने, सम्भवतः, कोई ऐसी लोक प्रचलित राम-कथा होगी जिसमें रावणादि को राक्षस कहा गया होगा और उनके भ्रष्टाचारों का भी वर्णन रहा होगा। विमल सूरि ने स्वयं भी इस बात की ओर संकेत किया है।^१ उन्होंने ऐसी बातों को ‘अलीक’ एवं ‘अदिःवसनीय’ माना और स्वयं वे उसको ‘सत्य, मोक्षप्रद एवं विश्वास योग्य’ रूप देने की ओर प्रवृत्त हुए। “जैन धर्म का नामावली निबद्ध ढाँचा उनके समक्ष था ही और श्रुति परम्परा या आचार्य परम्परा में आया हुआ कुछ कथासूत्र भी था। उसीके आधार पर उन्होंने ‘पउम चरिय’ की रचना की होगी।”^२ तथा गुणभद्र ने भी, इसी प्रकार, किसी अन्य पूर्व प्रचलित परम्परा को अपना लिया होगा। जैन राम-कथा की ये दोनों ही धाराएँ पृथक्-पृथक् एवं स्वतंत्र रूप से प्रवाहित हो रही थी और वे ही आज तक चली आई हैं। हो सकता है कि इनमें गुरु परम्परा का भी कोई भेद रहा हो। जैनियों की राम-कथा बौद्ध राम-कथा से अधिक विस्तृत और सांप्रदायिक रूप में हमारे सामने आती है और दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह भी पता चलता है कि बौद्ध कथा का रूप जैन कथा की अपेक्षा कहीं अधिक सरल और अमिश्रित है। जैन कथा में कुछ जटिलता भी आ गई है। फलतः हमें यह कहने का भी पर्याप्त आधार मिल जाता है कि बौद्ध राम-कथा का रूप जैन राम-कथा से प्राचीनतर ठहरता है।

हिंदू राम-कथा, बौद्ध राम-कथा एवं जैन राम-कथा के प्रचलित रूपों में महान् अंतर है और इसका कारण धार्मिक दृष्टिकोण कहा जा सकता है। हिंदुओं ने राम को विष्णु के एक महत्त्वपूर्ण अवतार के रूप में स्वीकार किया है और उसी के अनुरूप वे उनकी कथा की सृष्टि भी कर देते हैं। वे उनके प्रति भक्ति-प्रदर्शन का भी आयोजन करते हैं और उनके विपक्षी रावणादि तक को भक्त बना डालते हैं। बौद्धों ने राम की एक बोधिसत्त्व के रूप में देखा है और उनके चरित्र में सत्य,

^१ दे० : ‘सुव्वंति लोमसत्थे रावण पमुहाय रक्खसा सव्वे।

बस लोहिय संसाई-भक्खण पाणे कयाहारा ॥१०७॥’ ‘आदि-पउम-चरिद’

^२ नाथूराम प्रेमी : ‘जैन साहित्य और इतिहास’ (बंबई), पृ० २८१।

गोल आदि का आरोप करते हुए, उन्हें बुद्ध की कोटि तक पहुँचा देने की चेष्टा की है। इसी प्रकार जैनियों ने राम को एक ऐसे महापुरुष के रूप में पाया है जिसका अंतिम लक्ष्य जैन धर्म में दीक्षित होकर मुक्ति का अधिकारी बन जाना है। तीनों धर्म कर्मवाद के महत्त्व को स्वीकार करते हैं और स्वर्ग एवं नरक के अस्तित्व में भी विश्वास रखते हैं, किंतु हिन्दू राम-कथा में जहाँ राम दूसरो को उसके अनुसार अपना 'धाम' देने दोख पड़ते हैं वहाँ बौद्ध राम-कथा उन्हें स्वयं बुद्धत्व का अधिकारी बनाती है तथा वे लोक-कल्याण में प्रवृत्त हो जाते हैं। जैन राम-कथा उन्हें, अंत में, शुभ कार्यों के कारण मुक्त करती तथा उनके भाई लक्ष्मण को, रावण-वध के कारण, असाध्य रोग एवं नरक का भागी बना देती है। हिंदू राम-कथा में इसी प्रकार, यत्र तत्र कर्मकांड अथवा पूजन का विधान भी दृष्टिगोचर होता है जहाँ दूसरी कथाओं में इसका अभाव है। तीनों धर्मों का सांस्कृतिक आधार प्राचीन आर्य संस्कृति है, किंतु हिंदू राम-कथा के अंतर्गत, वर्णाश्रम धर्म के कारण, आचार-व्यवहार को एक विशिष्ट प्रणाली दीख पड़ती है और बौद्ध एवं जैन राम-कथाओं में, इसके विपरीत, श्रमण-परम्परा का प्रभाव लक्षित होता है। इसके सिवाय उक्त धार्मिक मतभेद के ही कारण राम-कथा के भिन्न-भिन्न गौण पात्रों तथा प्रासंगिक घटनाओं की योजना में भी बहुत-कुछ अंतर आ गया है। हिंदू राम-कथा के कल्पित अंशों में जहाँ ऋषि, मुनि, वानर, ऋक्ष एवं राक्षसादि के कार्य अपने-अपने निजी ढंग के दिखलाये गए हैं वहाँ बौद्ध एवं जैन राम-कथाओं में इस प्रकार के कोई भेद-भाव नहीं है और यहाँ पर सभी को शुद्ध साधारण मानव की कोटि में ही प्रदर्शित किया गया है। राम-कथा की साधारण विवरण संबंधी बातों में भी हमें कुछ न कुछ अंतर, इन तीनों परंपराओं के कारण, आ गया जान पड़ता है। हिंदू राम-कथा में राम अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र हैं और वे वनवास के समय वहाँ से दक्षिण दंडकारण्य आदि की ओर बढ़ते हैं, किंतु बौद्ध राम-कथा का प्राचीन रूप उनके पिता को वाराणसी का राजा बतलाता है और वे घर छोड़ कर हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं। दक्षिण की यात्रा में उन्हें सीता-हरण के कारण कई युद्ध भी करने पड़ते हैं, किंतु उस प्राचीन कथा में इन बातों का सर्वथा अभाव है। बौद्ध राम-कथा के पिछले रूपों में तथा जैन राम-कथा में इन बातों का समावेश अवश्य हो गया है, किंतु वह भी अपने ढंग का ही

कहा जा सकता है। वाराणसी का नाम तो, दशरथ की राजधानी के रूप में, इन दोनों परम्पराओं ने समान रूप से लिया है। बौद्ध राम-कथा की एकाध ऐसी परम्परा भी मिलती है जिनमें राम, सीता आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पात्रों के कहीं नाम तक नहीं लिये जाते। प्रायः सभी नाम विचित्र-से लगते हैं। परंतु उन पात्रों के विविध कार्यों तथा घटनाओं के रूपरंग से उनके राम-कथा परग होने में कोई संदेह नहीं रह जाता।

राम-कथा की व्यापकता (विदेश में)

(क) खोतान, चीन और तिब्बत—इतिहास के देखने में पता चलता है ईस्वी मन् के आरंभ काल में कुषाण वंश का राज्य काशी से खोतान तक फैला हुआ था। इस कारण उधर के भारत से बाहर वाले देश क्रमशः भारतीय संस्कृति से प्रभावित होते गए और मध्य एशिया, चीन तथा तिब्बत आदि 'उपरला हिंद' तक कहलाने लगे। कहते हैं कि चीनी सम्राट् हो-ति (सन् ८९-१०५ ई०) के सेनापति पान् छाव् ने जो मध्य एशिया में युद्ध किये उससे चीन और मध्य एशिया का संपर्क बढ़ा और ईसा की दूसरी शताब्दी तक बौद्ध धर्म, संस्कृति एवं साहित्य का उधर सर्वत्र फैलना आरंभ हो गया। चीन के साथ फिर तिब्बत का संबंध स्थापित हुआ और नेपालाधिपति अंशुवर्मा की कन्या के सन् ५८० ई० में विवाहार्थ ल्हासा पहुँच जाने पर, तिब्बत पर भारत का प्रभाव सीधा भी पड़ने लगा। इसी समय के लगभग चीन सम्राट् के आदेशानुसार थोन्-मि ने, काश्मीर की लिपि के अनुकरण में, भोट भाषा लिखने के लिए एक लिपि का भी आविष्कार किया। इस प्रकार ईसा की सातवीं शताब्दी तक खोतान, चीन, तिब्बत एवं भारत का सबंध पूर्णतः स्थापित हो चुका था और भारतीय संस्कृति का प्रचार भी उधर बहुत-कुछ हो गया था। भारत में उन दिनों बौद्ध धर्म एवं बौद्ध साहित्य का महत्त्व अधिक रहने के कारण अनेक व्यक्तियों ने उन्हें यहाँ से दूर-दूर तक पहुँचाया और वहाँ के लोगों ने उनका सहर्ष स्वागत करके उन्हें अपने यहाँ के साहित्यों में उपयुक्त स्थान दिया तथा उन्हें अपने यहाँ की संस्कृति का अंग भी बना लिया। फलतः भारत के अनेक पाली एवं संस्कृत ग्रंथों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो गया और वे वहाँ के निवासियों के अपने

साहित्यो में गिने जाने लगे तथा, उनके क्रमशः अधिक लोकप्रिय होत जाने के कारण, उन पर स्थानीय प्रचलित परम्पराओं का भी प्रभाव पड़ा।

‘अनामक जातक’ नामक बौद्ध जातक का ईसा की तीसरी शताब्दी में कांग मेई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ जो ‘लियेऊतूत्सी किग’ पुस्तक में सुरक्षित है। इसी प्रकार चीनी तिपिटक के अतर्गत ‘चा-पाव्-छाङ्-चिङ्’ नामक एक अवदानों का संग्रह मिलता है जो सन् ८७२ ई० में किसी चि-चि-आ-ये नामक चीनी लेखक द्वारा अनूदित हुआ था और जिसमें ‘दशरथ कथान’ नाम का एक दूसरा बौद्ध जातक भी सम्मिलित है। इन दोनों ही जातकों में राम-कथा आती है जिसका माराश इसके पहले ही दिया जा चुका है। दोनों के मूल भारतीय पाठ अप्राप्य हैं, किन्तु उनका फ्रेव एव अग्रेजी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और उन्हींके सहारे इनकी राम-कथाके रूप का पता चलता है। ‘अनामक जातक’ में राम-कथा के किसी भी पात्र का नाम उल्लिखित नहीं है किन्तु उसमें राम एव सीता का वनवास, सीता-हरण, जटायु का वृत्तांत, वालि और सुग्रीव का युद्ध तथा सीता की अग्नि-परीक्षा जैसे प्रसंगों के स्पष्ट संकेत मिलते हैं और उसके राम-कथा होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। इसी प्रकार ‘दशरथ कथान’ में राम एव लक्ष्मण के वनवास की कथा तो आती है, किन्तु उसमें सीता जैसी किसी पत्नी का वर्णन नहीं मिलता और न, इसी कारण, युद्धादि की घटनाएँ ही आती हैं।

राम-कथा का रूप जो तिब्बती भाषा में सुरक्षित है वह कई हस्तलिखित प्रतियों में पाया जाता है। उनमें सबसे पहले रावण की कथा दी गई मिलती है और सीता वहाँ पर रावण की ही पुत्री मानी गई है जो नष्टकरी होने के कारण फेंक दी जाती है और जिसे भारत के कृषक पालते-पोसते हैं। राम वहाँ पर रामन कहलाते हैं जो पिता के असमजस में पड़े जाने पर लक्ष्मण को राज्य देकर किसी आश्रम में तपस्या करने स्वेच्छापूर्वक चल देते हैं। वहाँ पर जब उनसे कृषक लोग अनुरोध करते हैं तो वे, अतः, तपस्या का परित्याग करते हैं और सीता से विवाह करके राज्य करते हैं। तिब्बती रामायण में सीता का हरण रामन की राजधानी के ही निकट में होता जान पड़ता है। हरण के समय रावण सीता का स्पर्श नहीं करता और उसमें बाधा डालने वाले जटायु को रक्त से सने पत्थर खिला कर मार डालता

हैं। इसमें बालि-सुग्रीव के पारस्परिक मल्ल युद्ध के समय सुग्रीव की पूछ में एक दर्शन बाँधा जाता है और वानर सीता की खोज करते समय एक दूसरे की पूछ पकड़ कर स्वयं प्रभा गुफा में प्रवेश करते हैं। इस रामायण के सभी प्रसंगों पर विचार करने में पता चलता है कि इसकी कथा पर गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' तथा 'कथा-मरिक्सागर' का भी पूरा प्रभाव है।

खोतान की राम-कथा में निम्नलिखित वाली कथा का पिछला अंश नहीं मिलता किन्तु अन्य बातों में दोनों प्रायः एक समान जान पड़ती हैं। इस कथा पर बौद्ध साहित्य का प्रभाव बहुत स्पष्ट है और इसी कारण, इसमें राम की चिकित्सा के लिए बौद्ध वैद्य जीवक बुलाये जाते हैं और आहत रावण का वध नहीं किया जाता तथा सारी कथा का आरम्भ ही जातक-शैली के अनुसार महात्मा बुद्ध की आत्मकथा में होता है। यहाँ पर सहस्रबाहु दशरथ का पुत्र है और उसके पुत्र राम एवं लक्ष्मण हैं जिनकी माता उन्हें बारह वर्षों तक पृथ्वी में छिपाये रहती हैं। सहस्रबाहु परशुराम के पिता की धेनु चुराता है जिसके कारण परशुराम उसका वध कर देते हैं और इस बात का बदला राम, पृथ्वी से बाहर आकर, उसे मार कर चुकाते हैं। इस कथा में राम एवं लक्ष्मण दोनों ही सीता से विवाह करते हैं जो उधर के देशों में प्रचलित बहुपतित्व की प्रथा के अनुकूल हैं। इसमें महात्मा बुद्ध ने बतलाया है कि राम-कथा के समय में स्वयं राम था और मंत्रेय लक्ष्मण के रूप में थे, इसलिए खोतानी रामायण में अवतारवाद का प्रभाव नहीं लक्षित होता। इस रामायण के जो अंश वाल्मीकीय 'रामायण' से भिन्न दिखते हैं उनमें से कई एक का आधार 'महानाटक' तथा काश्मीरी 'रामायण' में है।

(ख) **इन्दोनेशिया**—इन्दोनेशिया में राम-कथा खोतान आदि देशों से कुछ पीछे पहुँची जान पड़ती है। वहाँ की सर्वप्रथम राम-कथा का पता उन दो मंदिरों में उपलब्ध पाषाण चित्रलिपि से चलता है जिन्हें ईसा की नवीं शताब्दी में शैवों ने बनाया था। कहते हैं कि इस प्रकार का एक शिव मंदिर इनसे भी प्राचीन मिला है। जावा का राम-साहित्य बहुत अंशों तक वाल्मीकीय 'रामायण' द्वारा प्रभावित है और उसकी सबसे प्राचीन रचना 'रामायण काकाविन' तो 'भट्टिकाव्य' के अनुकरण में ही निर्मित है। 'भट्टिकाव्य' के २२ सर्गों की कथा को इसके २६ सर्गों में अधिक विस्तार

दे दिया गया है और यह बात इसके युद्ध वर्णन में विशेषतः उल्लेखनीय है। 'रामायण काकाबिन' की एकाध कथाएं ऐसी भी हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं देख पड़ती। उदाहरण के लिए शबरी अपनी कथा सुनाते समय राम से कहती है कि विष्णु ने वाराहवतार में मेरी माला खाई थी और जब वे मर गए थे तो मैंने उनके शव का भक्षण किया था जिस कारण मेरा मुख काला हो गया है। इसलिए वह राम से यह अनुरोध करती है कि मेरा मुख पोंछ कर इसे फिर से शुद्ध कर दीजिए। एक दूसरे प्रसंग में इंद्रजित् की मात पत्नियों की चर्चा की गई मिलती है और वे सातों अपने पति के साथ राम की सेना से युद्ध करती हैं तथा मारी जाती हैं। 'काकाबिन रामायण' किसी योगेश्वर कवि की रचना है जिसमें केवल 'युद्ध कांड' तक की ही कथा का समावेश हुआ है। 'उत्तर कांड' के आधार पर एक पृथक् 'उत्तर कांड' की रचना हुई है। जावा की आधुनिक रचना 'सेरत राम' भी 'वाल्मीकीय 'रामायण' की ही कथा का अनुसरण करती है। 'रामायण' काकाबिन' बारहवीं शताब्दी की रचना है। उससे पहले ९ वीं शताब्दी में निर्मित परमवनं (मध्य जावा) स्थान के शिव मंदिर की दीवारों पर 'रामायण' की समस्त घटनाएं पाषाण चित्र लिपि में अंकित की गई मिलती हैं और उस पर वाल्मीकीय 'रामायण' के अतिरिक्त 'महानाटक', 'सेतुबन्ध', 'बाल रामायण' एवं 'उत्तर रामचरित' का भी प्रभाव स्पष्ट है। पूर्वी जावा के पनरतन स्थान के एक अन्य शिव मंदिर में भी राम-कथा इसी प्रकार पाषाण-चित्रलिपि में लिखित पायी जाती है।

इन्दोनेशिया में 'रामायण काकाबिन' की परम्परा से एक पृथक् परम्परा भी मिलती है जो उससे अर्वाचीन है। इस परम्परा की सबसे उल्लेखनीय रचनाएं मलय देश की 'हिकायत सेरी राम' तथा जावा की 'रामकेलिंग' एवं 'सेरत कांड' हैं। 'हिकायत सेरी राम' के अंतर्गत रावण चरित से लेकर सीता त्याग एवं राम-सीता मिलन तक की कथा आती है। रावण चरित में रावण अपने पिता द्वारा निर्वासित होकर सिंहलद्वीप जाता है और वहाँ पर तपस्या कर के अल्लाह से चार लोकों में से एक का अधिकार प्राप्त करता है तथा लंकापुरी बनाता है। इस रचना में भी सीता का जन्म मंदोदरी के गर्भ से बतलाया गया है और वह यहाँ अशुभ जन्म-पत्र के कारण समुद्र में फेंकी जाती है। राम का वनवास यहाँ पर

दशरथ की पत्नी वलियादरी के अनुरोध पर होता है और यहाँ पर भी राम वंशी प्रसन्नता के साथ गृह-त्याग करते हैं। अंजनी यहाँ पर गौतम की पुत्री है और बालि एवं सुग्रीव उनके पुत्र हैं तथा हनुमान् राम के वीर्य से उत्पन्न होते हैं। जावा के 'मेशर कांड' की कथा के प्रागंभिक भाग में नबी अदम की कथा की एक विस्तृत भूमिका मिलती है जिसमें जावा के प्राचीन राजवंशों की सूची भी है। उस वंशावली के अनर्गत भारतीय पुराणों के अनेक देवताओं की कथा भी पायी जाती है। इसमें रावण द्वारा विष्णु के पराजित होने तथा फिर उनके अवतारों के साथ रावण के युद्ध करने की कथा आती है। विष्णु, वासुकी और श्री, रावण के भय से भाग कर, दशरथ के यहाँ जाते हैं और प्रथम दो उनके पुत्र बन जाते हैं तथा श्री अपने को एक अंडे में परिणत कर देती है, रावण उस अंडे को खा लेता है जिसके फलस्वरूप श्री मदोदरी के गर्भ से, सीता के रूप में उत्पन्न होती है। राम-कथा के अंतिम अंश में कहा गया है कि सीता का केवल एक पुत्र 'बुतलष' नाम का था जिसको राम ने राज्य भार सौंप दिया और एक अनल नामक वानर के, अपने को अग्नि के रूप में परिणत कर देने पर, उसमें प्रवेश करके राम, सीता, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव आदि भस्मीभूत हो गए। केवल हनुमान् बच गए।

(ग) **इन्दो चीन, श्याम और ब्रह्मदेश**—इतिहास ग्रंथों से पता चलता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी से ही इन्दो-चीन में भारतीय व्यापारी यहाँ की संस्कृति का प्रचार करने लग गए थे। चम्पा राज्य की स्थापना हो जाने पर वहाँ जो शिलालेख सातवीं शताब्दी में लिखे गए उनसे स्पष्ट है कि वाल्मीकीय 'रामायण' तब तक वहाँ प्रचार में आ गया होगा जिस कारण वहाँ के एक मंदिर में 'विष्णु के अवतार' वाल्मीकि मुनि की मूर्ति का स्थापित होना भी संभव हुआ होगा। उसके 'अनाम' प्रदेश में उपलब्ध अठारहवीं शताब्दी के एक रामायण-ग्रंथ से पता चलता है कि उसकी राम-कथा वाल्मीकीय रचना पर ही आश्रित है। प्रमुख अंतर केवल यह है कि दशानन का राज्य अनाम के दक्षिण भाग में माना गया है और दशरथ का राज्य उसके उत्तरीय भाग में तथा दशरथ के राज्य पर, उसके अनुसार, रावण आक्रमण कर के वहाँ से सीता का हरण कर लेता है। इसी प्रकार कम्बोदिया की स्मेर भाषा में जो 'रेआम केर', नामक रामायण-ग्रंथ उपलब्ध है वह भी वाल्मीकीय 'रामायण'

द्वारा ही प्रभावित हैं। इस रामायण के अनुसार सीता जनक की दत्तक पुत्री हैं और वह त्याग दी जाने पर वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रहती हैं। जनक उसे यमुना के तीर पर हल चलाते समय एक बेंड़े पर पाते हैं। सीता-हरण के अनंतर जटायु को रावण सीता की अगूठी से आहत करता है और सीता-त्याग का कारण सीता के पंख पर अंकित रावण का चित्र है। अयोध्या लौटने से इन्कार करती हुई सीता कहती हैं कि मैं राम की मृत्यु हो जाने पर ही वहाँ जाऊँगी जिस कारण राम उसके पास हनुमान् द्वारा अपनी मृत्यु का समाचार भेज देते हैं और फिर उनकी चिता पर विलाप करती हुई वह उनके लाख समझाने-बुझाने पर भी नाग राजा मिरुण की शरण में चली जाती हैं।

श्याम की रामायण रचना 'राम कियेन' भी अधिकतर 'रेआम केर' पर ही निर्भर है। इसकी अनेक विशेषताएँ भी हैं जिनमें से कुछ उल्लेखनीय बातों का संक्षेप रूप इस प्रकार हैं—लक्ष्मण ने यहाँ पर शर्पणखा के पुत्र का वध किया है, लक्ष्मण एवं हनुमान का युद्ध होता है, सेतुवध के पहले रावण राम के पाम तपस्वी के भेष में जाता है, महोरावण राम को पाताल ले जाता है तथा हनुमान, कुमारियों के साथ प्रेम-लोला प्रदर्शित करते हैं। श्याम को लाओ भाषा में एक 'रामजातक' नाम का ग्रंथ भी मिलता है जिसमें राम एवं रावण चंचरे भाई माने गए हैं तथा राम की अपनी एक बहन शाता तथा एक भाई लक्ष्मण है। राम यहाँ पर, सीता की खोज करते समय दो विवाह भी कर लेते हैं जिनमें से एक उनकी पत्नी वालि की विधवा रहती हैं और दूसरे की वालि-सुग्रीव की बहन रहती हैं। अंत में राम को बुद्ध का, रावण को देवदत्त का, दशरथ को शुद्धोदत्त का, लक्ष्मण को आनंद का तथा सीता को भिक्षुणी का रूप बतलाया गया है जो सर्वथा जातक रचना जैसी वं ही अनुकूल है। श्याम में रामनाटक भी प्रचलित है।

व्रतदेश का रामकथा-साहित्य श्याम के राम-नाटको द्वारा अधिक प्रभावित है। कहते हैं कि मन् १७६७ में व्रतदेश के एक राजा ने श्यामको राजधानी पर आक्रमण कर के वहाँ के बहुत-से लोगों को बंदी बना लिया जिनमें कई एक रामनाटको के अभिनेता भी थे। आजकल वहाँ का सबसे लोकप्रिय काव्य-ग्रंथ 'यामप्वे' है जो वस्तुतः एक रामनाटक के ही रूप में है। इसके अभिनेता बहुमूल्य चेहरे पहनते हैं

जिनकी पूजा भी होती है इसकी कथा के अनुसार सीता-हरण के पहले शूर्पणखा (जो वहाँ गाम्भी कहलाती है) मृग का रूप धारण करके राम को दूर तक बहका ले जाती है और राम द्वारा आहत किये जाने पर, अंत में, अपना राक्षसी रूप प्रकट करती है।

(घ) पश्चिमी देश—भारत के पश्चिम वाले देशों में से मुमेर के निवासी मुमेरियन लोग भारतीय दम अवतारों की भाँति ही दम अवतार मानते हैं। “विचित्र बात तो यह है कि यहूदियों के नवे अवतार का नाम ‘लामश’ भारतीय पुराणों के ‘राम’ से बहुत अधिक मिलता-जुलता है।”^१ कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि “ईरान के अरवामनी वंश के सम्राट् आर्यराम (अरियरन) का नाम भी इस ‘राम’ नाम का ही अवशेष है।”^२ इसके सिवाय योरोप के देशों में भी राम की चर्चा का अभाव नहीं है। जेसुइट मिशनरी जे० फेनिचियो ने सन् १६०९ ई० में “लिब्रो डा सैटा” की रचना की थी जिसमें आये हुए दशावतार-निरूपण के अंतर्गत दक्षिण में प्रचलित राम-कथा का एक विस्तृत वर्णन मिलता है। इसी प्रकार डच ईस्ट कम्पनी के पादरी ए० रोजेरियुम की रचना ‘दि ओपन दोरे’ के अवतार-वर्णन में भी हमें पूरी राम-कथा मिलती है। जे० वी० टार्विनिये नामक प्रसिद्ध यात्री ने अपनी भारत-यात्रा के वर्णन (सन् १६७६ ई०) में भी एक सक्षिप्त राम-कथा फ्रेंच भाषा में दी है और इसी प्रकार एम० सोनेरा ने भी एक सक्षिप्त रामकथा लिखी है जिसकी विशेषता यह है “राम १५ वर्ष की अवस्था में तपस्या करने वन में जाते हैं।” इसके सिवाय डे पोलिये की रचना ‘मिथोलोजी डेस इंड’ में भी एक विस्तृत राम-कथा मिलती है जिसे लेखक ने लखनऊ में विलियम जोन्स के पंडित से सुना था।^३

राम-कथा की उत्पत्ति और उसका विकास

राम-कथा के मूल स्रोत के विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। डा० वेबर के अनुसार ‘दशरथ जातक’ की बौद्ध राम-कथा ही इसका पूर्व रूप होगी

^१ ‘नागरी प्रचारिणी पत्रिका’ (भाग १६, अंक २), पृ० १२६।

^२ वही, (वर्ष ५४, अंक ४), पृ० २८४।

^३ डा० बुल्के : ‘रामकथा’ (प्रयाग), पृ० २४६-९।

चाहिए। इसके प्राचीनतम रूप का संकेत उन दो अन्य बौद्ध रचनाओं में देखना चाहिए जो 'धम्मपद की टीका' एवं 'सुत्तनिपात टीका' के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनमें क्रमशः वाराणसी के राजा की कहानी तथा शाक्यों एवं कोलियों की उत्पत्ति की कथा है। 'धम्मपद की टीका' और 'सुत्तनिपात टीका' में "विमाता की ईर्ष्या के कारण राज-संतति को वनवास दिया जाता है, भाई-बहन का विवाह होता है और राम के नाम का भी उल्लेख होता है। 'दशरथ जातक' में इसके अतिरिक्त दशरथ, लक्ष्मण, भरत और सीता के भी नाम आते हैं तथा राम केवल एक पराये व्यक्ति से ही न रहकर राजकुमारों के ज्येष्ठ भाई भी बन जाते हैं। फिर इस कथा के ही आधार पर वाल्मीकीय 'रामायण' में राजकुमारों की राजधानी वाराणसी से अयोध्या बन जाती है, वनवास का स्थान हिमालय से दंडकारण्य में परिवर्तित हो जाता है और सीता एवं राम बहन और भाई न होकर प्रारंभ से ही विवाहित रहते हैं। इसके अतिरिक्त सीता-हरण एवं रावण-वध जैसे दो प्रमुख वृत्तान्त भी जोड़ दिये जाते हैं जिनसे कथा के मूल रूप में महान् अंतर आ जाता है। 'रामायण' में सीता-वनवास के अंत तक भी किसी संतान का न होना, डा० वेबर के अनुसार, उस पर पड़े 'दशरथ-जातक' का ही प्रभाव है जिसमें वनवास के पीछे विवाह होता है, और वाराणसी का अयोध्या में परिवर्तित हो जाना भी इस कारण संभव है कि अयोध्या के ही निकट शाक्यों एवं कोलियों की राजधानियाँ थी। डा० वेबर का यह भी अनुमान है कि सीता-हरण का मूलस्रोत संभवतः होमर की कथा के पैरिस द्वारा हेलेन का अपहरण है तथा लका में किये गए विविध युद्धों का आधार भी यूनानी सेना द्वारा ट्रॉय के अवरोध में पाया जा सकता है।" बौद्ध जातक कथाओं का ईसा की तीसरी शताब्दी (पूर्व) से सुरक्षित रहना समझा जाता है और 'धम्मपद की टीका' एवं 'सुत्तनिपात टीका' का रचनाकाल ईसा के अनंतर की पांचवीं शताब्दी है। अतः वाल्मीकीय 'रामायण' की रचना के भी समय को डा० वेबर उसके पहले ले जाते नहीं जान पड़ते।

डा० दिनेशचंद्र सेन ने भी 'दशरथ जातक' की राम-कथा को ही 'रामायण' के

¹ डा० ए० वेबर : 'आन दि रामायण' (अंग्रेजी अनुवाद, बंबई, १८७३)।

कथानक का पूर्व रूप स्वीकार किया है। वे इसके लिए 'दशरथ जातक' को ईसा की छठी शताब्दी (पूर्व) की रचना ठहराते हैं और 'रामायण' में एकाध पाली गाथाओं के संस्कृत रूप में प्रवृष्ट हो जाने की भी कल्पना करते हैं। इनके अनुसार राम-कथा के दो मूलस्रोत थे जिनमें से एक 'दशरथ जातक' उत्तरी भारत में प्रचलित था और दूसरा कोई रावण संबंधी आख्यान था जो विशेषकर दक्षिण की ओर प्रसिद्ध था जिसके साथ हनुमान संबंधी प्राचीन वानर-पूजा की अवशेष बातें भी सम्मिलित हो गईं। 'रामायण' एवं बौद्ध जातकों की राम-कथाओं की पारस्परिक तुलना करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाल्मीकि ने बड़े कौशल के साथ अपनी रचना की है। उन्होंने 'दशरथ जातक' के सीधे-सादे वृत्तांत को एक उत्कृष्ट एवं विकसित रूप देते समय अपने सामने एक विशेष उद्देश्य भी रखा होगा। बौद्ध तपस्या और श्रमण धर्म की बातों की प्रतिक्रिया में उन्होंने हिन्दुओं के गृहस्थ जीवन का आदर्श चित्रित किया होगा जिस कारण एक साधारण-सी अपरिष्कृत बौद्ध-कथा वर्तमान सुशृंखलित राम-कथा के रूप में परिणत हो गई होगी।^१ डा० ह्वीलर ने 'रामायण' के समस्त काव्य को हिंदू एवं बौद्ध धर्मों के संघर्ष का एक प्रतीक ठहराया है और 'रामायण' के राक्षसों को बौद्धों का स्थान दे दिया है। इनके अनुसार लंका पर जो आक्रमण किया गया है उससे वस्तुतः सिंहल द्वीप के बौद्धों के प्रति वाल्मीकि का द्वेष और विरोध लक्षित होता है। डा० ह्वीलर का यहाँ तक अनुमान है कि 'रामायण' में राम एवं जाबालि का जो संवाद है उसमें भी जाबालि बौद्ध धर्म के ही प्रतिनिधि है और राम हिंदू धर्म के।^२

इसके विपरीत डा० याकोबी का मत है कि 'रामायण' की कथा दो स्वतंत्र भागों में विभाजित की जा सकती है जिनमें से प्रथम भाग अयोध्या की घटनाओं से संबंध रखता है और द्वितीय भाग का मूलस्रोत वेदों की देवता संबंधी कथाओं में पाया जा सकता है। प्रथम भाग की कथा के प्रधान नायक दशरथ हैं और वह किसी निर्वासित राजकुमार की ऐतिहासिक कथा पर निर्भर है। "कोई राजकुमार घर

^१ डा० दिनेशचंद्र सेन : 'दि बंगाली रामायन्स', (कलकत्ता, १९२०)।

^२ डा० जे० टी० ह्वीलर : 'हिस्ट्री अफ़ इंडिया', भाग २ (लंदन, १८६९)।

में निर्वासित होकर इक्षुमति के तट को छोड़कर सरयू के तटवर्त्ती कोशल देश पर अधिकार प्राप्त करता है।” फिर जब उसके इक्षुमति पर निवास का स्मरण न रहा तब वह अयोध्या से ही निर्वासित मान लिया गया और परिणामतः मूल कथा के रूप में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। डा० याकोबी के अनुसार द्वितीय भाग की कथा के लिए हमें वैदिक साहित्य के विभिन्न अधिष्ठातृ देवताओं के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है। सीता वैदिक सीता से भिन्न नहीं है और राम भी वैदिक इन्द्र के ही स्थानापन्न से प्रतीत होते हैं। इन्द्र का वृत्र बध राम द्वारा रावण के बध में प्रतिबिंबित है। वेदों में इन्द्र का एक प्रसिद्ध कार्य पणियों द्वारा चुराई गई गायों का पुनः प्राप्त करना है। इस कार्य में सरमा इन गायों का पता लगाती है। डा० याकोबी का कहना है कि उक्त गायों का हरण ही यहाँ सीता के अपहरण में बदल गया है और हनुमान यहाँ पर सरमा की भाँति सहायता करते हैं। उनका यह भी अनुमान है कि हनुमान किसी समय कृषि संबंधी देवता भी रहे होंगे और उनका कार्य वर्षाकाल के अधिष्ठाता का रहा होगा। डा० याकोबी ने इस प्रकार सांगी राम-कथा की कहानी की एक रूपकात्मक व्याख्या कर डालने का प्रयत्न किया है। इस दशा में राम-कथा को किसी बौद्ध आख्यानक पर आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उसका निर्माण आपसे आप होता है और वह कालानुसार विकसित होती हुई अपने वर्तमान रूप में आ जाती है तथा बौद्ध जातक कथाओं में उसका केवल एक विकृत रूप ही देखने को मिलता है।

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त अन्य कई व्यक्तियों ने भी राम-कथा के विषय में अपने मत प्रदर्शित किए हैं, किंतु सबके ऊपर विचार करने पर स्थूलतः यही निष्कर्ष निकलता है कि या तो ये लोग इसका आधार किसी आख्यानक में ढूँढते हैं अथवा इसे किसी रूपक द्वारा समझाना चाहते हैं। इसलिए डा० वेबर एवं डा० याकोबी को इन दो दलों का प्रतिनिधि मानकर हम इनके मतों की समीक्षा, संक्षेप में, इस प्रकार कर सकते हैं—डा० वेबर ने राम-कथा का मूल आधार ‘दशरथ जातक’ की कथा को माना है जो उमर रचना के गद्य भाग में दी गई है। इस ‘जातक’ का दूसरा अंश गाथाओं के रूप में है और अनुमान किया जाता है कि इन गाथाओं को ही पूर्ण एवं बोधगम्य बनाने के लिए उस गद्य भाग का भी निर्माण हुआ होगा। इन गाथाओं

में राम-कथा के केवल कुछ ही अंश दीख पड़ते हैं जिनमें प्रधानतः भरत से दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर सीता एवं लक्ष्मण का जल में उतरना, राम के इसके कारण शोक न करने पर प्रसगानुसार अनित्यता का उपदेश दिया जाना तथा, अंत में, राम का एक सहस्र वर्षों तक राज्य करना मात्र बतला दिया गया है और तीनों में से कोई भी एक बात ऐसी नहीं जिसे केवल बौद्धों द्वारा ही कल्पित की गई माना जा सके। अधिक संभव यह जान पड़ता है कि, गंभीर शोक द्वारा भी विचलित न होने के उदाहरण में, ये अंश किसी परम्परागत रामाख्यान से, इन गाथाओं के रूप में, ले लिये गए होंगे और इनकी व्याख्या के प्रयत्न में फिर इनके साथ जातकीय गद्य भाग भी जोड़ दिया गया होगा तथा उसमें मूल आख्यान के विविध प्रसंगों को एक मनमाने रंग में रंग भी दिया गया होगा। वह मूल आख्यान किसी काव्य अथवा लोकगीत के रूप में हो सकता है और उसके लिपिबद्ध न होने के कारण, उसके विकृत होने की अधिक संभावना का भी अनुमान किया जा सकता है। 'दशरथ जातक' की कथा को राम-कथा का मूल रूप स्वीकार कर लेने पर डा० वेबर को, उसमें न पाये जाने वाले सीता-हरण एवं रावण-बध के प्रसंगों की पूर्ति के लिए, किसी अन्य स्रोत को ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता पड़ी जिसके लिए उन्होंने होमर के काव्य की शरण ली। इस मत की आलोचना अनेक विद्वानों ने की है और इसके विरोध में उन्होंने बहुत-से तर्क भी उपस्थित किये हैं। होमर के काव्य में हेलेन एक पतिता के रूप में, अपने अपहरणकर्ता पैरिस के साथ, स्वेच्छापूर्वक भाग निकलती है और युद्ध के अनंतर अपने पति मेनेलोस के यहाँ पुनः लौटती है। इसके सिवाय उस काव्य में समुद्र पार करने के लिए, नावों से ही काम लिया जाता है, सेतुबंध की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया जाता। राम-कथा का सीता-हरण तथा उसका लंका की ओर मेना का युद्ध-प्रस्थान उनसे नितांत भिन्न है और अनुकरण-संबंधी अनुमान के विपरीत पड़ते हैं जिस कारण भी डा० वेबर के मत का समर्थन करना कठिन हो जाता है।'

डा० दिनेशचंद्र ने रावण सबंधी उपर्युक्त सीता-हरण एवं युद्धों के मूल रूप को

'इस विषय में अधिक जानने के लिए देखें 'हेलेनिज्म इन ऐजेंट इंडिया':
जो० एन० बनर्जी, पृ० २२३-४।

किसी दक्षिणी आख्यान में प्राप्त करना चाहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि रावण-संबंधी कुछ आख्यान दक्षिणी भारत में प्रचलित थे। परंतु उनमें रावण सर्वत्र एक धार्मिक व्यक्ति था। उस काल के जैन अथवा बौद्ध साहित्य में भी वह एक तपस्वी और सदाचारी समझा जाता था। बौद्धों के 'लंकावतार सूत्र' में जहाँ पर बुद्ध एवं रावण सवाद आता है वहाँ दोनों के बीच धार्मिक विषयों पर ही बातचीत होती है। उसके किसी स्थल से राम-रावण-युद्ध का संकेत नहीं मिलता। जैन साहित्य में तो रावण की कथा कही स्वतंत्र रूप में आती ही नहीं जान पड़ती। उसका संबंध सर्वत्र राम-कथा से है जो तत्त्वतः रामायणीय ही है। सिंहल द्वीप के सबसे प्राचीन ऐतिहासिक काव्य 'दीपवंश' एवं 'महावंश' हैं जिनमें राम-कथा पायी जाती है, किंतु उसमें राजा रावण का उल्लेख नहीं है। डा० दिनेश चंद्र के इस अनुमान का भी हमें कोई आधार नहीं मिलता कि उधर हनुमान विषयक भी कोई आख्यान प्रचलित रहा होगा। 'समुग्ग जातक' के एक स्थल पर 'वायुस्स पुत्र' नामक विद्याधर की चर्चा आती है जो वानर न होकर केवल जादूगर था। कहा जाता है कि 'हनुमान्' शब्द 'आण-मन्दि' नामक किसी द्रविड शब्द का संस्कृत रूपांतर है जिसका अर्थ 'नरकपि' होता है और वह, कदाचित्, किसी देवता का भी नाम हो सकता है, किंतु उसका राम-कथा के साथ किसी भी प्रकार के संबंध का पता नहीं चलता।^१ डा० सेन के मत की पुष्टि इसके द्वारा भी नहीं होती।

डा० याकोबी के मत को किसी न किसी रूप में स्वीकार करने वाले विद्वानों की संख्या अधिक है, किंतु इसकी भी पुष्टि यथेष्ट प्रमाणों से नहीं की जा सकती। राम-कथा का प्रथम भाग यदि ऐतिहासिक है और दूसरा केवल रूपकात्मक मात्र है तो इसके लिए भी कोई स्पष्ट आधार ही अपेक्षित होगा। किसी राजकुमार का अपने घर से निर्वासित होना तथा उसका इक्षुमति के तट को छोड़ कर सरयू के तटवर्त्ती कोशल देश पर अधिकार कर लेना एक ऐसी घटना है जो राम-कथा के तथाकथित ऐतिहासिक भाग से मेल खाती नहीं जान पड़ती। दोनों में केवल किसी एक राजकुमार के निर्वासन की ही समानता है। उसका इक्षुमति के तट को छोड़

^१ डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० १११-२।

कर अन्यत्र सरयू तटवर्ती कोशल देश पर अधिकार भी प्राप्त कर लेना इस कथा की संगति के प्रतिकूल पड़ता है। राम-कथा के मूल रूप को केवल इसी क्षीण आधार पर दो भागों में विभाजित कर देना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। राम के निर्वासन की घटना यदि एक माधारण ऐतिहासिकवात कही जा सकती है तो, उसी प्रकार, हम सीता के हरण और उसके कारण होने वाले युद्धों को भी माधारण ऐतिहासिक वृत्तांतों से अधिक भिन्न नहीं ठहरा सकते और न इनके कारण किसी प्रकार की रूपक-योजना के लिए कष्ट करना ही आवश्यक होगा। डा० याकोबी के अनुसार राम-कथा के कई प्रमुख पात्रों का प्रतिबिम्ब वैदिक साहित्य के देवताओं में देखा जा सकता है। परन्तु, जैसा इसके पहले ही कहा जा चुका है, उन वैदिक देवताओं की चर्चा विभिन्न स्थलों पर की गई मिलती है और उनमें से एक का दूसरे के साथ संबंध स्पष्ट नहीं है। 'सीता' विषयक वैदिक धारणा के साथ राम-कथा की सीता की उत्पत्ति-संबंधी कल्पनाओं का अद्भुत साम्य है तथा वैदिक इद्र के विभिन्न प्रमुख कार्यों का सादृश्य भी इसके राम की वनवास वाली कई घटनाओं में उपलब्ध है। फिर भी केवल इसी आधार पर राम-कथा के पिछले अंश को कोरे रूपक का नाम दे देना उचित नहीं जान पड़ता। डा० याकोबी का यह अनुमान कदाचित् उस धारणा पर आश्रित है जिसके अनुसार प्रत्येक कथा-गाथा किसी न किसी प्राकृतिक घटना के रूपक पर बनी समझी जाती है। प्रो० मैक्समूलर ने कहा है कि प्रत्येक कथा-गाथा वस्तुतः भाषा का विकार है जिस कारण जो शब्द पहले रूपक वा विशेषण रहा करते हैं वे ही पीछे स्वतंत्र बन जाते हैं और जब यह बात भूल जाती है कि वे कभी केवल कवि कल्पित रहे होंगे तो वे धीरे-धीरे देवत्व की कोटि तक भी पहुँच जाते हैं।^१ फिर तो उनके आधार पर क्रमशः अनेक रोचक गाथाओं की सृष्टि होने लग जाती है और उनका ऐतिहासिक आधार तक ढूँढ़ा जाने लगता है। परन्तु डा० याकोबी का यहाँ पर इस प्रकार अनुमान करना केवल तभी सुसंगत होगा जब राम-कथा के पिछले अंश को पहले कथा-गाथा भी मान लिया जाय।

राम-कथा का वास्तविक रूप केवल किसी कथा-गाथा (माइथालोजी) का है अथवा इसका मूलस्रोत ऐतिहासिक घटनाओं पर भी आश्रित है यह एक

^१ प्रो० मैक्समूलर : 'लेक्चर्स ऑन साइंस अन्ड लैंग्वेज', पृ० ११।

ऐसी समस्या है जिसके विषय में अंतिम निर्णय पर पहुँच जाना असंभव-सा ही प्रतीत होता है। कोई लिखित प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं और अत्यंत प्राचीनकाल से वह केवल मौखिक अनुश्रुति अथवा काव्यमयी रचनाओं के ही माध्यम से प्रचलित रहती आई है। फलतः उसकी वास्तविक बातें या तो अस्पष्ट, धुँधली वा विकृत हो गई हैं अथवा उन पर काल्पनिक वा अतिरजित आवरण पड़ गया है। हमसे सदेह नहीं कि 'राम' शब्द किसी व्यक्ति के नाम का बोधक वैदिक युग से ही रहता आया है और प्राचीन ईरान देश के 'जेद अवेस्ता' तक से हमसे गिनत गिनत 'रामहुवास्त्र' शब्द आता है जिसका अर्थ (राम = विश्राम + हुवास्त्र = चरागाह) अर्थात् 'चरागाह से विश्राम' किया जाता है और कहा जाता है कि यह शब्द पीछे चल कर एक देवता का नाम बन गया जो 'अच्छे वायु' का प्रतीक था। किन्तु हमसे राम-कथा के राम का संबंध नहीं। इसी प्रकार एक असीरियन देवता का भी नाम रम्मन वा रम्मानु मिलता है जो हिब्रू भाषा में रिमोन के रूप में पाया जाता है। 'रम्मानु' की मूल धातु का अर्थ मेघ गर्जन वा वज्रपात होता है और हिब्रू की मूल धातु 'राम' का अर्थ ऊँचा वा श्रेष्ठ है जिसमें बने अनेक नाम उपलब्ध हैं।^१ यहूदियों के नवे अवतार लामश (राम) तथा ईरान के अखामनी सम्राट् अग्यिरमन (आर्यराम) की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। इन सभी नामों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि 'राम' शब्द से मिलते-जुलते और प्रायः देवता वा श्रेष्ठ व्यक्ति के ही वाचक अनेक शब्द प्राचीन जातियों में प्रचलित थे। फिर भी राम-कथा के कथानक का रामायणीय रूप, उनके साथ किसी प्रकार जुड़ा हुआ, वहाँ पर नहीं पाया जाता। डा० दिनेशचंद्र ने तो इस बात का भी पता दिया है कि मध्य एशिया के किसी मितन्नि नामक आर्य जाति का एक राजा दशरथ के नाम से भी प्रसिद्ध था और उसका शासनकाल ईस्वी सन् १४०० (पूर्व) के लगभग रहा, किंतु उसके साथ भी राम-कथा के संबंध का कोई संकेत नहीं।^२

राम-कथा के राम और उनके वंश एवं चरित्र की कुछ न कुछ ऐतिहासिक

^१ डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० १०८-९।

^२ डा० दिनेशचंद्र : 'दि बंगाल रामायन्स' (कलकत्ता, १९२०), पृ० ३९।

भूलक केवल भारत की उन प्राचीन पौराणिक अनुश्रुतियों में ही मिलती है जिन्हें कतिपय आधुनिक विद्वानों ने बड़े गंभीर अध्ययन एवं छानबीन के उपरांत सगृहीत किया है। इनमें सबसे प्रमुख व्यक्ति पार्जिटर नामक एक अंग्रेज विद्वान हैं जिनका 'ग्रेट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन' ग्रंथ बहुत विश्वमनीय समझा जाता है। पार्जिटर ने हमें प्रायः तीन वर्षों के घोर परिश्रम द्वारा किये गए पुराणों के तुलनात्मक अध्ययन एवं वैज्ञानिक विवेचन पर आश्रित रखा है। इसके अनुसार प्रागैतिहासिक पुरुष वैवस्वत मनु कदाचित् सर्वप्रथम राजा थे जिनके कई पुत्रों में सबसे बड़े इक्ष्वाकु को मध्य देश राज्य मिला और उसके वंशज 'सूर्यवंशी' कहलाए तथा उसके भी पुत्रों में गे विकुक्षि एवं निमि बहुत प्रसिद्ध हुए। विकुक्षि बड़ा था और उसे अयोध्या का प्रदेश मिला, किन्तु छोटे निमि को उसके पूर्व वाले विदेह देश में एक नवीन राज्य स्थापित करना पड़ा जिसमें उसके एक वंशज मिथि ने मिथिला नगरी बसायी और उसके वंश वाले राजा पीछे 'जनक' नाम से भी अभिहित किये जाने लगे। पार्जिटर ने इन तथा अन्य ऐसे वंशों की वंशतालिका भी निमित्त करने का प्रयत्न किया है और उसके प्रमुख राजाओं का समय पीढ़ियों के अनुसार स्थिर किया है। इन वंशावलियों में सबसे अधिक पूर्व अयोध्या नरेशों की ही प्रतीत होती है जो इक्ष्वाकु से लेकर महाभारत-कालीन बृहद्वल तक एक सीधे क्रम से चली आती है। इसलिए अयोध्या की वंशावली को उन्होंने औरों के लिए भी एक मानदंड बना लिया है। अयोध्या की वंशावली में हमें राम का भी नाम मिलता है जो रामायण में निरगन्धी वा चौसठवीं पीढ़ी में आते जान पड़ते हैं और उनके पहिले वाले दशरथ के समकालीन सीरध्वज ठहरते हैं जो विदेह देश के निमिवंशी राजा हैं और जो इसी कारण 'जनक' भी कहलाते हैं। अनुश्रुति के अनुसार अयोध्या के राजा सगर को पार्जिटर ने कृतयुग का अंतिम राजा तथा राम को त्रेता का अंतिम राजा समझा है और द्वापर का अंत कृष्ण के देहान्त काल तक मान लिया है। इस प्रकार यदि कृष्ण कालीन प्रसिद्ध भारत-युद्ध का समय ईस्वी सन् १४२४ (पूर्व) मान लिया जाय तो, प्रति पीढ़ी के लिए केवल १६ वर्षों का भी काल निर्धारित करने पर, राजा इक्ष्वाकु का शासन काल लगभग ईस्वी सन् २९५० (पूर्व) तक जा सकता है। फलतः उक्त पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार हमें जान पड़ता है कि राम का भी समय

कही ईस्वी सन् १९०० (पूर्व) के लगभग रहा होगा।^१ एक पीढ़ी के शासन काल की अवधि को कभी-कभी २२ अथवा २५ वर्षों तक बढ़ा दिया जाता है जिस कारण इस अनुमानित समय को हम और आगे भी ले जा सकते हैं। फिर भी इस प्रकार की काल-गणना केवल क्षीण आधारों पर ही निर्भर रहेगी और इस पर असदिग्ध प्रामाणिकता की छाप नहीं लगायी जा सकती। पार्जिटर के ही अनुसार उक्त वंशावलियों के कई नामों के आगे-पीछे एक वा अनेक नामों का पता नहीं चलता और वहाँ केवल प्रसंगों से ही काम लिया जाता है। इसी कमी का सहारा लेकर एक लेखक ने राम एवं सीता के जीवन-कालों में १०० वर्षों के अंतर का अनुमान करते हुए राम-कथा को काल्पनिक भी ठहराने की चेष्टा की है।^२

परन्तु राम के शासनकाल को यदि हम निश्चित रूप से नहीं ठहरा सके तो भी यह आवश्यक नहीं कि हम उन्हें केवल एक कल्पित व्यक्ति भी मान लें। राम के राजा होने तथा एक प्रतापी शासक के रूप में राज्य करने का उल्लेख न केवल पुराणों में हुआ है, अपितु उसके कई प्रसंग महाभारत में भी आते हैं। उसके 'सभापर्व', भीष्मपर्व' एवं 'षोडशराजीय' उपाख्यान की सूचियों की चर्चा पहले की जा चुकी है। उनमें सर्वत्र इन्हें एक चक्रवर्ती अथवा इन्द्र की भाँति बहुत बड़े प्राचीन राजा के रूप में चित्रित किया गया है और इन्हें वैसे महापुरुष में गिना भी गया है। 'महाभारत' एवं पुराणों के अतिरिक्त पतंजलि के 'महा-भाष्य' में राम के उल्लेख के साथ साथ किसी राम चरित-संबंधी रचना के दो पद्य भी पाये जाते हैं^३ और उसके भी पूर्व की रचना कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र'

^१ जयचंद्र विद्यालंकार : 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा', जिल्द १, (प्रयाग), पृ० २१६-७ एवं २६०-५।

^२ रजनोकान्त शास्त्री : 'मानस मीमांसा' (प्रयाग, १९४९), पृ० ९२-३।

^३ 'बहूना सप्यचित्ताना मेको भवति चित्तवान्।

पश्य बानर सैन्येस्मिन्यवर्कं मुपतिष्ठते॥

मैवं मंस्थाः सचित्तोऽमेवोऽपि हि यथा वयम्।

एतदप्यस्य कायेयं यवर्कं मुपतिष्ठति॥' (सूत्र १-३-२५) ये दोनों श्लोक वाल्मीकीय 'रामायण' में नहीं मिलते।

में लिखा मिलता है कि पर-स्त्री के हरण से रावण जैसे राजा का भी नाश हो गया । इसके निवाय पाणिनि के प्रसिद्ध 'अष्टाध्यायी' ग्रन्थ में भी हमें 'रामायण' के पात्रों में से कई एक के नामों की व्युत्पत्ति मिलती है जिससे स्पष्ट है कि कम से कम ईसा की आठवीं शताब्दी (पूर्व) तक राम के अतिरिक्त उनकी कथा भी प्रसिद्धि में आ चुकी थी । वाल्मीकि मुनि के लिए कहा गया है कि उन्होंने अपनी 'रामायण' की रचना स्वयं राम के ही समय में की थी और उसके दाक्षिणात्य पाठ वाले संस्करण में राम, सीता एवं लक्ष्मण उनके आश्रम में पहुँच कर उनका अभिवादन करते तथा उनके द्वारा आतिथ्य स्वीकार पाते भी दीख पड़ते हैं । अतएव, कुछ लोगों ने यहाँ तक अनुमान किया है कि वाल्मीकि एवं राम दोनों का समय अधिक से अधिक ईस्वी सन् (पूर्व) की बारहवीं शताब्दी तक जा सकता है जिस समय 'रामायण' की रचना हुई थी ।^१ परन्तु, जैसा 'हरिवंश' नामक ग्रन्थ के कतिपय अंशों से भी जान पड़ता है, राम-कथा उस समय गाथा रूप में पहले से ही प्रचलित थी और गायी भी जा रही थी ।^२ 'महाभारत' एवं 'त्रिपिटक' में जो इस कथा के रूप मिलते हैं उनसे भी यह सूचित होता है कि वह सर्वथा रामायणीय कथा के ही अनुरूप नहीं थी । गाथा एवं आख्यान काव्यों के माध्यम से प्रचलित होने के कारण उसे गाने वालों ने उसमें यत्रतत्र परिवर्तन कर दिये । परन्तु इतना स्वीकार कर लेना अनुचित नहीं कहा जा सकता कि राम-कथा का एक साधारण रूप पहले अवश्य वर्तमान रहा होगा ।

मूल राम-कथा के सरल एवं साधारण रूप को निश्चित कर पाना इस समय एक दुःसाध्य कार्य-सा लगता है । फिर भी बहुत से विद्वान् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उसमें पहले 'बाल कांड' तथा 'उत्तर कांड' की कथाओं का समावेश नहीं था । कुछ लोगों का तो यहाँ तक अनुमान है कि राम-कथा के निर्मित होने के पहले राम, रावण एवं हनुमान् संबंधी स्वतंत्र आख्यान प्रचलित थे जिन्हें एक में जोड़ कर कोई

^१ डा० बुल्के : 'रामकथा', पृ० ३५। (दे० पृ० ३७ भी) ।

^२ 'गाथा अप्यत्र गायंति ये पुराण विद्वज्जनाः ।

रामेनिबद्ध तत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः ॥' (अध्याय ४१-१४९) ।

व्यवस्थित रूप दे दिया गया और वह 'आदिरामायण' के नाम से प्रचलित हो गया। 'आदिरामायण' की राम-कथा के विषय में एक यह भी अनुमान किया गया है कि उसका क्रमिक विकास भिन्न-भिन्न सोपानों के अनुसार हुआ था। प्रथम सोपान में राम के हिमालय प्रदेश की ओर निर्वासित किये जाने की ही कथा थी। द्वितीय सोपान में हिमालय प्रदेश का स्थान गोदावरी तट ने ले लिया और उसमें आदिवासियों के आक्रमणों में तपस्वियों की रक्षा करते हुए भी दीख पड़े। इसी प्रकार तृतीय सोपान में राम के इस कार्य को वह रूप भी दिया जाने लगा जो वस्तुतः आर्यों की दक्षिण-विजय-यात्रा के अनुरूप था और अंतिम वाचतुर्थ सोपान में राम का आक्रमण सिंहलद्वीप के राजा के विरुद्ध कल्पित कर लिया गया। परन्तु इस प्रकार के अनुमान का कोई पुष्ट आधार नहीं दिया जाता, प्रत्युत इसके लिए सर्वप्रथम यह मान कर भी चला जाता है कि राम-कथा, वास्तव में, एक रूपक है जिसमें आर्यों की दक्षिण विजय के सफल प्रयत्न प्रतिबिम्बित हैं^१ और उसमें किसी ऐतिहासिक तथ्य का प्रायः सर्वथा अभाव है। 'आदिरामायण' के रचयिता का पता नहीं चलता, किन्तु परम्परा ने उसे आदिकवि वाल्मीकि मुनि ही समझा है जिस कारण यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम रामकथा-संबन्धी स्फुट काव्यों का सकलन कर उन्हें एक व्यवस्थित रूप दिया होगा। उसके अनंतर 'आदिरामायण' ग्रंथ में प्रक्षेपों का प्रवेश आरंभ हुआ होगा और वह अंत में, ईसा की दूसरी शताब्दी (पूर्व) तक अपने वर्तमान रूप में आ गया होगा। ईसा की तीसरी शताब्दी की एक बौद्ध रचना 'अभिधर्म महाविभाग' से पता चलता है—

“रामायण नामक ग्रंथ में १२००० श्लोक हैं। ये श्लोक केवल दो विषयों से संबंध रखते हैं, (१) रावण द्वारा सीता का हरण और (२) राम द्वारा उसकी पुनः प्राप्ति तथा प्रत्यागमन।”^२ जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह

^१ ए० मैकडानल : 'ए हिस्ट्री अफ् संस्कृत लिटरेचर', पृ० ३११ (लासेन का मत)।

^२ 'जर्नल अफ् दि रायल एशियाटिक सोसायटी' (सन् १९०७ ई०), पृ० ९९-१०३।

संख्या 'आदि रामायण' के ही श्लोको को सूचित करती होगी, क्योंकि, वर्तमान 'रामायण' का निर्माण उस समय तक हो जाने पर भी उसके श्लोको की संख्या २४००० तक पहुँच चुकी थी और उसके अंतर्गत 'बालकांड' तथा 'उत्तरकांड' भी आ गए थे। 'आदिरामायण' की मूल रचना की भाषा के विषय में कुछ लोगो का अनुमान था कि वह प्राकृत रही होगी, किन्तु डा० याकोबी ने इस मत के विरुद्ध कई तर्क उपस्थित किये हैं और उसके आर्ष प्रयोगो आदि के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि वह संस्कृत में अनुवादित मात्र नहीं हो सकती।

डा० याकोबी ने 'आदिरामायण' के कनिष्ठ अंगो को प्रचलित 'रामायण' के विभिन्न भागो में डूँढ़ निकालने का भी प्रयत्न किया है। उन्होंने इसमें प्राग्भिक भूमिका-भाग को निर्धारित किया है और उसके अनन्तर कथा-वस्तु के विकास की कल्पना कर उसमें क्रमशः आते जाने वाले प्रश्नेपो का भी निर्देश किया है। ये प्रश्नेप मूल रचना के भीतर समय-समय पर कई कारणो में प्रवेश करते गए हैं जिसका उल्लेख भी उन्होंने किया है। 'अयोध्या कांड' में लेकर 'युद्ध कांड' तक की मूल राम-कथा में 'बालकांड' एवं 'उत्तर कांड' की कथाओ का कव्य समावेश हुआ यह कहा नहीं जा सकता। किन्तु इस बात के लिए प्रमाणो की कमी नहीं कि ईसा की दूसरी शताब्दी तक वाल्मीकीय 'रामायण' अपना प्रचलित रूप अवश्य ग्रहण कर चुकी थी और, उधर की कई शताब्दियो में, राम के आदर्श चरित्र की चर्चा के होते आने तथा उसकी लोकप्रियता के बढ़ते जाने के कारण, उसमें कुछ न कुछ वृद्धि भी होती जा रही थी। अवतारवाद का अधिक प्रचार हो जाने पर तथा भक्ति-भाव के महत्त्व के बढ़ते जाने के कारण इसमें अलौकिकता की मात्रा भी बढ़ चली और पूरी राम-कथा वा उसके किसी न किसी महत्त्वपूर्ण अंश को लेकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य भारतीय भाषाओ में क्रमशः एक विशाल राम-साहित्य की सृष्टि हो गई। राम-कथा की लोकप्रियता केवल ठेठ हिन्दू समाज तक ही सीमित नहीं रही और न केवल हिन्दू कवियो ने ही अपनी रचनाओ का आधार बनाया। बौद्धों ने ईस्वी सन् का प्रारंभ होने के पहले से ही राम को बोधिसत्त्व मानकर उनका चरित लिखना आरंभ कर दिया था। जैनियो ने भी इसके अनन्तर उन्हें आठवें बलदेव के रूप में स्वीकार कर लिया और,

वाल्मीकि मुनि की रचना को आदर्श न मानते हुए भी, राम-कथा का प्रचार किया।

राम-कथा की उत्पत्ति एवं विकास की चर्चा करते हुए डा० बुल्के ने अपनी 'रामकथा' के अंत में एक 'सिहांवलोकन' दिया है जिसका सार यह है:—वैदिक काल के अनंतर इक्ष्वाकु वंश के सूरतों द्वारा राम-कथा संबंधी आख्यान काव्य की सृष्टि होने लगी और ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी (पूर्व) तक प्रचलित होकर वह पाली 'तिपिटक' के आख्यानो तक में अपना स्थान ग्रहण करने लगा। इसके, संभवतः कुछ पहले से ही वाल्मीकि मुनि ने, फुटकर आख्यानकाव्यों के आधार पर, अपनी 'आदिरामायण' की रचना कर ली थी जिसमें केवल 'अयोध्याकांड' से लेकर 'युद्धकांड' तक की ही कथा का समावेश था और जिसका कलेवर भी केवल १२००० श्लोकों के ही निर्मित काव्य-ग्रंथ के रूप में था। किन्तु 'आदिरामायण' के पहले लिखित रूप में न रहने के कारण, उसका पाठ स्थिर न रह सका और उसे गाने वाले काव्योपजीवी कुशील एव अपने श्रोताओं की रुचि के अनुसार लोकप्रिय अंश बढ़ाते भी चले गए। फलतः जो रचना पहले केवल 'रामायण' (राम + अयन अर्थात् राम का पर्यटन) के रूप में थी वह राम के पूर्ण चरित के रूप में परिणत हो गई और 'अयोध्या कांड' से लेकर 'युद्ध कांड' तक की कथा के आगे और पीछे 'बालकांड' एव 'उत्तर कांड' की भी कथाएँ जोड़ दी गईं। राम-कथा के इस प्रथम सोपान में 'रामायण' एक नर-काव्य से अधिक महत्त्व की नहीं थी और उसके नायक राम भी एक आदर्श क्षत्रिय वीर एवं प्रतापी राजा थे।

इसके दूसरे सोपान में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इसमें राम का विष्णु के एक अवतार में परिणत हो जाना था। इसी सोपान से हमें हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायियों के पृथक्-पृथक् साहित्यों में इसके स्पष्टतः भिन्न-भिन्न रूप दीख पड़ने लगते हैं। इस सोपान के युग में एक दूसरी विशेष बात यह देखने को मिलती है कि राम-कथा का प्रवेश साहित्यिक रचनाओं में भी हो जाता है और इसके आधार पर सुंदर-सुंदर काव्यों की सृष्टि होने लगती है तथा उनमें अधिकतर श्रैंगारिक वर्णनों की प्रचुरता भी स्पष्ट हो जाती है। इसके सिवाय इस दूसरे सोपान के ही समय में राम-कथा का प्रचार और विस्तार विदेशों तक में हो जाता है और

इसके आधार पर सर्वत्र नाटकों का अभिनय तक होने लगता है। राम-कथा के विकास का यह सोपान संभवतः ईसा की १३वीं शताब्दी तक रहता है जबकि उस पर धार्मिक आन्दोलन के प्रभाव पड़ने लग जाते हैं। इस काल के आगे उसमें भक्ति के दृष्टिकोण से निर्मित की गई रचनाएं सम्मिलित होने लगी हैं जो उसके तीसरे सोपान की विशेषता हैं। राम-भक्ति के प्रादुर्भाव के पश्चात् राम-कथा का समस्त वातावरण परिवर्तित हो जाता है और इसका आदर्शवाद अपने पूर्णरूप में प्रकट हो जाता है। अपनी मानव हृदय को आकर्षित करने की अद्भुत शक्ति के कारण यह क्रमशः मपूर्ण भारतीय संस्कृति में व्याप्त हो जाती है। वास्तव में इसमें पाया जाने वाला लोक संग्रह का भाव तथा इसके पात्रों के जीते जागते-आदर्श ऐसे हैं जिनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। भारत की समस्त आदर्श भावनाएं राम-कथा में आज केन्द्रीभूत हो गई हैं और यह आज भारतीय संस्कृति के आदर्श-वाद का उज्ज्वलतम प्रतीक बन गई है।^१

अतएव राम-कथा की व्यापकता उसकी उत्पत्ति एवं विकास की उपर्युक्त ऐतिहासिक चर्चा के आधार पर यह निःसकोच कहा जा सकता है कि इसके विविध रूपों तथा उनका पारस्परिक विभिन्नताओं का वैज्ञानिक समाधान भी असंभव नहीं है।

मानस की राम-कथा का स्वरूप

‘मानस’ की राम-कथा अपने विकास के उस तृतीय मोपान को सूचित करती है जब उसके ऊपर राम-भक्ति का प्रभाव पूर्णरूप से पड़ चुका था और तदनुसार उसके साथ उपर्युक्त विभिन्न विषयों को भी सम्मिलित करने का उपयुक्त अवसर उपस्थित था। उसके रचयिता के समक्ष उस समय इस प्रकार की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी थी जिसका उपयोग कर उसने इसके मूल रूप तक में कुछ परिवर्तन ला दिया। हम यहाँ पर सर्व प्रथम, ‘मानस’ की राम-कथा का सारांश मात्र देंगे। तदनंतर क्रमशः उसके कतिपय पूर्ववर्ती, समसामयिक तथा स्वयं उसके रचयिता द्वारा ही निर्मित अन्य ग्रंथों के साथ उगवती तुलना करने की चेष्टा करेंगे।

(१) राम-कथा का सारांश—अवधपुरी में दशरथ नामक रघुवंशी राजा राज्य करते थे और वे अपनी कौशल्यादि स्त्रियों के साथ धर्म में निरत रहते थे। उन्हें एक बार पुत्रहीन रहने के कारण, ग्लानि हुई जिस कारण उन्होंने अपने गुरु वशिष्ठ के परामर्श से पुत्रेष्टि यज्ञ किया। फलतः उन्हें हविष्य के द्वारा अपनी चार पत्नियों में से कौशल्या के गर्भ में राम, कैकेयी में भरत एवं सुमित्रा में लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। इन चाहे में से राम और लक्ष्मण लडकपन से ही एक साथ रहने लगे और, उसी प्रकार भरत एवं शत्रुघ्न का भी संबंध स्थिर हो गया। एक दिन समय पाकर वहाँ विश्वामित्र मुनि आये और अपने यज्ञ में सहायता के लिए राम और लक्ष्मण को दशरथ में माँग ले गए। यज्ञ रक्षा के अनंतर विश्वामित्र मुनि उन दोनों राजकुमारों को फिर जनकपुर के सीता-स्वयंवर में ले गए जहाँ राम ने धनुर्भंग में सफलता प्राप्तकर सीता का पाणि-ग्रहण किया। विवाह के उपलक्ष में अवधपुरी में दशरथ बारात लाये और उनके तीन अन्य पुत्रों की भी विवाह-विधि एक साथ सम्पन्न हुई। धनुर्भंग के कारण क्रुद्ध होकर परशुराम

ने राम से उसका बदला लेना चाहा था, किन्तु अत मे, उन्हे ही नीचा देखना पडा और दशरथ सबके साथ सकुशल घर लौट आए।

दशरथ ने अपनी वृद्धावस्था मे, अपन सबसे बड़े पुत्र राम को युवराज बनाना चाहा और इसके लिए तैयारिया होने लगी। किन्तु भरत की माता कैकेयी ने इस पर आपत्ति की और, स्वय अपने पुत्र को वह अधिकार दिलाने के उद्देश्य मे, उसने कलह आरंभ किया। उसने दशरथ को, उनकी किसी पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण दिला कर विवश किया कि वे भरत को ही युवराज बनावे और राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास दे दे। भरत एवं शत्रुघ्न उस समय अनुपस्थित थे और दशरथ भी इस बात को हृदय से पसंद नहीं करते थे। किन्तु राम ने कैकेयी के प्रस्ताव को महर्ष स्वीकार कर लिया और उनके वन गमन के अवसर पर लक्ष्मण एवं सीता ने भी उनका साथ दिया। सुमंत्र उन्हे रथ पर चढाकर वन की ओर ले चले, किन्तु राम ने उन्हे शृगवेरपुर से वापस कर दिया और वहाँ से गंगा पार होकर पैदल आगे बढ़े तथा गुह भी उनके साथ हो लिया। वहाँ से फिर वे लोग प्रयाग और वाल्मीकि आश्रम होते हुए चित्रकूट पहुँचे जहाँ उन्होने डेरा डाल दिया। इधर सुमंत्र के, उन्हे छोडकर वापस आते ही, राजा दशरथ ने प्राण त्याग कर दिया और वशिष्ठ ने भरत एवं शत्रुघ्न को बुला भेजा। भरत ने आकर दशरथ की अत्येष्टि किया की। किन्तु वे राज्य कार्य सभालने पर किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए और राम को समझा-बुझाकर लौटाने के लिए स्वय भी वन की ओर चल पडे। राम से उनकी चित्रकूट में भेट हुई और दोनों भाइयों में इस विषय पर पूरी बातचीत हुई, किन्तु राम ने अवधि के भीतर अवधि पूरी में लौटना स्वीकार नहीं किया और भरत को अपना प्रतिनिधि स्वरूप 'पावनी' देकर विदा किया।

चित्रकूट में कुछ दिनों और ठहर कर तथा जयंत को तीर से घायल कर फिर सीता और लक्ष्मण सहित राम आगे बढ़े। वे वहाँ से अत्रि के आश्रम पर गये। उसके आगे विराध को मारा, शरभंग ऋषि से भेंट की तथा क्रमशः सुतीक्ष्ण एवं अगस्त्य से मिलकर पंचवटी पहुँच गए। पंचवटी में रावण की बहन शूर्पणखा को, उसकी छेड़-छाड़ पर, लक्ष्मण ने विरूप कर दिया जिस पर वह खरदूषणादि

राक्षसों को चढ़ा लाई। राम को उनसे युद्ध करना पड़ा जिसमें वे सभी काम आये और यह कुसमाचार लेकर रावण को भी उभाड़ने लंका पहुँच गई। रावण ने इस पर मारीच को कपट भूग बनाया और उसीके बहाने राम की कुटी को निर्जन पाकर वहाँ से सीता को हर ले चला। मार्ग में उसे जटायु ने बाधा पहुँचाई, किंतु वह असफल रहा और, अंत में सीता को लाकर रावण ने लंका के अशोक वन में रख दिया। इधर सीता के विरह में दुखी होकर लक्ष्मण के साथ राम और आगे बढ़े, शबरी से भेंट की तथा उसके परामर्श से पंपासर की ओर चले गए।

पंपासर से कुछ दूरी पर, ऋष्यमूक पर्वत के ऊपर, किष्किंधा के कपिराज सुग्रीव रहा करते थे। राम ने वहाँ पहुँच कर उनसे मंत्री की और उनसे शत्रु-भाव रखने वाले बालि को मार कर सीता की खोज में उनके वानरो को प्रेषित किया। वानरों का जो दल दक्षिण दिशा की ओर चला उसमें हनुमान भी थे जिन्होंने समुद्र लाँघ कर लंका में जाना स्वीकार किया। लंका के अशोक वन में रखी गई सीता का पता जटायु के भाई संपाति को मिल चुका था जिसने इन वानरो को वहाँ जाने की बात सुभायी। हनुमान् जब लंका में पहुँचे तो पहले उन्हें सीता का पता नहीं चला और रावण के भाई विभीषण से भेंट होने पर ही, वे अशोक वन में पहुँच सके। अशोक वन में उन्होंने सीता से भेंट की, उन्हें राम की भेजी मुद्रिका दी, पकड़े जाने पर लंका-दहन किया और फिर वहाँ का संदेश लेकर इस पार लौट आये। राम एवं सुग्रीवादि ने सीता का पता पाकर लंका की ओर ससैन्य प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचने के लिए समुद्र पर पुल बाँधा गया। रावण के भाई विभीषण और उनके सचिव माल्यवत इसके पहले ही राम से आ मिले थे।

सेतु द्वारा लंका पहुँच कर अपने मित्रों के परामर्श से, राम ने, पहले अंगद को रावण के यहाँ दूत बनाकर भेजा। परंतु रावण जो अपने बंधु, सचिव, पुत्र एवं पत्नी की बातों को टाल चुका था अंगद के भी प्रस्तावों को अस्वीकार करता गया और उन्हें हार मान कर लौट आना पड़ा। फलतः दोनों दलों में युद्ध छिड़ गया जो कई दिनों तक घनघोर रूप में चलता रहा। रावण पुत्र मेघनाद ने इसी बीच एक दिन लक्ष्मण को शक्ति से घायल करके मूर्छित कर दिया जिन्हें फिर से सचेत करने के लिये हनुमान को सुषेण वैद्य और संजीवनी बूटी पहुँचानी

पडी। अंत में युद्ध करते-करते क्रमशः कुंभकर्ण, मेघनाद और स्वयं रावण को भी आहत होकर मर जाना पडा और राम विजयी हुए। राम ने लंका का राज्य विभीषण को दे दिया और सीता, लक्ष्मण, एवं प्रमुख मित्रों को लेकर पुष्पक विमान द्वारा वे अयोध्या लौटे। यहाँ पहुँच कर वे फिर अपने इष्ट मित्रों तथा परिवार वालों से मिले और उनका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ। राज्य-सिंहासन पर बैठने के अनंतर उन्होंने अंगद, सुग्रीव, जाम्बवन्त, विभीषण आदि मित्रों की वहाँ से प्रेमपूर्वक बिदाई की और वे फिर अपना राज्य संभालने में लग गए।

‘राम चरित मानस’ की राम-कथा का यह अत्यंत सक्षिप्त रूप है। गो० तुलसी-दास ने इसे उसमें बड़े विस्तार के साथ कहा है और वे इसमें यथास्थल भिन्न-भिन्न प्रसंगों एवं विविध विषयों को समाविष्ट करते भी गए हैं। इसके सिवाय उन्होंने इस ग्रंथ के आरंभ में एक वंदना-प्रकरण लिखा है जिसमें उन्होंने देव, गुरु, ब्राह्मण संत-असंत, जड-चेतन, राक्षस, किन्नर, गंधर्व, कविगण, अवधादि एवं राम-नाम की वंदना की है और फिर ग्रंथ-रचना की प्रस्तावना करते हुए ‘मानस’ का उन्होंने एक रूपक भी बाँधा है। इसके अनंतर वे भरद्वाज एवं याज्ञबल्क्य के संवाद की प्रस्तावना देते हैं, उसमें सर्वप्रथम, शिव चरित कहलाते हैं और फिर उमा-शंभु संवाद की भी प्रस्तावना दे देते हैं। इतना होने पर कही मूल राम-कथा की भूमिका आरंभ होती है और उमा-शंभु संवाद द्वारा, हेतु-कथाओं के अनंतर, रावण चरित कहलाया जाता है। रावण तथा उसके बंधु-बाधवादि राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी तथा देवगण की स्तुति प्रार्थना के फलस्वरूप ही रामावतार का होना कहा जाता है। ‘राम चरित मानस’ के प्रथम तथा सबसे बड़े कांड (बालकांड) का लगभग पूर्वाद्ध भाग केवल इन्हीं प्रारंभिक बातों में समाप्त हो जाता है। तत्पश्चात् राम-कथा का, राम के जन्म से लेकर उनके विवाहादि तक का अंश बालकांड के अंत तक जाता है। ‘अयोध्याकांड’ में उनके अभिषेक-प्रसंग से लेकर भरत के चित्रकूट से लौटकर नंदिग्राम में नियमित रूप से रहने लगने की कथा दी गई है। ‘अरण्यकांड’ में जयंत प्रसंग से लेकर राम के पंपासर पहुँचने तक का वृत्तांत है और इसी प्रकार ‘किष्किंधाकांड’ में राम-सुग्रीव-मैत्री से आरंभ होकर हनुमान के सागर तीर जाने तक की कथा है। ‘सुन्दरकांड’ में हनुमान के लंका प्रवेश से

कथा का आरम्भ होता है और वह राम के समन्य मिथु तक पहुँच जानें के वर्णन में समाप्त होता है। 'लंकाकांड' में मेतुवध में लेकर रावणादि के वध एवं राम के अपने मित्रादि के साथ अवध की ओर प्रस्थान करने तक की बातें दी गई हैं। 'मानस' के अंतिम कांड (उत्तर कांड) के पूर्वार्द्ध में बहुत कम अंश में ही राम के अभिषेक तथा उनके राज्य-शासन की कथा कह दी जाती है। इस कांड का शेष अंश 'मगध-कांड' की प्रस्तावना, भृशुडि के आत्म-चरित, कलियुग का वर्णन एवं भक्ति-निरूपण तथा, अंत में, उमा शम्भु-मवाद की समाप्ति और ग्रंथ की फल-स्तुति में लग जाता है जिसमें कवि अपने मन को उपदेश देता भी दीर्घ पढ़ता है।

'मानस' की राम-कथा के उक्त क्रम-विकास तथा उस रचना के कांड-विभाजन आदि में भी स्पष्ट है कि उसमें वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण किया गया है तथा वही उसका वास्तविक आधार एवं आदर्श भी है। 'रामायण' का अंतिम रूप जिसमें उसकी राम-कथा अवतारवाद द्वारा प्रभावित है, गो० तुलसीदास के बहुत पहले में ही निश्चित हो चुका था और बहुत से वैसे महाकाव्यों, नाटकों तथा अन्य ग्रंथों की रचना संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं प्राचीन भाषाओं में भी, उनके कई शताब्दी पूर्व में होती आ रही थी। उनके बहुत से पूर्ववर्ती कवियों ने अवतारवाद के साथ भक्तिवाद का भी मेल बिठा लिया था जिससे उन्हें किसी नवीन पद्धति के प्रचलित करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। रामकथा-संबंधी ऐसे विभिन्न ग्रंथों का उन्होंने कदाचित् बड़ी लगन के साथ अध्ययन किया और जहाँ कहीं भी उन्हें अपनी रचि के अमुकूल बातें मिली उन्हें आत्मसात् कर तथा उन पर अपनी प्रतिभा की छाप लगाकर उनके अनुसार उन्होंने अपने 'राम चरित मानस' की रचना कर डाली। 'राम चरित मानस' की ध्यानपूर्वक पढ़ते समय उस पर पड़ा हुआ वैसे अनेक अन्य ग्रंथों का प्रभाव लक्षित होने लगता है। यदि उनका इसके साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो, यह भी पता चल जाता है कि इसका रचयिता उनके कवियों का कहाँ तक ऋणी कहा जा सकता है। उससे न केवल यही ज्ञात होता है कि गो० तुलसीदास ने राम-कथा के विविध प्रसंगों को लेकर उन्हें अपने एक निजी ढंग से क्रमबद्ध कर दिया है और यत्र-तत्र उन पर कुछ नया रंग चढ़ाया है, अपितु उससे यह भी प्रकट हो जाता है कि उन्होंने इसके अनेक

स्थलों पर अपने पूर्ववर्ती कवियों की वर्णन-शैली तक अपना ली है और कहीं-कहीं उनकी बहुत-सी उक्तियों को अनुवादित करके भी रख दिया है। अतएव, हम यहाँ पहले 'राम चरित मानस' में पूर्व लिखे गए ग्रंथों की राम-कथा के साथ इसकी कथा के क्रमादि की तुलना करेंगे और तदनन्तर अन्य बातें भी दिखलाने की चेष्टा करेंगे।

(२) 'राम चरित मानस' और वाल्मीकीय 'रामायण'—'राम चरित मानस' में राम-कथा का वर्णन, वाल्मीकीय 'रामायण' की ही भाँति, सात कांडों में किया गया है, किन्तु उसके सभी प्रसंगों का क्रम इसमें सर्वत्र ठीक उसी के अनुसार नहीं रखा गया है। कुछ प्रसंगों को एक कांड में उठाकर दूसरे में रख दिया गया है। कुछ को केवल आगे पीछे कर दिया गया है और कुछ अन्य की घटनाओं में ही थोड़ा सा हेरफेर कर दिया गया है। यहाँ तक कि जिन कतिपय प्रसंगों के मूल का राम-कथा में स्थान नहीं उनका भी वर्णन इस कवि ने, कहीं-कहीं अपने ही क्रमानुसार करना उचित समझा है। इसके सिवाय वाल्मीकीय 'रामायण' की कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनका इसमें कहीं नाम तक नहीं लिया है और कुछ की जगह पर अपनी दूसरी वस्तु रख दी है।

वाल्मीकीय 'रामायण' के प्रथम श्लोक में ही वाल्मीकि मुनि एवं नारद की व्रातचीत का आरंभ होता है जिसमें वाल्मीकि मुनि नारद से अपने समय के सबसे गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, सत्यवादी एवं चरित्रवान् महापुरुष के विषय में जानने की उत्कट इच्छा प्रकट करते हैं और उनके प्रश्नों के उत्तर में नारद इक्ष्वाकुवंशी राजा रामचंद्र का नाम लेकर उनकी प्रशंसा करते हैं।^१ 'रामायण' के रचयिता 'आदि कवि' भी कहे जाते हैं और उनकी काव्य-रचना का आरंभ 'कौच-बध प्रसंग' से बतलाया जाता है जिस कारण उसका उल्लेख भी 'रामायण' के प्रारंभिक भाग में ही कर दिया गया है।^२ कौच-बध प्रसंग के अनंतर ब्रह्मा आकर, उक्त रामचंद्र के चरित पर काव्य-रचना करने की ओर वाल्मीकि मुनि का ध्यान आकृष्ट करते

^१ 'वाल्मीकीय रामायण', (बालकांड), प्रथम सर्ग श्लोक' १२ ।

^२ वही, द्वितीय सर्ग, श्लोक ९-१८ ।

हैं और ये तदनुसार 'रामायण' की रचना का उसमें नारद द्वारा 'यथाकथित' 'रघुनाथ चरित' का समावेश कर देते हैं।^१ परन्तु 'राम चरित मानस' की रचना करते समय इसके रचयिता के सामने इस प्रकार का कोई अवसर नहीं उपस्थित होता और न उसका वैसा दृष्टिकोण ही प्रतीत होता है। गो० तुलसीदास रामचंद्र को केवल एक आदर्श महापुरुष के ही रूप में चित्रित करने नहीं बैठते। वे राम के एक सच्चे भक्त और उपासक हैं। वे उन्हें अपने इष्टदेव भगवान् के रूप में देखते हैं तथा उनके चरित राम-कथा को भी वे 'राम भगति भूषित' एवं 'जग मंगल करनी' के ही रूप में अपनाते हैं। वाल्मीकीय 'रामायण' के रचयिता को अपने एक समसामयिक महान् व्यक्ति के आदर्श चरित्र का वर्णन करना अभीष्ट था जिस कारण उसे पहले तदनुकूल उपक्रम की रचना करनी पड़ी, किंतु 'राम चरित मानस' के कवि को वैसी बातों की कोई आवश्यकता नहीं है। वह अपने उस अलौकिक प्रभु का गुण गान करने जा रहा है जो स्वयं ब्रह्म होकर भी नर-रूप में अवतीर्ण हुआ है और, इसी कारण, जिसकी प्रत्येक लीला अपूर्व एवं अगम्य है। वह उसके चरित का वर्णन करना अपने लिए एक दुःसाध्य कार्य समझता है और उसमें सफल होने के लिए, सर्वप्रथम, देवादि की वंदना में प्रवृत्त हो जाता है वह अपने ब्रह्मस्वरूप राम के अवतार-ग्रहण करने की समस्या को एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं होने देता। वह इसकी जटिलता की एक रूपरेखा कथारंभ के पहले ही प्रस्तुत कर देता है और फिर प्रत्येक संवाद के पात्रों द्वारा इसकी ओर बराबर ध्यान दिलाता भी रहता है। रामायण के कवि ने नारद से राम-कथा का सारांश मात्र सुनकर उसे एक विस्तृत काव्य के रूप में रख दिया था, किंतु 'राम चरित मानस' के रचयिता ने राम-कथा की एक परम्परा का भी उल्लेख किया और उसके साथ 'राम जनम के हेतु अनेका' पर भी अपने ढंग से प्रकाश डाला।

वाल्मीकीय 'रामायण' में नारद के मुख से कहलाये गए कथा मारांग का आरंभ राजा दशरथ की उस कामना से होता है जो उन्होंने अपने सुयोग्य ज्येष्ठ

^१ 'वाल्मीकीय रामायण' श्लोक २३-३८ तथा तृतीय सर्ग, श्लोक ९।

पुत्र राम को 'यौवराज्य' पद पर अभिषिक्त करने के विषय में प्रकट की थी^१ और जो, इसी कारण, वस्तुतः अयोध्या कांड का विषय है। इसी प्रकार उस मशिन कथा का अंत भी वही तक हो जाता है जहाँ तक 'रामायण' के लंका कांड के विषय का अंत होता दीख पड़ता है। डा० याकोबी आदि कुछ विद्वानों ने इस बात से यह निष्कर्ष निकाला है कि मूल राम-कथा का विस्तार पहले 'अयोध्या कांड' में 'युद्ध कांड' तक अर्थात् केवल पाच कांडों के ही विषयों तक रहा होगा और 'बाल कांड' एवं 'उत्तर कांड' की रचना, किसी समय पीछे चलकर उनके पूरक के रूप में की गई होगी। परंतु 'राम चरित मानस' में ऐसी बात नहीं मिलती। इसमें जो कवि की काव्य 'सरिता' प्रवाहित हुई है उसके प्रारंभिक अंग में 'उमा-महेश विवाह' की भी चर्चा आ जाती है जो प्रत्यक्षतः 'बालकांड' का ही विषय है। वाल्मीकीय 'रामायण' में 'राम चरित मानस' की भाँति, शिव चरित का वर्णन नहीं मिलता इसमें, राम एवं लक्ष्मण के प्रति विश्वामित्र द्वारा बतलाया गया केवल मदन-दहन का वृत्तांत आया है जहाँ किसी स्थान को निर्दिष्ट करके अगदेश का परिचय भी कराया गया है।^२ इसी प्रकार 'वाल्मीकीय रामायण' के 'बाल कांड' में उग्र रावण चरित का भी उल्लेख नहीं है जिसकी चर्चा 'राम चरित मानस' में राम जन्म के पहले ही कर दी गई है। वाल्मीकीय 'रामायण' के 'उत्तर कांड' में उसके एक विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें रावण के संबंधियों का भी वृत्तांत दिया गया है

वाल्मीकीय 'रामायण' की राम-कथा उसके पाँचवें सर्ग से ही प्रारंभ हो जाती है जिसमें दशरथ के पूर्वजों का भी उल्लेख मिलता है। इसमें उनकी अयोध्य नगरी का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है और उनके शासन की प्रशंसा भी की गई है। ये बातें 'राम चरित मानस' में नहीं आती। इसी प्रकार 'रामायण' (बाल कांड) के नवें सर्ग से लेकर उसके पंद्रहवें तक जो ऋष्यशृंग तथा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ की विस्तृत कथा दी गई है उसे 'राम चरित मानस' की केवल

^१ वाल्मीकीय 'रामायण' (बालकांड), प्रथम सर्ग श्लोक २०-१।

^२ वही, त्रयोविंश सर्ग श्लोक १०-४।

^३ वही (उत्तर कांड) सर्ग।

कुछ ही पक्तियों द्वारा अत्यंत संक्षेप में, तथा कुछ परिवर्तन के भी साथ, कह दिया गया है। 'राम चरित मानस' का विष्णुमित्र के अयोध्या आने तथा राम लक्ष्मण को दशरथ से माँगने में सवध रखने वाला प्रसंग भी बहुत संक्षिप्त है। 'रामायण' में जहाँ इस प्रसंग के लिए लगभग चार सर्गों की रचना की गई है वहाँ 'मानस' में इसे केवल तीन दोहों के भीतर समाप्त कर दिया गया है। 'रामायण' एवं 'मानस' के अहल्या-प्रसंग तथा गगावतरण-प्रसंग की कथाओं के वर्णन भी एक समान नहीं हैं और न इनका क्रम ही दोनों में एक प्रकार का है। 'रामायण' में गगावतरण की कथा अहल्योंद्वारा प्रसंग से पहले आती है जहाँ 'मानस' में इन दोनों का क्रम ठीक उल्टा है। 'रामायण' में गगा की उत्पत्ति का वर्णन उमा के जन्म के साथ किया गया है और फिर सर्गों के साथ सहस्र पुत्रों से लेकर उनके वंशज भगीरथ तक का वृत्तांत दिया है। इस प्रकार इसकी पूरी कथा उस ग्रंथ के ३५वें सर्ग से लेकर उसके ४४वें तक चलती जाती है। किन्तु 'मानस' में केवल इतना ही कहा मिलता है—

‘गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।’

‘रामायण’ में अहल्या की कथा गौतम ऋषि के इस शाप से सूचित की गई है कि ‘तेरा भोजन केवल पवन होगा, तू और कुछ भी न खा सकेगी और भस्म में लोटती हुई तू अदृश्य बन कर रहेगी।’ अहल्या यहाँ शिला नहीं बन जानी। परन्तु ‘मानस’ के राम ने विष्णुमित्र से किसी शिला को देख कर ही उसका पूर्व वृत्तांत जानना चाहा है और विष्णुमित्र ने भी ‘सकल कथा’ कह कर उसका संक्षिप्त परिचय देते हुए बतला दिया—

गौतम नारी शाप वश, उपल बेह धरि धीर।^१

‘मानस’ के राम ने शिलामयी अहल्या को इसी कारण, पैर से छूकर स्त्री रूप प्रदान किया है जहाँ ‘रामायण’ के राम उस अदृश्य नारी के प्रत्यक्ष हो जाने पर उसके

^१ ‘राम चरित मानस’ (बालकांड) दोहा २१२।

^२ वही, दोहा २१०।

पैरों को छूते हैं और उनके भाई लक्ष्मण भी वैसा ही करते हैं।^१ 'रामायण' के अनुसार वहाँ गौतम ऋषि भी आ जाते हैं। अहल्या के शिला बन जाने तथा राम के पद-रज से मुक्त हो जाने की कथा का उल्लेख, सर्वप्रथम, कदाचित् कालिदास ने अपने 'रघुवंश' महाकाव्य में किया था।^२ गो० तुलसीदास ने इसे अपने 'मानस' में वहीं से अथवा 'पद्मपुराण' वा 'आनन्द रामायण'^३ में लिया होगा।

वाल्मीकीय 'रामायण' के अनुसार जब राम लक्ष्मण एवं विश्वामित्र जनकपुर पहुँचते हैं तो राजा जनक उनका स्वागत-सत्कार करते हैं। जनकपुर में वहाँ स्वयंवर का कोई विस्तृत आयोजन नहीं दिखलाया गया है और न उसमें 'मानस' का-मा कोई फुलवारी-प्रसंग ही दिया गया है। राजा जनक विश्वामित्र के पूछने पर धनुष की कथा एवं नीला-सी उत्पत्ति वा वृत्तान्त कह गनाने हैं और सीता को 'वीर्यगन्का' भी बतलाते हैं। फिर व अपने सचिवों का आदेश देकर धनुष का संग्रहाण है और वह पाँच महत्त्व बलवान् मनुष्यों द्वारा खींचा जाकर लोहे की पट्टी में लटकाया जाता है। राम उस पट्टी में से धनुष उठा कर उस पर गोदा चढ़ाते हैं और गोदे के खींचे जाते ही वह बीच में टूट जाता है।^४ 'मानस' में, इसके विपरीत, राम एवं सीता के परस्पर एक दूसरे को देखने तथा पूर्वानुराग प्रकट करने का दृश्य फुलवारी प्रसंग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, स्वयंवर-मंडप के बीच अनेक नृपादि के उपस्थित रहने तथा उनके धनुर्भंग के लिए प्रयत्नशील होने की चर्चा की जाती है और तब कही, विश्वामित्र मुनि के आदेश पर, राम अपने मच-स्थान से उठते हैं तथा धनुष को 'अतिलाघव' उठा कर, लोगों को देखते ही देखते, उसे तोड़ भी देते हैं।^५ 'रामायण' में जहाँ इस पूरे प्रसंग को एक वृत्तांत के रूप में, बहुत कुछ स्वाभाविक ढंग से, कहा

^१ 'वाल्मीकीय रामायण' (बालकांड), ४९ सर्ग श्लोक १८।

^२ 'रघुवंश महाकाव्य' सर्ग ११ श्लोक ३४।

^३ 'पद्म पुराण' (पाताल खण्ड) अ० १६।

^४ 'आनन्द रामायण' (१, ३, १६)।

^५ 'वाल्मीकीय रामायण' (बालकांड) सर्ग ६६-७।

^६ 'राम चरित मानस' (बालकांड) दोहा २६१।

गया है वहाँ 'मानस' में उस पर एक अलौकिक दृश्य का-रंभ भी चढ़ा दिया गया है। धनुर्भंग-प्रसंग को अधिक महत्त्व प्रदान करने तथा राम की प्रतिष्ठा को एक नया जन-नामक के समक्ष प्रमाणित कराने की दृष्टि से मानसकार ने उसके साथ परशुराम एवं रामचन्द्र के मिलन की भी घटना को जोड़ दिया है। 'मानस' के अनुसार परशुराम धनुर्भंग की घटना के ठीक अनंतर ही वहाँ आ उपस्थित हो जाते हैं और लक्ष्मण के साथ बातचीत करके सब के सामने हास्यास्पद भी बनते हैं। किंतु 'रामायण' के अनुसार परशुराम तथा राम की भेट उस समय होती है जब राम-विवाह के अनंतर अयोध्या लौटने के मार्ग में रहते हैं। यहाँ परशुराम वे साथ लक्ष्मण का वार्त्तालाप नहीं होता और न लक्ष्मण उनके प्रति व्यंग्य भरी बातें ही करते हैं। परशुराम द्वारा 'वैष्णवधनु' की प्रशंसा की जाने पर उसे राम उनके हाथ से भट छीन लेते हैं और उस पर रोदा चढ़ा कर तथा उसे बाण से सज्जित कर क्रोध में परशुराम को धमकी देने लगते हैं।^१

गो० तुलसीदास ने जिस प्रकार फुलवारी-प्रसंग के दृश्य सीता एवं राम के पूर्वानुराग की सूचना दे दी है, राम एवं लक्ष्मण को जनकपुर की गलियों में धुमा कर उनके मौदर्य की व्याप्ति बढ़ा दी है तथा स्वयंवर के दृश्यो द्वारा राम के गौरव को अत्यंत उच्चकोटि तक पहुँचा दिया है उसी प्रकार उन्होंने 'मानस' के सीता एवं राम के विवाह-प्रसंग को भी पूरा विस्तार देकर उनके वैभवादि का परिचय कराया है। 'रामायण' के अनुसार जनकपुर के दून अयोध्या पहुँच कर वहाँ राजा दशरथ को पत्र देते हैं और उन्हें शीघ्र विवाहार्थ चलने का अनुरोध करते हैं, तथा राजा दशरथ कुछ परामर्श कर के तैयार होने लग जाते हैं। वे जनकपुर पहुँच कर वहाँ राजा जनक से उनका वश-परिचय सुनते हैं तथा वशिष्ठ के मुख से अपने वश का भी परिचय उन्हें दे देते हैं। फिर दोनों के ममान कुल सिद्ध हो जाने पर रामादि चारों भाइयों का विवाह सीता आदि चार कन्याओं के साथ सपन्न हो जाता है और बारात अयोध्या लौट आती है। 'रामायण' में ये सभी बातें एक सीधे-सादे ढंग से कह दी गई हैं और बारात के विवरण वा विवाह-विधियों के वर्णन में भी कोई

^१ 'बाल्मीकीय रामायण' (बालकांड) सर्ग ६७ श्लोक ४-८।

विस्तार नहीं है किन्तु 'मानस' में इस प्रसंग की प्रत्येक बात को राजसी मर्यादा एवं ठाट-बाट के अनुरूप चित्रित किया गया है। गो० तुलसीदास ने यहाँ पर न केवल विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं की ओर ध्यान दिया है अपितु उन्होंने उनके प्रत्येक अंश को सविवरण उदाहरण करने की चेष्टा की है। 'मानस' में बारात के लौटने पर भी बहुत-सी बातें अपने परम्परित रूप में प्रदर्शित की गई हैं, किन्तु 'रामायण' में उनका उल्लेख तक नहीं है।

'रामायण' और 'मानस' के 'अयोध्या कांडों' की कथा-वस्तु में कोई विशेष अंतर नहीं देख पड़ता है। उनका क्रम प्रायः एक ही प्रकार का है, केवल राम-कथा के पात्रों की मनोवृत्ति तथा उनके तदनुकूल कार्यों में उल्लेखनीय भेद पाया जाता है। 'रामायण' के दशरथ राम के प्रति पक्षपात एवं भरत की ओर से उदासीनता एक साधारण पिता की भाँति, प्रदर्शित करते हैं। राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने की इच्छा से उन्हें वे एकान्त में बुला कर कहते हैं, "हम तुम्हें कल ही युवराज बना देना चाहते हैं जिससे यह कार्य भरत के आने से पूर्व सम्पन्न हो जाय। नहीं तो उनके यहाँ रहने पर कदाचित् कोई विघ्न खड़ा हो जाय।"^१ भरत इसके पहले, 'बालकांड' की कथा के अनुसार, अपने ननिहाल भेज दिये गए रहते हैं।^२ 'मानस' के दशरथ का चित्रण इस रूप में नहीं है। वहाँ पर इस बात की ओर केवल मथरा सकें करती है जो, उसके कवि के अनुसार, अपनी मति फिर जाने के कारण, प्रत्येक बात को किसी न किसी विपरीत ढंग से मोचती तथा उसे प्रकट भी करती है। 'मानस' में वह कैकेयी से यहाँ तक कहती है कि "दशरथ ने भरत को ननिहाल, राम की माता कौशल्या के परामर्श एवं प्रेरणा से, भेज दिया है।"^३ 'रामायण' की मथरा की बुद्धि 'मानस' की भाँति, सरस्वती द्वारा भ्रष्ट करायी गई नहीं रहती, वह स्वभावतः कृटिल जान पड़ती है और अपने मच्चें हृदय से कैकेयी को बहकाने

^१ 'बालमोक्षोप रामायण' (अयोध्या कांड) सर्ग ४ श्लोक २४-५।

^२ वही, (बाल काण्ड) सर्ग ७७ श्लोक १६-९।

^३ 'राम चरित मानस' (अयोध्या कांड) दोहा १८।

मे प्रवृत्त होती है।^१ 'रामायण' के दशरथ को राम की उन्नति में पड़ने वाली बाधा इतनी अमह्य प्रतीत होती है कि वे कैकेयी के अपनी बात पर अड़े रहने पर भुँभला कर बोल उठते हैं, "यदि तू नहीं मानती तो देखो, मेरे मरने पर मेरे शरीर का स्पर्श न करना और न अपने पुत्र भरत को मेरी अन्त्येष्टि क्रिया करने देना।"^२ 'मानस' के दशरथ इस प्रकार की बातें न कर के अधिकतर भाग्यवाद का आश्रय लेते हैं और तदनुसार अनिष्ट की आशंका भी करते दीख पड़ते हैं। 'रामायण' के दशरथ राम को युवराज का पद प्रदान करने के लिए, इतने आतुर हैं कि वे कहते हैं, "मुझे स्त्रैण को कारागार में डालकर भी तुम राज्य करो।"^३

राजा दशरथ जब उक्त प्रकार से राम को अनुमति देते हैं उस समय लक्ष्मण भी वहाँ छिपे-छिपे पहुँच गए रहते हैं।^४ वहाँ से राम के फिर कौशल्या के यहाँ विदा माँगने जाने पर, लक्ष्मण बहुत उतावले हो उठते हैं और वे राम से कहते हैं, "राजा इस समय अपनी स्त्री कैकेयी के वश में होकर एक स्त्रैण एवं कामुक पुरुष की भाँति बातें करते हैं जो मुझे तनिक भी पसंद नहीं, मुझे आपका भी भाग्यवाद अच्छा नहीं लगता। मैं तो राजा को बंदी बना कर तथा भरत, शत्रुघ्न और उनके पक्षपातियों को, चाहे वे देवराज इंद्र ही क्यों न हों, उन्हें गणक्षेत्र में भूमिगायी बनाकर, मसार को यह दिखला देना चाहता हूँ कि जो कुछ है वह पारम्पर्य है, पौरुष के सामने भाग्य कुछ भी नहीं है।"^५ लक्ष्मण की यह मनोवृत्ति यहाँ 'राम चरित मानस' में नहीं मिलती। 'रामायण' में तो इस अवसर पर सीता द्वारा भी कुछ ऐसे वाक्य कहलाये गए हैं जो 'मानस' की सीता के लिए नितात असौभव हैं। राम जब सीता को अपने साथ ले जाने की अनिच्छा प्रकट करते हैं तो वे उनकी मानो भर्त्सना करती हुई कहने लगती हैं, "आप मुझे अपने साथ ले जाने में भयभीत होते हैं, अतः आप निश्चय ही आकार मात्र में पुरुष हैं और आपके तेज-प्रताप की प्रशंसा करना व्यर्थ है। यदि मेरे पिता को आपके इस चरित्र का पता होता तो

^१ वाल्मीकीय 'रामायण' (अयोध्या कांड) सर्ग ८ श्लोक ९।

^२ वही, सर्ग १४ श्लोक १६-७। ^३ वही, सर्ग ३४ श्लोक २६।

^४ वही, सर्ग १६ श्लोक २६। ^५ वही सर्ग २३ लोक।

आपको कभी वे अपना जामाता नहीं बनाते।” ‘मानस’ की सीता का इस अवसर पर, अपनी सास कौशल्या के निकट सकोच करते हुए, राम के प्रति वनगमन के लिए माग्रह अनुरोध करना और सहसा ‘अत्यन्त विकल’ भी हो जाना उसके नितान्त विरुद्ध भाव का प्रदर्शन करता है जो गो० तुलसीदास द्वारा अनुमोदित आर्य-संस्कृति के आदर्शों के सर्वथा अनुकूल है।

राम के वनगमन-समय की घटनाएँ दोनों रचनाओं में प्रायः एक-सी ही दीख पड़ती हैं। केवल कुछ ही बातों में अंतर है। ‘रामायण’ में राम के जाने समय उनके पीछे पुत्रजनों, रानियों तथा राजा के दौड़ पड़ने की चर्चा की गई है। उन्हें आते देख राम सुमत में रथ को शीघ्र हाकने को कहते हैं। राजा दशरथ पुकार-पुकार कर कहते हैं, ‘सुमत, तनिक रथ को रोक दो’, किन्तु राम उधर कहते हैं, ‘नहीं, रथ को शीघ्र चलाना चाहिए’ और यही किया जाता है। राजा से मन्त्रिगण कहते हैं, ‘राजन् जिसके लिए यह इच्छा की जाय कि वह पुनः शीघ्र लौट आयें, उसके पीछे दूर तक नहीं जाना चाहिए’ और तब वे खड़े होते हैं। वे फिर कंकयी को कोसते हुए, लौट कर कौशल्या के भवन में चले जाते हैं और सुमत के समझाने-बुझाने पर स्त्रियाँ भी लौट आती हैं। ‘मानस’ में इस प्रकार का दृश्य उपस्थित नहीं किया जाता और न किसी व्यक्ति विशेष के लिए राम के पीछे दौड़ पड़ने का विवरण दिया जाता है। इसका कवि सबके विषय में एक ही साथ कह डालता है—

बालक वृद्ध विहाय गृह, लगे लोग सब साथ।^१

ये लोग अयोध्या-निवासी प्रजावर्ग के जान पड़ते हैं और इन्हें सप्रेम बाते कर के स्वयं राम लौटाने के प्रयत्न करते हैं। किन्तु ये लोग उनकी एक नहीं सुनते। अंत में जब सभी तमसा तीर पुर निद्रित दशा में रहते हैं राम सुमत को, आधी रात के

^१ ‘वाल्मीकीय रामायण’ सर्ग ३० श्लोक १-४।

^२ ‘राम चरित मानस’ (अयोध्या कांड) दोहा ६८।

^३ ‘वाल्मीकीय रामायण’ (अयोध्या कांड)।

^४ ‘राम चरित मानस’ (अयोध्या कांड), दोहा ८४।

समय, 'खोज दुराकर' रथ हाँकने का आदेश देते हैं और इन्हें छोड़ देते हैं। 'मानस' में राम का इसके अनंतर शृंगवेर पहुँचना, वहाँ गया स्नान करना, केवट का उनके पैर धोने का हठ करना, आगे भारद्वाज के शिष्यों का राम को मार्ग दिखलाना, यमुना के उस पार पहुँचने पर राम के साथ किसी तापस का भेट करना आदि बातें आती हैं जो 'रामायण' में इस ढंग से नहीं हैं। 'रामायण' में यह भी नहीं आता कि वाल्मीकि मुनि ने राम के रहने के लिए विविध 'ठाँवों' की ओर निर्देश किया था। इसके विपरीत 'रामायण' में जो शोकाकुल राजा दशरथ द्वारा मुनि कुमार के वध का विस्तृत विवरण दिलाया गया है वह 'मानस' की केवल एक ही अर्द्धाली में बतला दिया गया है। जैमिं,

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्याहिं सब कथ सुनाई।^१

'मानस' में भरत का राम से भेट करने के लिए जाना तथा चित्रकूट में उन दोनों का विविध प्रकार में वार्त्तालाप करना विस्तार के साथ आया है। इस रचना के कवि ने राम एवं भरत के मिलन का वर्णन एक निराले ढंग में किया है और उसे वस्तुतः 'भरत चरित' के रूप में निर्मित कर दिया है। 'रामायण' में यह प्रसंग उतने उत्कृष्ट रूप में नहीं पाया जाता और न वहाँ हमें यह उतना आकृष्ट करता है। वहाँ यह केवल एक वृत्तांत-सा हो गया है। 'रामायण' में इस घटना के ही समय राम के साथ जाबालि की बातचीत करायी गई है जो राम को उनके मृत्यु-पालन से डिगाना चाहता है।^२ 'मानस' में इस प्रसंग को स्थान नहीं दिया गया है और न इसकी ओर कोई संकेत ही किया गया है। भरत-मिलन के अनंतर जब सभी अयोध्यावासी घर लौट जाते हैं और भरत इधर नदिग्राम में नियमित रूप में रह कर राज्य-भार संभालने लगते हैं तो राम उधर अत्रि के आश्रम में जाते हैं। 'रामायण' में अत्रि के आश्रम में राम के पहुँचने की बात उसके 'अयोध्या कांड' में ही कह दी गई है,^३ किंतु 'मानस'

^१ 'राम चरित मानस' दोहा १५५।

^२ 'वाल्मीकीय रामायण' (अयोध्या कांड) सर्ग १०८-९।

^३ वही, (अयोध्या काण्ड), सर्ग ११०-२।

मे यह 'अरण्यकांड' मे आती है। 'रामायण' की किसी काक द्वारा सीता को कष्ट पहुँचाने की कथा भी आती है। किंतु गो० तुलसीदास उसे इंद्र पुत्र जयत की कथा का रूप दे कर उसका 'सीता चरण चोंच हति' भागने का वृत्तात 'अरण्य कांड' के आरंभ मे देते हैं। 'रामायण' मे जयत की नीचता उसके सीता की छाती मे चोच मारने और उन्हे अपने चंगुलो द्वारा भी कष्ट पहुँचाने की घटना द्वारा दर्शायी गई है जो 'मानस' मे भिन्न प्रकार की है।

'रामायण' का 'अरण्य कांड' राम के दंडक वन मे प्रवेश करने मे आरंभ होता है। वे वहाँ के अनेक तपस्वियों मे भेट करते हैं। 'रामायण' में उन ऋषियों के आश्र-मादि तथा विराध राक्षस के वध का विस्तृत वृत्तात मिलता है। विराध पहले आकर सीता को गोदी मे उठा ले भागता है और फिर लक्ष्मण एवं राम दोनो भाई उसे मार डालने के लिए विविध प्रयत्न करते और हैरान होते हैं। एक बार वह उन दोनो भाइयो को भी उठा ले भागता है। अंत मे वे लोग उसे मारने मे सफल होते हैं और उसके मृत शरीर को पृथ्वी खोद कर गाड़ देते हैं।^१ 'मानस' मे इस विषय पर इतना ही लिखा है—

मिला असुर विराध मग जाता। आवत ही रघुवीर निपाता।

तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा।

शूर्पणखा वाले प्रसंग मे जहाँ 'रामायण' के रचयिता ने उसे राम के पास, अपने स्वाभाविक भयानक वेश मे ही, आने दिया है वहाँ 'मानस' में वह 'रुचिर रूप' धारण कर के पहुँचती है और उसके सामने दोनो भाई आपस मे वैसी दिल्लगी भी नहीं करते जैसी 'रामायण' मे दीख पड़ती है। इसी प्रकार शूर्पणखा द्वारा उसकी कुरूपता का कारण जान कर खर ने पहले, 'रामायण' के अनुसार, केवल १८ राक्षसों को ही राम के विरुद्ध भेजा है^२ और उनके निहत हो जाने फिर वह १४ महत्त राक्षसों के साथ स्वयं आ कर तुमुल युद्ध करता है,^३ किंतु 'मानस' मे इस

^१ 'वाल्मीकीय रामायण' (सुन्दर कांड) सर्ग ३८। ^२ वही (अरण्यकांड) सर्ग १-४।

^३ 'राम चरित' मानस (अरण्यकांड) दोहा ७।

^४ 'वाल्मीकीय 'रामायण' (अ १ का० १- सर्ग १९ श्लोक २-५।

^५ बन्नी सर्ग २२-३०।

प्रकार की चर्चा नहीं पाई जाती। इसके सिवाय 'रामायण' का रावण खर-दूषणादि के बध का समाचार पहले अकम्पन से सुनता है, और मारीच के पांस जा कर उसके समझाने-बुझाने पर लोट आता है^१। उसके अनंतर इन बातों का पूरा पता उसे शूर्पणखा से चलता है और इसके धिक्कारने पर वह फिर मारीच के यहाँ जाता है। परंतु 'मानस' में इन प्रकार का वर्णन नहीं आता और न इन प्रसंग में अकम्पन का नाम तक लिया जाता है।

'रामायण' में रावण एवं मारीच का संवाद कुछ विस्तार के साथ दिया गया है और उसमें लक्ष्मण का मारीच के कपट वेष को पहचान जाना भी बतलाया गया है। परन्तु 'मानस' में न तो उस संवाद का उतना विस्तार है और न मारीच के कपट मृग वेष को कोई पहचान ही पाता है। 'मानस' में सीता के अग्नि प्रवेश की चर्चा अवश्य की गई है जिसका 'रामायण' में संकेत तक नहीं है और जान पड़ता है कि गो० तुलसीदास ने इसका वर्णन मर्यादा-रक्षा की भावना से किया है। इस मर्यादा-रक्षा की भावना का एक उदाहरण हम बात में भी मिलता है कि 'रामायण' के रचयिता ने जहाँ सीता द्वारा लक्ष्मण को दुःशील, कठोर-हृदय, कुल-कलक, दृष्ट, भरत का गुप्तचर तथा उन्हें स्वयं हथियान की अभिलाषा रखने वाला कहलाया है, वहाँ गो० तुलसीदास केवल इतना ही संकेत कर के छोड़ देते हैं, 'मरम वचन जब सीता बोला' और इसका स्पष्टीकरण नहीं करते। 'रामायण' में शबरी-प्रसंग भी विस्तार के साथ दिया गया है और उसमें शबरी द्वारा कहा गया अपना वृत्तान्त भी सम्मिलित है। किंतु 'मानस' की शबरी राम एवं लक्ष्मण से भलीभाँति परिचित प्रतीत होती है और वह अपने दैन्यभाव का प्रदर्शन कर राम से नवधा भक्ति का वर्णन सुनती है। 'रामायण' के अनुसार वह, अंत में, जलती हुई आग के मध्य कूद पड़ती है और फिर अपने सुन्दर ज्वलत शरीर में बाहर निकल कर स्वर्ग की ओर प्रयाण करती है,^२ किंतु 'मानस' में उसके विषय में केवल इतना ही कहा गया है—

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नाँह फिरे।^३

^१ 'बालमोक्षय रामायण' सर्ग ३१। ^२ वही, (अरण्य काण्ड) सर्ग ४५।

^३ वही, सर्ग ७४। ^४ 'राम चरित मानस' (अरण्य कांड) बोहा ३०।

शबरी-प्रसंग तथा इसके पहले वाले कबंध-प्रसंग के भी पहले 'रामायण' में किसी एक अधोमुखी भयकर राक्षसी की भी चर्चा की गई मिलती है जो शर्पणखा की ही भाँति राम एवं लक्ष्मण से 'रमण' करने का प्रस्ताव करती है और जिसके लक्ष्मण नाक, कान एवं कुचो तक को काट लेते हैं। वह फिर चिल्लाती हुई जिधर से आयी रहती है उधर भाग निकलती है और उसका पता नहीं चलता। 'मानस' में उसकी ओर भी कोई संकेत नहीं किया गया है।

'रामायण' के 'किष्किन्धा काण्ड' में हनुमान् राम के निकट किसी एक भिक्षुक के वेष में आते हैं, न कि 'मानस' की भाँति बटु के रूप में। वहाँ पर ये आते ही शूद्र एवं मधुर मस्कृत शब्दों में बातचीत आरम्भ करने हैं जिसमें राम एवं लक्ष्मण बहुत प्रभावित होते हैं।^१ परंतु 'मानस' के हनुमान् में कोई ऐसी विशेषता नहीं दीख पती और ये उन दोनों भाइयों का कुछ परिचय पाते ही 'प्रभ' पहिचान परेड गृहि चरणा की स्थिति में आ जाते हैं तथा फिर धैर्य धारण कर के उनकी स्तुति भी करने लग जाते हैं। 'रामायण' के वालि प्रसंग में भी इसी प्रकार कुछ ऐसी बात आती है जो 'मानस' में किये गए वर्णन में भिन्न दीख पड़ती है और जो इसी कारण, उल्लेखनीय है। 'रामायण' के वालि का राम के प्रति कथन उसके क्षुब्ध हृदय के मृच्छे उद्गार में लगते हैं जहाँ 'मानस' का वालि शीघ्र ही एक भक्त की-सी भाषा में बोलने लगता है। 'रामायण' का वालि न तो राम की कोई स्तुति करता है और न उन्हें अपने पुत्र अगद को सौंपता है। वह अगद को अपने भाई सुग्रीव की ही शरण में रख छोड़ता है। 'रामायण' में वालि की पत्नी तारा का विलाप 'मानस' से कुछ अधिक विस्तार के साथ मिलता है। 'रामायण' की तारा राम से यहाँ तक प्रस्ताव करती है कि आपने जिस बाण से मेरे पति का वध किया है उसी से मुझे भी मार डालियें जिससे मैं उनके यहाँ चली जाऊँ और उन्हें आपकी भाँति पत्नी-विरह में न पड़ने दूँ। वह बहुत-सी जान की बातें भी करती है और राम को समझाती है कि ऐसा करने में आपको स्त्री वध का पाप नहीं लग सकता। परंतु 'मानस' के रचयिता ने तारा को माया-मोह में पड़ी हुई-सी चित्रित किया है और उसके प्रति राम में

^१ 'बाल्मीकीय रामायण' (किष्किन्धा काण्ड), सर्ग ३।

ही ज्ञान की बातें उन्होंने कहलायी हैं।^१ 'मानस' के राम ने 'दीन्ह ग्यान हर लीन्ही माया।'^२

'रामायण' के 'सुन्दरकांड' में हनुमान् लंका में पहुँच कर पहले रावण के प्रत्येक भवन में सीता को ढूँढ़ते हैं और फिर उसके गयनागार में भी जाते हैं और इस प्रकार का प्रयत्न वे एक से अधिक बार तक करते हुए देख सकते हैं। इसका वर्णन वहाँ बड़े विस्तार के साथ आया है। 'मानस' के रचयिता ने उनके किये गए प्रयत्नों तथा उन भवनों की विचित्रता का भी वर्णन केवल दो तीन अर्द्धालियों में ही कर के छोड़ दिया है। 'रामायण' के हनुमान् वहाँ सीता को न पाकर अनेक प्रकार का सकल्प-विकल्प करने लगते हैं और तब अशोक वाटिका की ओर स्वयं जा निकलते हैं।^३ परन्तु 'मानस' के हनुमान् को रावण-मन्दिर से निकलते ही एक, 'हरि मन्दिर' के ढग से निर्मित किया हुआ, भवन दीख पड़ता है जहाँ वे विभीषण से भेंट करते हैं और विभीषण ही उन्हें सीता का पता तथा उन्हें पाने की 'सकल जुगुति' तक बतलाते हैं।^४ 'मानस' में विभीषण और हनुमान् सर्वप्रथम रावण के दरबार में मिलते हैं। इसके सिवाय 'रामायण' के हनुमान् सीता के निकट जा कर उनसे राम के शारीरिक चिह्नों का पहले परिचय देते हैं और फिर सुग्रीव तथा अन्य वानरों के साथ राम की मैत्री की कथा कहते हुए उन्हें मुद्रिका देते हैं,^५ किन्तु 'मानस' के अनुसार वे पहले ही मुद्रिका को वृक्ष से गिरा देते हैं।^६ 'रामायण' के अनुसार हनुमान् सीता की कोई अनुमति ले कर फलादि खाने नहीं जाते; वे ऐसा साभिप्राय करते हैं। वे यह सोच कर वाटिका-विध्वंस भी करते हैं कि इसके अनंतर वे रावण के दरबार तक जाने को बाध्य किये जायेंगे जहाँ पर उससे वार्त्तालाप कर के वे वहाँ के रहस्यों से पूर्ण-परिचित हो जायेंगे और इस प्रकार उनके सम-कार्य में विशेष सुविधा मिल सकेगी।^७ 'रामायण' का 'सुन्दर कांड' हनुमान् आदि वानर-पूतों के किष्किधा लौट

^१ 'वाल्मीकीय रामायण' (किष्किन्धा काण्ड) सर्ग १७, २२-४।

^२ वही, (सुन्दर कांड) सर्ग १३-५।

^३ 'राम चरित मानस' (सुन्दर काण्ड), दोहा ६-८।

^४ 'वाल्मीकीय रामायण' (सुन्दर काण्ड) सर्ग ३६। ^५ वही सर्ग ४१।

आने तथा उनके राम के प्रति सीता की खोज का विवरण देने तक ही समाप्त हो जाता है। किंतु 'मानस' में उसके उपरांत, रावण द्वारा विभीषण के ऊपर पाद-प्रहार किये जाने तथा विभीषण के 'राम के पक्ष में' जा मिलने आदि की भी कथा मिलती है जो 'रामायण' के 'युद्धकाण्ड' के विषय है।

'रामायण' के 'युद्ध काण्ड' वा 'लंका कांड' में विभीषण को रावण पैर से नहीं मारता। उसे वह केवल कटु वचन कहता है जिससे रुष्ट हो कर विभीषण चार मंत्रियों के साथ राम से आ कर मिल जाता है और उन्हें लंका-विध्वंस के निमित्त की जाने वाली योजनाओं में परामर्श देता है।^१ 'लंका कांड' का अंगद-दूत-प्रसंग भी दोनों रचनाओं में यत्किंचित् परिवर्तन के साथ दिया गया पाया जाता है। रावण एवं अंगद का वार्त्तालाप दोनों में एक ही प्रकार से नहीं लिखा गया है और न दोनों में उस अवसर की घटनाएँ ही एक समान दीखती हैं। 'रामायण' का वार्त्तालाप अधिक नहीं है। इसके सिवाय अंगद को वहाँ चार राक्षस बाँधने को उद्यत होते हैं जिनसे बच कर वे गढ़ के शिखर पर जा चढ़ते हैं और उसका एक अंश टूट जाता है। किंतु 'मानस' के अनुसार वे रावण की सभा में अपने पैर को रोप देते हैं और रावण के किरीट फेंकते तथा उसे उपदेश भी देते हैं। 'मानस' एवं 'रामायण' के युद्ध-वर्णन प्रायः एक ही प्रकार की घटनाओं से सबंध रखते हैं। फिर भी उनमें कहीं-कहीं अंतर भी पाया जाता है। मेघनाद जिस समय राम एवं लक्ष्मण को नाग-फाँस द्वारा बाँध देता है उस समय रावण की आज्ञा से त्रिजटादि सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ा कर उन्हें युद्धस्थल के दृश्य दिखलाने ले जाती है और सीता दोनों भाइयों को मूर्च्छित देख कर विलाप करने लग जाती है।^२ 'मानस' में यह प्रसंग नहीं है। 'मानस' में कुंभकर्ण का वध जहाँ राम के हाथों कराया गया है वहाँ 'रामायण' के अनुसार यह कार्य लक्ष्मण करते हैं। 'रामायण' में माया की सीता का मेघनाद द्वारा खड्ग से दो टुकड़े कर दिया जाना तथा यह देख कर रामचंद्र का विलाप करने

^१ 'वाल्मीकीय रामायण' (युद्ध काण्ड) सर्ग १६।

^२ वही, सर्ग ४१, श्लोक ८४-९०।

^३ वही, सर्ग ७४ श्लोक ६-२४।

लगा लिखा है' जो 'मानस' में नहीं है। 'रामायण' में युद्धों का वर्णन अत्यंत सजीव और स्वाभाविक हुआ है और वह 'मानस' की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेभावोत्पादक भी है। युद्धांत हो जाने पर राम पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौट आते हैं, भरतादि से मिलते हैं और उनका राज्याभिषेक भी इसी कांड के अंतिम भाग में हो जाता है। राज्याभिषेक के अनंतर इस कांड में राम-राज्य का भी वर्णन किया गया है तथा 'रामायण' का माहात्म्य तक बतला दिया गया है और इसी बात के आधार पर कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि उस ग्रंथ का अंतिम कांड, कदाचित्, 'युद्धकांड' ही रहा होगा। 'उत्तर कांड' पीछे से जोड़ दिया गया है।^१

'रामायण' के 'उत्तर कांड' में राम-कथा का वस्तुतः कोई भी ऐसा अंश नहीं आता जिसे हम उसका आवश्यक अंग मान सकते हैं। इसके प्रमुख प्रसंगों में शम्बुक वध, रावण चरित, हनुमान् की जन्मकथा, सीता-त्याग, लव-कुश चरित एवं शत्रुघ्न द्वारा लवणामुर का वध है जिनमें से कोई भी 'मानस' में नहीं आया है। इसके विपरीत 'मानस' (उत्तर कांड) के आरंभ में राम के भरतादि के साथ मिलन का वृत्तांत आता है और उसके उपरान्त राम के राज्याभिषेक तथा उनके प्रति की गई विविध स्तुतियों का वर्णन पाया जाता है जो 'रामायण' के 'लकाकांड' के ही विषय कहे जा सकते हैं। इसमें किया गया वानरगति की विदाई का वर्णन भी 'रामायण' के 'लका कांड' की ही घटना का परिचय देता है। इसका रामराज्य-वर्णन भी उसी प्रकार का है। 'रामायण' के रावण चरित का एक संक्षिप्त रूप 'मानस' के 'बालकांड' में ही दिया गया है जिसकी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। उसके लव-कुश चरित का 'मानस' में केवल एक संकेत मात्र दिया है और कहा है—

बुढ़ सुत सुंदर सोत। जाए। लव कुस वेद पुरानन्हि गए।

बोड विजई विनई गुन मन्दिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहु अति सुन्दर।^२

^१ 'बाल्मीकीय रामायण' सर्ग ८१ और ८३।

^२ वही, सर्ग १३० तथा १३१ श्लोक ९५-१२१।

^३ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भा० १७ पृ० २५९-८९।

^४ 'राम चरित मानस' (उत्तर कांड) दोहा २५।

‘रामायण’ के ‘उत्तर कांड’ में विविध छोटे-बड़े उपाख्यानो का भी वर्णन मिलता है जहाँ ‘मानस’ में केवल भुशुडि का आत्मचरित पाया जाता है। राम के डहलीला-मवरण का वृत्तान्त भी इन दोनों रचनाओं में भिन्न-भिन्न ढंगों से दिया गया है। ‘रामायण’ के अनुसार वे अंत में अयोध्या में निकल कर सरयू नदी की ओर बढ़ते हैं और उनके साथ नगर के सभी चल देते हैं। नदी तट पर आकर फिर वे उसके जल में प्रवेश करते हैं। उस समय देवताओं को साथ लिये हुए ब्रह्मा वहाँ आकाश में आ जाते हैं और वही से कहते हैं कि ‘हे राम तुम चाहे जिस रूप में हो लीन हो सकते हो’ जिसके अनुसार वे ‘वैष्णव तेज’ में ‘मशगीर’ और ‘महानुज’ प्रवेश कर जाते हैं—

पितामह वचः श्रुत्वा, विनिश्चित्य महामतिः।

विवेश वैष्णवं तेजः, सशरीरः सहानुजः॥१२॥^१

परंतु ‘मानस’ में इस प्रकार का कोई दृश्य नहीं उपस्थित किया जाता और न राम कहीं लीन होते देख पड़ते हैं। यहाँ वे एक दिन हनुमान् आदि के साथ नगर के बाहर जाते हैं, यथोचित दान देते हैं और फिर एक ‘मीतल अंबराई’ में चले जाते हैं। अंबराई के भीतर भरत उनके बैठने के लिए अपना कोई ‘बसन’ बिछा देते हैं और उनके सभी भाई तथा हनुमान् उनकी सेवा में लग जाते हैं। और फिर—

तेहि अवसर मुनि नारद आए करतल वीन।

गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन॥^२

इस प्रकार ‘मानस’ में राम का किसी प्रकार से भी अर्तहित होना नहीं बतलाया गया है प्रत्युत राम-कथा को दृष्टान्त की जगह सुखात ही रखा गया है।

दोनों रचनाओं में दीख पड़ने वाले राम-कथा संबंधी अंतर का प्रत्यक्ष कारण यही हो सकता है कि गो० तुलसीदास ने अपने ‘मानस’ की रचना करते समय, इस विषय में केवल वाल्मीकीय ‘रामायण’ का ही अनुकरण नहीं किया है, अपितु उन्होंने अन्य ग्रंथों से भी सहायता ली है और अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के अनुसार,

^१ ‘वाल्मीकीय रामायण’, ‘उत्तर काण्ड’) सर्ग १०९-१०।

^२ ‘राम चरित मानस’ (उत्तर काण्ड) दोहा ५०-१।

उन्होंने कई स्थलों पर फेरफार भी कर दिया है। ये अपनी वर्णन-शैली में भी अन्य मार्ग ग्रहण करते हैं। वाल्मीकि मुनि जहाँ राम-कथा के विविध प्रसंगों का वर्णन, स्पष्ट विवरण मात्र देते हुए करते जाते हैं वहाँ गो० तुलसीदास इस बात की मावधानी रखते भी प्रतीत होते हैं कि किसी घटना विशेष द्वारा उनके इष्टदेव राम अथवा उनके भक्तों पर किसी प्रकार का दोषारोपण न हो। ये राम के चरित में अलौकिकता का समावेश करने के लिए उनके अवतार धारण करने के कारणों को पहले प्रस्तावना के रूप में दे देते हैं और उसके उपरांत उनके जन्म, बाल-लीला तथा विवाहादि तक के प्रसंगों में कुछ न कुछ अपूर्णता लाते हुए आगे बढ़ते हैं। इनके 'मानस' ग्रंथ के 'अरण्यकांड', 'किष्किंधा कांड', 'सुंदर कांड' तथा 'लंका कांड' के अंतर्गत इस प्रकार की बातें प्रचुर मात्रा में दीख पड़ती हैं। इसके विपरीत ये ही कांड ऐसे हैं जिनमें वाल्मीकि मुनि ने राम को एक तेजस्वी और शक्तिशाली योद्धा के रूप में चित्रित किया है और इनके अनेक स्थलों पर वीर रस का वर्णन बड़ी ओजपूर्ण भाषा में किया है। 'रामायण' के ये सभी चित्र अत्यंत स्पष्ट एवं निरावृत हैं। परंतु गो० तुलसीदास ने राम को ब्रह्म तथा उनके चरित को लीला सिद्ध करने की चेष्टा में उनके शौर्य को समुचित महत्त्व देना स्वीकार नहीं किया है, और जहाँ कहीं इस ओर इन्होंने कुछ ध्यान दिया है वहाँ पर भी उस पर 'शील' का अनावश्यक रंग चढ़ा कर उन्होंने अपने वर्णन को एक विचित्र और अस्वाभाविक रूप दे डाला है। इनके राम राक्षसों के साथ वीरतापूर्वक अवश्य लड़ते हैं और अपने युद्ध कौशल द्वारा उनके प्रयत्नों को व्यर्थ भी कर देते हैं, किंतु उन्हें मार कर वे 'निज धाम' पठाना भी नहीं भूलते। गो० तुलसीदास ने राम की पत्नी सीता को भी 'उद्भवस्थिति सहारकारिणी' जगज्जननी के रूप में चित्रित किया है जिस कारण ये उनके रावण-द्वारा अपहरण किये जाने वाली घटना के पहले ही उन्हें अग्नि प्रवेश की युक्ति से अंतर्हित करा देते हैं और उनसे अपनी जगह 'प्रतिबिंब' रखा लेते हैं।^१ इनके प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में भी हमें श्लिष्टता और स्वाभाविकता के स्थान पर आदर्श निरूपण तथा धर्मोपदेश का ही प्रयत्न लक्षित होता है।

^१. 'राम चरित मानस' (अरण्य कांड), दोहा १८।

(३) 'राम चरित मानस' और 'अध्यात्म रामायण'—कथा-वस्तु के अनुसार 'मानस' का अध्ययन करते समय जिस प्रकार वाल्मीकीय 'रामायण' का स्मरण स्वभावतः हो जाता है उसी प्रकार हमारा ध्यान 'अध्यात्म रामायण' की ओर भी आकृष्ट हो जाता है जब हम इसे भक्ति के विचार से पढ़ते हैं। मानसकार न केवल एक भक्त कवि थे अपितु वे उस विचारधारा से भी अधिक प्रभावित थे जो 'अध्यात्म रामायण' में सर्वत्र प्रवाहित होती दीखती है। वेदांत दर्शन के आधार पर राम भक्ति का प्रतिपादन तथा ज्ञान एवं भक्ति के बीच पूर्ण सामंजस्य की स्थापना गो० तुलसीदास का भी मुख्य लक्ष्य है। इस बात का महत्त्व इन दोनों रचनाओं में प्रायः एक ही समान प्रदर्शित किया गया है और दोनों इस प्रकार अध्यात्म ज्ञान के ही ग्रथ बन गए हैं। अध्यात्म 'रामायण' का आरंभ पार्वती के इस प्रश्न से होता है—“कुछ लोगो का कहना है कि परब्रह्म होने पर भी राम अपनी माया के कारण आत्मस्वरूप से अग्रचित थे और वशिष्ठादि के उपदेशों द्वारा उन्हें आत्मतत्त्व का बोध हुआ। अतः मैं पूछती हूँ कि यदि उन्हें आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं था और वे सर्वसाधारण की भाँति अपनी पत्नी सीता के लिए विलाप करते थे तो उनका भजन क्यों किया जाय? मेरा संदेह दूर कोजिए।”^१ 'मानस' में पार्वती का यही प्रश्न कुछ अधिक सुंदर एवं सुव्यवस्थित ढंग से किया गया मिलता है। शिव ने 'अध्यात्म रामायण' में इस प्रश्न का उत्तर देते समय बतलाया है कि इसका पूर्ण समाधान उस 'सीताराम मरुत्सूनु संवाद' से होता है जो अयोध्या में रामाभिषेक के अनंतर सीताराम एवं हनुमान् के बीच हुआ था और ये उसे 'श्रीरामहृदय' का नाम देते हुए उसे समस्त वेदांत का सार संग्रह भी ठहराते हैं। शिव ने पार्वती के प्रति पहले उसका संक्षिप्त वर्णन किया है और कहा है कि इसे भक्तिपूर्वक पढ़ने मात्र से भी मुक्ति मिल सकती है।^२ सारा 'अध्यात्म रामायण', वस्तुतः उस राम-हृदय का ही एक विस्तृत रूप है जिसके अंतर्गत राम कथा की एक रूपरेखा का भी समावेश हो जाता है। फिर भी 'अध्यात्म' को हम 'मानस' की भाँति 'महेश रचित' नहीं कह सकते क्योंकि शिव ने

^१ 'अध्यात्म रामायण' (बालकांड), सर्ग १ श्लोक १३-५।

^२ वही, श्लोक ५४।

इसमें स्वयं कह दिया है कि मैंने इसकी राम-कथा को राम से ही पहले सुना था। 'अध्यात्म' के अंतर्गत चार पृथक् सवालों की भी वैसी योजना नहीं पायी जाती जैसी 'मानस' में दीख पड़ती है। इसके सिवाय राम को 'अध्यात्म' में जहाँ विष्णु का अवतार माना गया है वहाँ 'मानस' में उन्हें 'विधि हरि संभु नचावनि हारे' कहकर उन्हें परब्रह्मस्वरूप तक मान लिया गया है।

'मानस' एवं 'अध्यात्म' के रचयिताओं ने राम-कथा के लिए 'रामायण' को ही अपना मूल आधार स्वीकार किया है और उसे प्रायः एक ही रूप भी दिया है। फिर भी मानसकार ने 'अध्यात्म' की राम-कथा में कहीं-कहीं पर कुछ फेरफार किया है और कई स्थलों पर अपनी रचना में नवीन प्रसंगों को भी स्थान दे दिया है। अहल्या वाले प्रसंग में इन्होंने राम एवं अहल्या की भेंट के स्थान को, 'रामायण' की भाँति गंगा के तट से उत्तर न बतलाकर, 'अध्यात्म' के अनुसार गंगा के दक्षिण की ओर ही कहीं ठहराने का संकेत दिया है। किंतु अहल्या को जहाँ 'अध्यात्म' में गौतम के शाप से केवल 'शिला पर' निराहार बैठी हुई बतलाया गया था^१ वहाँ इन्होंने उसे 'उपलदेह' भी धारण करा दिया है। 'अध्यात्म' के अनुसार राम ने उस 'शिला' को अपने पैर से छूकर अहल्या को देखा और उसे, अपना नाम लेकर परिचय देते हुए, भुक् कर प्रणाम किया।^२ किंतु 'मानस' में कहा गया है कि राम के 'पदपावन' द्वारा स्पर्श किये जाते ही वह उठ खड़ी हो गई और उसने उन्हें हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करना आरंभ कर दिया।^३ 'अध्यात्म' के अनुसार अहल्या राम को देखते ही अत्यंत प्रसन्न हो जाती है और उनका विधिवत् पूजन कर उन्हें दंडवत करती तथा उनकी स्तुति करती है। 'अध्यात्म' वाली यह स्तुति 'मानस' की स्तुति से बड़ी है और यह उसके १८ श्लोकों तक में आती है तथा उसमें इसका

^१ 'अध्यात्म रामायण' सर्ग २ श्लोक ४।

^२ वही, (बालकांड) सर्ग ५ श्लोक २७-८।

^३ वही, श्लोक ३७।

^४ 'राम चरित मानस' (बालकांड), बोहा २११।

माहात्म्य भी दिया गया है।^१ इसी प्रकार 'अध्यात्म' में जहाँ राम एवं परशुराम की भेंट के प्रसंग को, 'रामायण' की भाँति, राम के विवाह के अनंतर तथा उनकी वारात के अयोध्या लौटते समय, दिया गया है वहाँ 'मानस' में उसे धन्वर्भग के ही अवसर पर उसके ठीक पीछे ही रख दिया गया है।

'अध्यात्म' का 'अयोध्या कांड' ब्रह्मा द्वारा राम के पास भेजे गए नारद की राम के साथ बातचीत से आरंभ होता है जिसमें राम स्पष्ट कहते हैं कि मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरा करूँगा। रावण का वध करने की मैं दण्डकारण्य जाऊँगा और वहाँ चौदह वर्ष मुनिवेष धारण करूँगा। वे उस 'दुष्ट' को सीताहरण के व्याज से मकुटुम्ब नष्ट कर देने की भी चर्चा करते हैं।^२ किंतु इस बात को वे किसी से प्रकट नहीं करते और दूसरे दिन, राज्याभिषेक की तैयारी होने लगने तथा उसके लिए वशिष्ठ द्वारा उपसवासादि के लिए कहे जाने पर भी, वे उसे गुप्त रखते हैं। 'मानस' में नारद के साथ राम की उक्त बातचीत का कोई उल्लेख नहीं आता और न राम को उक्त प्रकार से किसी बात के छिपाने की आवश्यकता ही पड़ती है। इसकी यहाँ 'अध्यात्म' की कथा से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होती है और इस पर उसकी भाँति भक्तिवाद का उतना गहरा रंग चढ़ा भी नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार 'अध्यात्म' से पता चलता है कि जिस समय राम कौशल्या से बन जाने की अनुमति ले गए उस समय उनके साथ लक्ष्मण भी थे और लक्ष्मण ने उन दोनों के समक्ष कहा कि मैं भ्रान्तचित्त एवं कामुक राजा दशरथ को बाँधकर भरत के सहायकों को भी मार डालूँगा।^३ राम इसके अनंतर सीता को समझाने उनके महल में पहुँचे और सीता ने उनसे अन्य बातों के साथ यह भी कहा कि "आपने बहुत-से ब्राह्मणों के मुख से अनेक रामायणें सुनी होंगी, किंतु क्या किसी में भी ऐसा आता है कि सीता के बिना ही राम बन गये थे? अतः मैं आपके साथ अवश्य चलूँगी।"^४ परंतु 'मानस'

^१ 'अध्यात्म रामायण' (बालकांड) सर्ग ५ श्लोक ४३-६५।

^२ वही, (अयोध्या कांड) सर्ग १ श्लोक ३६-९।

^३ वही, (अयोध्या कांड), सर्ग ४ श्लोक १५।

^४ वही, श्लोक ७७-८।

के अनुसार कोशव्यास के पास राम स्वयं अकेले ही जाते हैं, वहीं फिर सीता भी पहुँच जाती है और लक्ष्मण राम से इसके पीछे मिलते हैं। 'मानस' में लक्ष्मण अथवा सीता द्वारा राम के प्रति वे बातें भी नहीं कहलायी गई हैं जिनकी चर्चा अभी की गई है। 'अध्यात्म' में राम के साथ अधि मुनि के मिलने का प्रसंग 'रामायण' की भाँति 'अयोध्या कांड' के अंत में ही आ जाता है जो 'मानस' के 'अरण्य कांड' में है।

'अरण्य कांड' के प्रारंभिक भाग में जो 'अध्यात्म' की राम-कथा आती है उसके अनुसार राम के यह पूछने पर कि "इस तपोभूमि में ये किसकी हड्डिया पड़ी हुई हैं?" मुनियों ने बतलाया था, "हे राम, ये ऋषियों की खोपड़िया हैं। जो ऋषि अपनी समाधियों से विरत हो कर प्रमत्त की भाँति इधर-उधर घूमते हैं उन्हीं को, राक्षसों ने खाया है।" किंतु 'मानस' में इस प्रकार नहीं कहा गया है। 'मानस' में दुर्दुभि दैत्य, सप्तताल तापसी स्वयंप्रभा एवं सपाति की कथाओं का भी उतना विस्तार नहीं है जितना 'अध्यात्म' में पाया जाता है। 'अध्यात्म' के 'सुन्दर काण्ड' में आया है कि जिस समय हनुमान् ने लंका में प्रवेश किया उस समय स्वयं लंकापुरी की राक्षसी के वेष में उनके सामने आ गई। उसने हनुमान् से अपना पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया और इसके साथ ही यह भी कह दिया कि सीता वहाँ रावण के क्रीडा-वन में स्थित अशोक बाटिका में राक्षसियों से घिरी रहा करती है^१। किंतु 'मानस' की लंकिनी हनुमान् को कोई ऐसा पता नहीं देती, प्रत्युत इस बात का संकेत उन्हें, सर्वप्रथम, विभीषण की 'जुगुति' से ही मिलता है।^२ फिर भी राम-कथा को एक धार्मिक वा साम्प्रदायिक रूप देने तथा अनेक स्थलों पर स्तुतियों और महात्म्यों का समावेश करने में 'मानस' के रचयिता ने सर्वथा 'अध्यात्म' की वर्णन-शैली का ही अनुकरण किया है। उसने अपनी रचना में कतिपय उपयुक्त प्रसंग जोड़ दिये हैं, कुछ को किंचित् फेरफार के साथ आगे पीछे कर दिया है और इसमें यत्र-तत्र ऐसी सरसता एवं स्वाभाविकता ला दी है जो 'अध्यात्म' में संभव नहीं थी।

^१ 'अध्यात्म रामायण' (अरण्य कांड), सर्ग २ श्लोक २०-१।

^२ वही, (सुन्दर काण्ड), सर्ग १ श्लोक ४३-५६।

^३ 'राम चरित मानस' (सुन्दर कांड), बोहा ८।

(४) 'राम चरित मानस' और संस्कृत के नाटक—'राम चरित मानस' में संस्कृत के कतिपय नाटकों की राम-कथा के भी प्रसंगों का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। ऐसे नाटकों में से 'प्रसन्न राघव', 'महावीर चरित' एवं 'हनुमन्नाटक' की चर्चा प्रधानतः की जा सकती है और अंतर भी दिखलाया जा सकता है। 'प्रसन्नराघव' किसी महादेव सुत जयदेव कवि की रचना है जो ईस्वी सन् की १२ वीं शताब्दी में वर्तमान थे और जिन्होंने उसमें सीता-स्वयंवर से लेकर राम के वन से लौटने तक का विषय दिया है। इस नाटक के मातृ अंकों में से प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ एवं षष्ठ अंकों के साथ 'मानस' के क्रमशः स्वयंवर प्रसंग, पुष्प वाटिका का प्रसंग, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद प्रसंग तथा सीता-रावण-संवाद प्रसंग से तुलना की जा सकती है तथा उसके द्वारा दोनों रचनाओं की विशेषता भी जानी जा सकती है। 'प्रसन्न राघव' के अनुसार सीता-स्वयंवर के अवसर पर रावण और वाणासुर न केवल उपस्थित होते हैं, अपितु वे अपने वाक् चातुर्य एवं पराक्रम का प्रदर्शन भी करते हैं और दोनों ही अपने-अपने उद्योगों में असफल सिद्ध होते हैं। नाटक में इस बात का वर्णन किया गया है। किन्तु 'मानस' में केवल जनक के वदीजन का उल्लेख मात्र कर देते हैं—'रावनु बानु महाभट भारे । देखि सरासन् गर्वाहि सिधारे ।' ^१ इसी प्रकार 'प्रसन्न राघव' के पुष्प वाटिका प्रसंग में वसंत ऋतु का वर्णन बड़े सुंदर ढंग से किया गया है। उसमें गौरी का स्थान चंडिका ग्रहण करती है। सीता राम के पहले लक्ष्मण को ही देखती है और लक्ष्मण उनकी सखियों के साथ परिहास में योग देते जान पड़ते हैं। सीता के चले जाने पर उनके सौंदर्य के संबंध में जो गम एवं लक्ष्मण में बातचीत हुई है वह भी गो० तुलसीदास की मर्यादा रक्षा वाली प्रवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल है। 'प्रसन्न राघव' के अनुसार जब परशुराम को सीता के स्वयंवर का पता चला तो उन्होंने जनक को कहला भेजा कि वे वनारण्य के आधार पर ऐसा न करें। किन्तु अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने के कारण जनक ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। 'मानस' में इस बात का उल्लेख मात्र तक नहीं है। 'मानस' के 'सुंदर कांड' में जो अशोक वाटिका की

राक्षसियों में घिरी सीता की रावण के साथ बातचीत है वह 'प्रसन्न राघव' के अनुसार है।

भवभूति कवि के 'महावीर चरित' एवं 'उत्तर राम चरित' नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं और इनमें से प्रथम का विषय प्रायः 'प्रसन्न राघव' के ही अनुसार है। इसके कवि ने सीता एवं उर्मिला को क्रमशः राम एवं लक्ष्मण से विद्वामित्र के आश्रम में ही मिला दिया है। यह प्रसंग प्रथम अंक का है। 'महावीर चरित' के चौथे अंक में, कैकेयी का एक जाली पत्र लेकर शूर्पणखा, मथुरा वेष में, मिथिला चली जाती है। कैकेयी उस पत्र के द्वारा राम के वनवास का प्रस्ताव करती है, जिसके अनुसार राम भरत को अपनी पादुका देकर वही से सीता लक्ष्मण सहित वन चले जाते हैं। इस नाटक में एक अन्य विचित्र बात यह भी दीख पड़ती है कि राम को बालि, माल्यवान् की प्रेरणा से, उनके मार्ग ही में रोक लेता है। फलतः दोनों में घोर द्वंद्व युद्ध होता है और राम के हाथों बालि मारा जाता है। 'मानस' में उक्त किन्नी भी प्रसंग का समावेश नहीं है। 'महावीर चरित' की एक यह भी विशेषता है कि लक्ष्मण यहाँ पर मेघनाद की शक्ति लगने पर मूर्च्छित होते हैं जहाँ 'रामायण' एवं 'अध्यात्म' के भी अनुसार उन्हें स्वयं रावण द्वारा फेंकी गई शक्ति लगी थी और वे मूर्च्छित भी हुए थे। इस बात में मानसकार ने 'महावीर चरित' का ही अनुसरण किया है। 'उत्तर राम चरित' की कथा-वस्तु 'रामायण' के 'उत्तर-कांड' के वर्ण्य विषय से संबद्ध रखती है और 'मानस' में उसे कोई स्थान नहीं मिला है।

'हनुमन्नाटक' के रचयिता का नाम विदित नहीं और उसे परम्परानुसार हनुमान् की कृति समझा जाता है। यह १४ अंकों का नाटक है। इसमें प्रथम अंक में सीता के स्वयंवर के अवसर पर रावण की जगह उसके किसी दूत का जाना पाया जाता है और इसके दूसरे अंक में जो विवाह के अनंतर सीता एवं राम के संभोग-विलास का वर्णन मिलता है उसमें अश्लीलता पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। इसके तीसरे अंक की एक विशेषता यह है कि इसके अनुसार भरत उस समय अयोध्या में वर्तमान रहते हैं जब राम का वनगमन होता है। इसमें अहल्योद्धार की घटना का उल्लेख भी उस समय किया गया है जब राम अगस्त्याश्रम के आगे पंचवटी

को ओर बढ़ते हैं। इसके आठवें अंक वाले अगद-रावण-संवाद में भी अंगद का अधिक ध्यान रावण को अभिमानित कर उसे उन्नेजित करना ही जान पड़ता है। फिर भी मानसकार ने 'हनुमन्नाटक' के कतिपय दृश्यों तथा उक्तियों को अपनी रचना में उल्लेखनीय स्थान दिया है। 'मानस' के बहुत से स्थल तो ऐसे प्रनीत होते हैं मानो वे 'हनुमन्नाटक' से हिन्दी में अनुवाद करके ज्यों के त्यों, रख दिये गए हों। धनुर्भाग वाले प्रसंग में जनक का नैराश्यपूर्ण वक्तव्य, उसमें लक्ष्मण द्वारा प्रदर्शित युवकोचित आवेश तथा परशुराम के साथ उनके संवाद की अनेक बातें ऐसी हैं जिनके लिए मानसकार को 'हनुमन्नाटक' से बहुत कुछ लेना पड़ा है। अगद एवं रावण का संवाद तथा रावण एवं मंदोदरी का संवाद भी इस संबंध में उसी प्रकार उल्लेखनीय हैं।

(५) 'राम चरित मानस' और 'श्रीमद्भागवत'—'राम चरित मानस' की रचना-शैली पर विचार करते समय हमारा ध्यान 'श्रीमद्भागवत' की ओर भी जाता है। 'श्रीमद्भागवत' का विषय राम-कथा न होकर कृष्ण-कथा है और अन्य अनेक कथाओं का समावेश उसमें केवल प्रसंग वश किया गया है। इसके सिवाय 'श्रीमद्भागवत' एक महापुराण है जहाँ 'राम चरित मानस' को अधिकतर एक महाकाव्य की श्रेणी में रखने की परम्परा प्रचलित है। किन्तु, इन बातों के होते हुए भी, 'भागवत' एवं 'मानस' में जो आश्चर्यजनक सादृश्य पाया जाता है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैसा पहले कहा जा चुका है मानसकार ने अपनी रचना में पौराणिक पद्धति का अनुकरण बहुत दूर तक किया है। उसने इसे संवादात्मक ग्रंथ बना दिया है, इसमें विभिन्न कथाओं तथा अंतर-कथाओं को स्थान दिया है और इसमें स्तुतियों एवं माहात्म्यों तक को नहीं छोड़ा है। 'भागवत' में जिस प्रकार श्रीकृष्णावतार होने के पहले, उसके लिए, पृथ्वी का ब्रह्मा के निकट जाना, सभी देवताओं का मिलकर भगवान् की स्तुति करना तथा उसके फलस्वरूप आकाशवाणी द्वारा उनका अश्वस्त किया जाना दिखलाया है^१ उसी

^१ 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १० अ० १) श्लोक १५-२६।

प्रकार का प्रसंग 'मानस' में भी है।^१ श्रीकृष्णावतार हो जाने अनंतर स्वर्ग के देवतादि अपने यहाँ उत्सव मनाते हैं।^२ बालक श्रीकृष्ण की माता देवकी उनका अलौकिक रूप देखते ही उनकी स्तुति करने लगती है और वे उसे कुछ पूर्वकथा का स्मरण दिलते हैं जिन सभी बातों में मानसकार ने 'भागवत' का अनुकरण किया है।^३ उसने राम के नामकरण एवं विद्याध्ययन के प्रसंगों तक में भी 'भागवत' के आदर्श का परित्याग नहीं किया है,^४ प्रत्युत अपने बालक राम के एक साथ 'इहाँ उहाँ' वर्त्तमान रहने तथा उनके अपनी माता को 'अखंड रूप' दिखलाने में भी उससे पूरी सहायता ली है।^५

'भागवत' एवं 'मानस' के कृच्छ और भी स्थल हैं जिनमें विचित्र सादृश्य देख पड़ता है। उदाहरण के लिए 'मानस' के राम एवं लक्ष्मण का जनकपुर में प्रवेश करना^६ लगभग उसी ढंग से बतलाया गया है जिस प्रकार 'भागवत' में श्रीकृष्ण एवं बलराम का कंस की मथुरा में प्रवेश करने का चित्र खींचा गया है और सीता-स्वयंवर के अवसर पर उपस्थित राम के दर्शकों का विभिन्न दृष्टिकोण जो 'मानस' में प्रदर्शित किया गया है,^७ वह निःसंदेह 'भागवत' की 'रंगभूमि' में पहुँचे हुए श्रीकृष्ण के दर्शकों की विभिन्न दृष्टिकोण पर आश्रित है।^८ 'श्रीमद्भागवत' के श्लोक में कहा गया है कि जिस समय लोगों ने श्रीकृष्ण को, बलराम के साथ कंस की रंगभूमि में उपस्थित देखा उस समय वे उनमें से "पहलवानों को बज्र के समान कठोर, साधारण मनुष्यों को नरश्रेष्ठ, स्त्रियों को सशरीर कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को अपना शासक, माता-पिता को शिशुरूप, कंस को काल मर्दृश्य, विद्वानों को विराट्, योगियों को परमतत्त्व तथा वृष्णियों को परदेव से

^१ 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दोहा १८४-७।

^२ 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १० अ० ३) श्लोक २-८।

^३ 'राम चरित मानस' (बाल कांड) दोहा १९१-२।

^४ वही, दोहा १९७ व २०४। ^५ वही, दोहा २०१।

^६ वही, दोहा २१९-२१। ^७ वही, दोहा २४१-२।

^८ 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १० अ० ४३), श्लोक १७।

जान पड़े।”^१ इसी प्रकार ‘मानस’ के किष्किंधा कांड में जो वर्षा एवं शरद् ऋतुओं का वर्णन मिलता है^२ वह भी ‘भागवत’ के वैसे वर्णनों^३ द्वारा ही प्रभावित है। अंतर केवल यही है कि ‘भागवत’ में जहाँ उसमें दार्शनिकता की भी पुट आ जाती है वहाँ ‘मानस’ में उसे अधिकतर नैतिक स्तर पर ही रखा गया है। इसके सिवाय ‘मानस’ के उत्तर कांड में जो भुवुडि द्वारा किया गया कलियुग-वर्णन^४ है वह भी ‘भागवत’ के वारहवें स्कंध^५ के आधार पर है। इन बातों का राम-कथा के साथ किसी प्रकार का प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। किन्तु इसके द्वारा मानसकार की ‘भागवत’ के आदर्श के प्रति निष्ठा सूचित होती है। गो० तुलसीदास ने इसी प्रकार ‘शिव पुराण’, ‘रद्र सहिता’ एवं विश्वेश्वर सहितादि से भी कई बातों में महायता ली है। अपने शिव चरित को तो उन्होंने विशेषकर इन्हीं जैसे ग्रंथों पर ही आश्रित रखा है और अन्य कई प्रसंगों में भी ‘आनन्दरामायण’, ‘योगवाशिष्ठ’, ‘रघुवंश’ आदि का आश्रय लिया है।

(६) **राम चरित मानस और कुछ अन्य ग्रंथ**—मूल राम-कथा के अतिरिक्त जो चरित, हेतु-कथा, अंतर-कथा आदि के विषय ‘राम चरित मानस’ के अंतर्गत दीख पड़ते हैं उसके मूल स्रोतों के संबंध में इसके पहले ही चर्चा की जा चुकी है। वे अनेक स्थलों में लिये गए हैं और उन्हें ‘मानस’ में इस प्रकार खपाया गया है जिससे वे इसके स्वाभाविक अंग-से बन गए हैं। मूल राम-कथा का वर्णन करते समय भी न केवल उसके कई प्रसंगों को अपना क्रम दिया गया है, अपितु उन पर अपना रंग भी चढ़ा दिया है। इस ढंग की शैली को अपनाते समय कवि ने जिन

^१ दे० मल्लाना मशनिर्नृणां नरवरः, स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।

गोपानां स्वजनोऽसतां क्षिति भुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुः ॥

मृत्युर्भोजपते विराड विदुषां तत्त्वं परं योगिनां।

वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥१७॥

^२ ‘राम चरित मानस’ (किष्किंधा कांड) दोहा १२-५ तथा १६-७।

^३ ‘श्रीमद्भागवत’ (स्कंध १० अ० २०) श्लोक ८-४९।

^४ ‘राम चरित मानस’ (उत्तर कांड) दोहा ९७-१०२।

^५ ‘श्रीमद्भागवत’ (स्कंध १२ अ० १-३) श्लोक ४५ और ३२-४१।

प्रमुख रचनाओं को अपना आदर्श बनाया है उनमें 'अध्यात्म रामायण' एवं 'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त और भी कई हो सकती हैं। इनमें प्रमुखतः उन सांप्रदायिक रामायणों के नाम उल्लेखनीय हैं जिनका निर्माण, पहले-पहल, वाल्मीकीय 'रामायण' के अनुकरण में हुआ था, किन्तु जिनमें से अधिकांश पीछे पौराणिक पद्धति के अतिरिक्त भक्ति-आन्दोलन के भी प्रभाव में आ गए। फिर भी, जान पड़ता है कि गो० तुलसीदास के सामने केवल ऐसी हिन्दू रचनाओं का ही आदर्श उपस्थित नहीं था। उन्होंने अपनी दृष्टि अन्यत्र भी डाली थी। उदाहरण के लिए अनुमान किया जाता है कि जैन कवि स्वयम्भूदेव की अपभ्रंश रचना 'पउम चरित' का भी कुछ न कुछ प्रभाव 'राम चरित मानस' पर पड़ा होगा। 'पउम चरित' एक वृहत् काव्य ग्रंथ है जिसका निर्माण ईसा की आठवीं शताब्दी में हुआ था और जिसमें राम-कथा की जैन परम्परा स्वीकार की गई थी। दोनों की कथा-वस्तु की रूप-रेखाएं एक समान नहीं हैं, किन्तु इनके प्रारंभिक अंशों की प्रस्तावना में कही-कही विचित्र साम्य लक्षित होता है।

गो० तुलसीदास ने जिस प्रकार कहा है कि 'मानस' की रचना में 'स्वान्तः सुखाय' करने जा रहा हूँ उसी प्रकार स्वयम्भूदेव ने भी बतला दिया है कि 'रामायण कावें' अर्थात् रामायण काव्य का निर्माण वे 'अप्पाणउ' अथवा अपने लिए कर रहे हैं। वे गो० तुलसीदास की ही भांति 'बुहयण' अर्थात् बुधजन से विनय करते हैं और उनके सामने अपनी काव्यशास्त्र-विषयक अज्ञता भी प्रकट करते हैं। वे दुर्जनों के लिए कहते हैं—“यदि इतने पर भी कोई खल मुझ पर अपना रोष प्रकट करेगा तो क्या कहूँ? पिशुनों की क्या अभ्यर्थना करूँ जिन्हें कुछ भी नहीं रुचता।” स्वयम्भूदेव ने अपने 'पउम चरित' की राम-कथा को किसी सरिता के रूपक द्वारा समझाने की भी चेष्टा की है और वे कहते हैं—“वर्द्धमान के मुख रूपी पर्वत से निकली हुई यह क्रमागत राम-कथा नदी रूप है जिसमें अधरों का समुदाय ही उसका जल समूह है। सुंदर अलंकार एवं छंद उसमें मत्स्यों के समूह हैं, दीर्घ समास वक्र प्रवाह हैं, संस्कृत तथा प्राकृत अलंकार पुलिन हैं, देशी भाषा दोनों उज्ज्वल तट हैं, कवियों के दुष्कर एवं सघन शब्द ही शिलातल हैं, अर्थ बहुलता धरंगे हैं तथा आवश्यक (सर्ग) इसमें प्रवेश करने के लिए तीर्थ (सीढ़ी) है।

यह राम-कथा सरिता इस प्रकार शोभायमान है।^{११} मानसकार ने राम-कथा के लिए मानसरोवर का रूपक बाँधा है और उससे निकल कर अपनी काव्य-सरिता का प्रवाहित होना बतलाया है। इसकी नदी का जल 'राम विमल जस' (यश) है और इनके मानसरोवर में ही 'धुनि अबरेब कवित गुनजानी' मनोहर मीन रूप है। 'मानस' के सोरठादि छंदों को तो इन्होंने उक्त सरोवर के 'बहुरंग कमल कुल' का स्थान दिया है और उसके अनुपम अर्थ को इनका पराग मकरदादि कहा है। इनकी कविता-सरयू के दोनों कूलों वा तटों का काम लोक एव वेदमत करते हैं। वह आगे बढ़ती हुई 'राम भगति' की गंगा में मिल जाती है जिसके प्रवाह का वर्णन कवि ने, राम-कथा के विविध प्रसंगों का यथास्थल उल्लेख करते हुए किया है।^{१२} इस प्रकार स्वयंभूदेव जहाँ राम-कथा को एक सरिता कहकर उसके सांग रूपक का केवल एक सक्षिप्त परिचय देते हैं वहाँ गो० तुलसीदास उसे ही मानसरोवर का नाम देते हैं और उस जलाशय से अपनी काव्य-सरयू को प्रवाहित कर सारे रूपक का वर्णन बहुत विस्तार के साथ करते हैं।

'पउम चरिउ' में कुल ९० सधिया वा सर्ग हैं जो पाँच कांडों में विभक्त हैं और इनके नाम, विद्याधर, अयोध्या, सुदर, युद्ध और उत्तर कांड हैं। 'पउम चरिउ' की राम-कथा में वे प्रायः सभी विशेषताएँ हैं जो जैन रामायणों में पायी जाती हैं और जिनकी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। पूरा ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं है, किन्तु इसके जितने अंश छपे हैं उनसे पता चलता है कि स्वयंभूदेव कोई साधारण कवि नहीं था। राम-कथा के प्रमुख पात्रों को उसने स्वभावतः मानवरूप ही दिया है और उसीके अनुसार उसने उसके युद्ध, केलि, प्रेम, विलाप आदि विषयक प्रसंगों का सजीव वर्णन करने की चेष्टा की है तथा इसमें पूरी सफलता भी प्राप्त की है। सीता एवं राम की प्रेम-दशा का वर्णन करते समय उसने उनकी शारीरिक चेष्टाओं का भी सूक्ष्म विवरण दिया है तथा राम को तो काम की दशमावस्था

नामवरसिंह : 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग' (साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग), पृ० १६९-७१।

'राम चरित मानस' (बाल कांड) दोहा ३६-४२।

(मरण) तक पहुँचा दिया है।^१ इसी प्रकार सीता के विरह का वर्णन तथा दोनों के पारस्परिक मिलन का भी चित्रण किया गया है।^२ इस कवि का युद्ध-वर्णन बड़ा ही ओजपूर्ण है। इसमें रावण का वध लक्ष्मण के हाथों कराया गया है।^३ और प्रायः प्रत्येक योद्धा के युद्ध-कौशल का विस्तृत विवरण दिया गया है। लंका और अयोध्या के रनिवास का वर्णन तथा राज-घराने के व्यक्तियों के हास-विलास का चित्रण बड़ी उपयुक्त भाषा में किया गया है और दशरथ, राम, भरत, रावण, विभीषण तथा मदोदरी आदि के विलापो का वर्णन भी उतनी ही हृदयद्रावक शैली में है। गो० तुलसीदास ने ऐसे वर्णनों को या तो अत्यंत संक्षिप्त कर दिया है अथवा उनकी चर्चा तक भी नहीं की है। उन्होंने जहाँ कहीं इन पात्रों का मानवीकरण किया है वहाँ कभी-कभी कुछ ऐसी बातें ला दी हैं जिनसे उनके वर्णनों में अस्वाभाविकता की गंध आ जाती है।

(७) 'राम चरित मानस' और उसकी समसामयिक रचनाएं—'राम चरित मानस' की रचना स० १६३१ में आरम्भ हुई थी। जिस समय वह निर्मित हुआ उसके कुछ इधर-उधर लिखी गई अन्य ऐसी पुस्तकें भी पायी जाती हैं जिनमें 'रामायण' की रामकथा का वर्णन किया गया है। श्री माधौदास चारण कृत 'रामरासौ' का भी पता चलता है जिसमें राम-कथा वर्णित है। इसकी रचना संवत् १६१० से संवत् १६९० के बीच होने का अनुमान किया जाता है जो तुलसीदास का समसामयिक ठहरता है। परन्तु उक्त 'रासौ' के सुलभ न होने से 'मानस' की राम-कथा से उसकी तुलना करना अभी तक संभव नहीं हो सका है।^४ इनमें से केवल दो-तीन का ही यहाँ उल्लेख किया जाता है और उसकी कथा-वस्तु के साथ 'मानस' के वर्ण्य विषय की संक्षिप्त तुलना की जाती है।

रामचरित-संबंधी ऐसे ग्रंथों में सबसे उल्लेखनीय कवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' है जिसका रचना काल स० १६५८ दिया गया है। इस रचना

^१ 'पउम चरित', २१ (८-९)। ^२ वही, ७८ (६-८)।

^३ वही, ७५ (२२)।

^४ नामवर सिंह: संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो (परिशिष्ट), पृ० १५५।

के लिखने का कारण बतलाते हुए, इसके कवि ने कहा है कि वाल्मीकि मुनि ने मुझे स्पष्ट देकर आदेश किया कि तुम अपनी व्यर्थ की बातों का परित्याग कर अब 'रामदेव' का गुणगान करो क्योंकि जबतक ऐसा नहीं करोगे तुम्हें देवलोक नहीं मिलेगा। अतः मैंने उस समय से रामचंद्र को अपना इष्ट बना लिया और उनके गुणों का वर्णन करने का संकल्प कर लिया।^१ परन्तु यह कहते हुए भी कवि केशवदास अपनी 'रामचन्द्रिका' की रचना, गो० तुलसीदास की भाँति भक्ति-भाव में प्रेरित होकर, करते नहीं जान पड़ते। 'रामचन्द्रिका' को वे अपने पाण्डित्य प्रदर्शन का एक साधन बना लेते हैं और उसके आरंभ से लेकर अंत तक उसी मनोवृत्ति के साथ लिखते चले जाते हैं। 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य की श्रेणी में रखा जाता है और उसकी वर्णन-शैली में नाटकीयता का होना अनुमान किया जाता है। उसके आरंभ से ही विविध छंदों के प्रयोग होने लगते हैं, संवादों की शैली का सूत्रपात कर दिया जाता है। सर्वत्र, चमत्कारपूर्ण कवि-कर्म की ही प्रतिष्ठा करते हुए, उसमें 'मानस' के जैसे भक्ति-भाव का आना अत्यंत कठिन कर दिया जाता है। 'रामचन्द्रिका' में ३९ प्रकाश वा सर्ग हैं जिनमें से एक भी ऐसा नहीं मिल सकता जिसमें इसके रचयिता ने अपने काव्य-कौशल की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा न की हो और जिसमें, इसी कारण, ग्रंथ की अन्य आवश्यक बातों का रूप गौण न हो गया हो।

'रामचन्द्रिका' की राम-कथा का भी आधार वाल्मीकीय 'रामायण' ही है। किन्तु उसकी वर्णन-शैली पर अधिकतर जयदेव कवि के 'प्रसन्न राघव' नाटक का प्रभाव लक्षित होता है जिस कारण उसके प्रसंगों का कथन उनके प्रदर्शन-सा लगता है। केशवदास ने गो० तुलसीदास की भाँति राम की बाल-लीलादि की ओर ध्यान नहीं दिया है, प्रत्युत कथा का आरंभ वस्तुतः विश्वामित्र के अयोध्या आगमन से किया है और इसी के व्याज से वे वहाँ के वैभव वर्णन की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त हो गए हैं। ग्रंथ के चौथे 'प्रकाश' में रावण एवं वाणासुर के संवाद

^१ 'रामचन्द्रिका' (पहला प्रकाश) छंद ७-२०।

^२ वही, छंद २४-५१।

का प्रसंग आता है जो उन दोनों के पारस्परिक वाद-विवाद को सूचित करता है। यह संवाद 'प्रसन्न राघव' पर आश्रित जान पड़ता है और यह लगभग पूरे 'प्रकाश' तक चला गया है। इसके अंत में दोनों वीर वहाँ से कुछ किये बिना ही हटा दिये जाते हैं और असफल की दशा में ही अपने-अपने वहाँ चले जाते हैं। मानसकार ने इतने बड़े प्रसंग को अपनी एक अर्द्धाली द्वारा ही समाप्त कर दिया है और कहा है—“रावन बानु महाभट भारे, देखि सरासन गवाहि सिधारे।’ इसी प्रकार इसके सातवें 'प्रकाश' में परशुराम के साथ चारों भाइयों का संवाद दिया गया है जिसे केशवदास ने 'रामायण' के अनुसार विवाहोपरांत वाराणस के लौटते समय घटना के रूप में लिखा है, किन्तु जिसका एक रूप गो० तुलसीदास ने धनुर्भंग के ठीक पीछे ही, अपने 'मानस' में देना उचित समझा है। 'रामचन्द्रिका' के इस संवाद की एक विशेषता यह भी है कि इसके बीच में महादेव भी आ जाते हैं और सबके बीच शांति लाने का प्रयत्न करते हैं। लगभग उतना ही बड़ा संवाद अंगद एवं रावण के बीच का भी है जो पूरे सोलहवें 'प्रकाश' में आता है और जिसकी विशेषता यह जान पड़ती है कि उसमें रावण ने अंगद को अपनी ओर मिला लेने का प्रयत्न किया है।

'रामचन्द्रिका' के 'प्रकाश' कांडों के अनुसार लिखे गए नहीं प्रतीत होते। उसके पहले से आठवें 'प्रकाश' तक का विषय 'बालकांड' का है जहाँ 'अयोध्या कांड' की घटनाएँ केवल नवें तथा दसवें प्रकाशों में ही आ जाती हैं और पूरे ग्यारहवें तथा बारहवें के कुछ अंश तक 'अरण्य कांड' चलता है। इसी प्रकार बारहवें के शेष अंश और तेरहवें के कुछ अंश तक 'किष्किंधा' की कथा मिलती है और तेरहवें के शेषांश से पंद्रहवें के कुछ अंश तक 'सुंदर' है। 'लंका कांड' एवं 'उत्तर कांड' की कथाओं के लिए 'रामचन्द्रिका' के शेष भाग का उपयोग किया गया है। 'उत्तर कांड' का विषय सबसे अधिक प्रकाशों में दिया गया है जिसका कारण उसमें सीता-त्याग, लव-कुश चरित एवं लवणासुर बध आदि का सम्मिलित किया जाना है। कवि केशवदास ने राम को एक वैभवशाली राजा के रूप में चित्रित किया है तथा राजसी ठाठ-बाट का ही अधिक प्रदर्शन उन्होंने अन्यत्र भी किया है। उनके नगर, प्रासाद, चौगान आदि के वर्णनों से भी उनकी मनोवृत्ति रजोगुण की ही

और अधिक उन्मुख जान पड़ती है। इसी प्रकार उनके संवादों से भी पता चलता है कि उनका मन व्यावहारिक नीति की ही बातों में सर्वाधिक रमता है और वे एक कुगल दर्बारी कवि कहे जा सकते हैं। इसके विपरीत गो० तुलसीदास ने, राम को एक चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में चित्रित करते हुए भी, उनके वैभव का विस्तृत वर्णन कही भी नहीं किया है, प्रत्युत उन्होंने हमारा ध्यान सदा उनके उस रूप की ही ओर आकृष्ट करना चाहा है जो मर्यादा पुरुषोत्तम का है और जिसमें सत्गुणी वृत्तियों की प्रधानता शेष दो गुणों के प्रभाव को कभी स्पष्ट नहीं होने देती। इसके सिवाय 'रामचन्द्रिका' में हमें उस पौराणिकता का भी कही पता नहीं चलता जो 'मानस' की एक विशेषता है। 'मानस' में उसका रहना उस ग्रंथ के धार्मिक रूप ग्रहण करने में सहायक होता है जहाँ उसका अभाव 'रामचन्द्रिका' को केवल एक चरित काव्य में ही परिणत कर देता है। 'रामचन्द्रिका' की एक प्रमुख विशेषता उसकी नाटकीयता कही जा सकती है जिसके कारण उसके अनेक स्थल हमें किसी दृश्य काव्य का स्मरण दिलाते हैं। वास्तव में 'रामचन्द्रिका' की राम-कथा जहाँ केवल बाह्य चमत्कारों द्वारा ही सुसज्जित है और वह अधिक से अधिक किसी की जिज्ञासा अथवा कौतूहल की तृप्ति कर सकती है वहाँ 'मानस' की राम-कथा सीधे हमारे हृदय प्रदेश को प्रभावित करती है और उसके अलौकिकता-प्रधान वर्णनों में भी धार्मिक भावों को अनुप्राणित करने की शक्ति वर्तमान है। रावण-बध के अनंतर अयोध्या में लौटने पर राम का विरवित-भाव प्रदर्शित करना तथा वशिष्ठ का उन्हें उपदेश देना 'रामचन्द्रिका' का वह अंश है जो इसका अपवाद स्वरूप समझा जा सकता है।^१

'मानस' की रचना के जितना पीछे 'रामचन्द्रिका' का निर्माण हुआ उसके लगभग उतना ही पहले सूरदास ने अपना 'सूरसागर' बनाया था। 'सूरसागर' सूरदास के पदों का संग्रह है और उसका प्रधान वर्ण्य विषय श्रीकृष्ण का चरित है। किन्तु, पूरे ग्रंथ का निर्माण 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर होने के कारण, श्रीकृष्ण चरित के पहले इसमें अन्य अवतारों की भी कथाएं सम्मिलित कर ली गई हैं।

^१ 'रामचन्द्रिका' (वे० २५ वां प्रकाश)।

फलतः रामावतार की भी कथा इसके 'नवम स्कंध' में आती है जो प्रायः सर्वत्र वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण करती है। ग्रंथ के वस्तुतः फुटकर पदों का एक संग्रह मात्र होने के कारण इसमें 'मानस' जैसे प्रबंध काव्य की सी सुव्यवस्था नहीं मिल सकती। इसमें राम-कथा के प्रमुख प्रसंगों को केवल क्रम मात्र दे दिया गया है और उनमें से कुछ के वर्णन के लिए एक से अधिक पदों की-भी रचना की गई है। राम के जन्म से लेकर उनके रावण-वध के उपरान्त लंका से अयोध्या आने तक की कथा का वर्णन है और सबके साथ उनका मिलन भी दिखलाया गया है।^१ किन्तु 'मानस' की भांति इसमें न तो राम के राज्याभिषेक की कोई चर्चा है और न कहीं राम-राज्य की प्रशंसा की गई मिलती है। राम-कथा आरंभ करने के पहले जो इसमें रामावतार के कारण का वर्णन किया गया है वह विष्णु के जय एव विजय नामक दोनों पार्वदों के शाप द्वारा अमुर हो जाने का प्रसंग है।^२ गो० तुलसीदास ने इस कारण का उल्लेख अपने 'मानस' में अवश्य दिया है^३ किन्तु वे इसे ही अपने वर्ण्य राम-चरित का भी हेतु स्वीकार करते नहीं जान पड़ते। इस प्रसंग के उपरान्त उन्होंने अन्य ऐसी हेतु-कथाओं का भी उल्लेख किया है और सबके अन्त में उन्होंने राजा भानु प्रताप की कथा दे दी है।^४

उपर्युक्त 'रामचन्द्रिका' के लगभग सात वर्ष पीछे अर्थात् सन् १६०८ ई० (सं० १६६५) में एक रामकथा-संबन्धी संस्कृत काव्य-ग्रंथ की भी रचना हुई थी जिसका नाम 'राम लिंगामृत' है और जिसका रचयिता कोई काशी निवासी अद्वैत नामक कवि प्रसिद्ध है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति लंदन में सुरक्षित है, किन्तु इसकी कथा-वस्तु का एक संक्षिप्त विवरण डा० बुल्के की 'रामकथा' में दिया गया है।^५ इसमें 'खिल' को लेकर कुल १२ सर्ग हैं। इसके प्रथम सर्ग में मंगलाचरण के अनंतर गोकुल की दो गोपिकाओं का संवाद आता है जिनमें से एक दूसरी के

^१ 'सूरसागर' (नवम स्कंध) पद ४६०-६१६।

^२ वही, (नवम स्कंध) पद ४५९।

^३ 'राम चरित मानस' (बालकांड) दोहा १२२।

^४ वही, दोहा १५३-७६।

^५ 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० २०३-८।

प्रति राम-चरित का वर्णन करती है। कथानक रावण-चरित से आरंभ होता है जिसमें, भृगु मुनि द्वारा दिये गए शाप के फलस्वरूप जय और विजय का राक्षस योनि प्राप्त करना तथा उनका क्रमशः रावण एवं कुम्भकर्ण होना और प्रह्लाद का विभीषण के रूप में अवतार लेना बतलाया गया है। दूसरे सर्ग में रामादि के जन्म और उनकी बाल-लीला तथा राम एवं लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ जाने की कथा प्रायः 'मानस' के ही समान है। तीसरे में रावण की धनुष चढ़ाने में असफलता का भी वर्णन किया गया है और चौथे में वाराणस के साथ कौशल्यादि रानियों का भी अयोध्या से जनकपुर आना दिखलाया गया है। इसी प्रकार पाँचवें सर्ग की विशेषता उसमें विवाह के समय राम की अवस्था का १५ वर्ष तथा जानकी की अवस्था का केवल ६ वर्ष होना है। छठे सर्ग में शूर्पणखा के विरूपीकरण के अनंतर नारद को रावण के पास जाकर सीता के सौंदर्य का वर्णन करने की भी कथा मिलती है और उसमें ही सीता की खोज के क्रम में, अहल्याद्वारा एवं केवट द्वारा राम के चरण धोने के प्रसंगों का उल्लेख तथा राम की लिंग-पूजा का वर्णन है। सातवें में हनुमान् सीता को मृदङ्गा के अतिरिक्त राम का एक पत्र भी देते हैं और आठवें के युद्ध कांड में राक्षसों की केलि तथा अहीमहीरावण द्वारा राम-लक्ष्मण को पाताल ले जाने और हनुमान द्वारा उनका उद्धार किये जाने की कथा आती है जिनका भी कोई उल्लेख 'मानस' में नहीं मिलता। इसके नवें, दसवें तथा ग्यारहवें सर्गों में कोई वैसी विशेषता नहीं है। बारहवें में कंकेयी राम से कहती है कि मैंने देवेन्द्र की प्रेरणा से आपको रावण बध के लिए वन भेजा था। तेरहवें में भी राम एवं सीता के संभोग का वर्णन है तथा चौदहवें में लेकर सत्रहवें सर्गों तक क्रमशः बिना सीता-त्याग के ही, लव-कुश चरित, सीता द्वारा कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भगर्भ का बध, राम द्वारा श्रीरंग की पूजा तथा अंत में राम का अश्वमेध यज्ञ और उनका परलोक गमन दिखलाये गए हैं। 'खिल' वाले अंतिम सर्ग में केवल राम पूजनादि के ही प्रसंग आते हैं।

(८) 'राम चरित मानस' और गो० तुलसीदास की अन्य रचनाएं—गो० तुलसीदास की रचनाओं के संबंध में लिखते समय बतलाया जा चुका है कि राम-कथा अथवा उसके किसी न किसी अंश के वर्णन की प्रवृत्ति उनमें आरंभ से अंत

तक प्रायः एक समान बनी रही। फलतः उन्होंने न केवल 'राम चरित मानस' में इसका वर्णन विस्तार के साथ किया, अपितु 'गीतावली', 'कवितावली', 'बरवै-रामायण' एवं 'रामाज्ञा प्रश्न' में भी उसी का परिचय न्यूनाधिक विवरणों के साथ दिया और 'जानकी मंगल' तथा 'रामलला नहछू' में भी इसी के आशिक रूप को प्रकट किया। राम-कथा का विषय उन्हें इतना प्रिय था कि इसके एकाध प्रसंगों का उल्लेख उनकी 'दोहावली' तथा 'विनय पत्रिका' तक में आ गया और मूल राम चरित के रचयिता महेश अथवा शिव तक के विवाह की कथा को लेकर उन्होंने 'पार्वती मंगल' की रचना कर डाली। परन्तु राम-कथा का रूप उनकी सभी रचनाओं में ठीक एक ही प्रकार का नहीं रहा। इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि इनमें से कई एक में उन्होंने वाल्मीकीय 'रामायण' की कथा-वस्तु और उसके क्रम का पूरा अनुसरण किया, किन्तु दूसरों में किञ्चित् फेरफार भी कर दिया और कहीं-कहीं उनमें ऐसी कथाओं का भी समावेश किया जिनका 'रामायण' में उल्लेख तक नहीं था। डा० बुल्के ने इस विषय पर विचार करके यह निष्कर्ष निकाला है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास पहले वाल्मीकीय रामायण से अधिक प्रभावित थे और अपनी बाद की रचनाओं में अन्य रामकथा-साहित्य से भी।"^१ और तदनुसार उन्होंने उनकी पाँच रचनाओं का कालक्रम भी देने की चेष्टा की है। उनका अनुमान है कि 'विषय-निर्वाह मात्र के दृष्टिकोण से' इनका क्रम 'रामाज्ञा प्रश्न', 'जानकी मंगल', 'गीतावली', 'राम चरित मानस' और 'कवितावली' ठहरता है तथा ऐसा करते समय उन्होंने 'बरवै रामायण' एवं 'रामलला नहछू' का नाम नहीं लिया है और न इसका कोई कारण ही बतलाया है।

जान पड़ता है कि डा० बुल्के को 'बरवै रामायण' तथा 'रामलला नहछू' के गो० तुलसीदास की रचना होने में ही संदेह था। ये दोनों ग्रंथ ऐसे हैं जिनमें श्रैंगारिक भाव अधिक मात्रा में पाया जाता है जो 'मानस' के रचयिता की भक्ति परक मनोवृत्ति के प्रतिकूल है। परन्तु अन्य कई लेखकों ने इन दोनों ही रचनाओं

^१ 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० २२१।

को तुलसीकृत माना है और इनके साथ 'मानस' की तुलना करके अपने मत को पृष्ट भी किया है। अतः सभी बातों पर विचार करने से 'रामलला नहछ' को गो० तुलसीदास की एक प्राग्भिक रचना तथा 'बरवै रामायण' को उनके ही फुटकर छंदों का एक रीतिकालीन संग्रह मात्र मान लेने में वैसी किसी आपत्ति का कोई कारण नहीं रह जाता। कुछ लोगों का इस संबंध में यह भी कहना है कि इन रचनाओं के जिन-जिन अंशों में अनुचित शृंगार का बाहुल्य दीख पड़ता है वे प्रक्षिप्त अंश भी हो सकते हैं और इस बात के समर्थन में उन्होंने कतिपय हस्तलिखित प्रतियों का भी उल्लेख किया है।^१ 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी कदाचित् कुछ ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर इन दोनों रचनाओं को अपने यहाँ से प्रकाशित 'तुलसी ग्रंथावली' में स्थान दिया है।^२

गो० तुलसीदास की जिन रचनाओं में राम-कथा की प्रायः सभी बातों की चर्चा की गई है वे 'राम चरित मानस' के अतिरिक्त 'रामाज्ञा प्रश्न', 'गीतावली', 'बरवैरामायण' और 'कवितावली' हैं और इनमें से 'रामाज्ञा प्रश्न' 'मानस' के पूर्व की रचना है। इसके एक दोहे^३ के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना सं० १६२१ में हुई होगी जो 'मानस' के रचनाकाल सं० १६३१ के पूर्व पड़ता है। इसके विपरीत 'गीतावली', 'बरवै रामायण' तथा 'कवितावली' में इस प्रकार का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता। केवल इनमें आयी हुई कतिपय घटनाओं की चर्चा अथवा इनकी रचना-शैली आदि के ही सहारे इनका उसका परिवर्त्ती होना समझ लिया जाता है। वास्तव में ये तीन रचनाएं क्रमशः पदों, बरवै, छंदों तथा कवित्त-सवयों के संग्रह-ग्रंथ हैं और उन्हीं के अनुसार इनका नामकरण भी किया गया है। अतएव संभव है कि इनमें संगृहीत सभी रचनाएं किसी एक निश्चित काल में न लिखी गई हों और उनमें से कुछ 'मानस' के पहले और कुछ पीछ की हों तथा यह भी असंभव नहीं कि उन्हें किसी अन्य व्यक्ति ने

'तुलसीदास' (डा० माताप्रसाद गुप्त), पृ० २१५।

'तुलसी ग्रंथावली' (दूसरा खंड) पृ०, १-६ और पृ०, १७-२५।

'रामाज्ञा प्रश्न' सर्ग ७ सप्तक ७ दोहा ३।

ही पीछे एकत्रित करके इन सग्रहों का रूप दे दिया हो। फिर भी इनके वर्ण्य विषय के पसग-क्रम एवं साधारण घटना निर्वाह से हमें इस ओर कुछ न कुछ संकेत अवश्य मिल जाता है। 'मानस' की कथा-वस्तु के साथ इन उक्त चारों रचनाओं के वर्ण्य विषय की तुलना करने पर यह भी पता चल सकता है कि गो०तुलसीदास की राम-कथा-विषयक जानकारी में किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ होगा तथा इस सबध में वे किमके कितने ऋणी हैं। अतएव, हम यहाँ पहले इन्हीं के साथ 'मानस' की तुलना करेंगे और पीछे उन रचनाओं पर भी विचार करेंगे जिनमें राम-कथा केवल अंशतः मिलती है।

१. 'राम चरित मानस' और 'रामाज्ञा प्रश्न'—'रामाज्ञा प्रश्न' एक ऐसी रचना है जिसमें प्रश्नकर्ता फलादेश निकाला करते हैं। इसमें सात सर्ग हैं जिनमें प्रत्येक में सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में भी सात दोहे हैं जिनकी संख्या, इस प्रकार, ३४३ हो जाती है। इनके अतिरिक्त दो अन्य दोहे, ग्रंथाग्भ के पहले, फलादेश निकालने की विधि बतलाने के लिए दिये गए हैं और फिर इसकी पूर्ति सातवें सर्ग के अंतिम सप्तक के कुछ दोहों द्वारा भी की गई है। इस रचना के सात सर्गों को देख कर पहले 'मानस' के सात कांडों का स्मरण हो आता है और जान पड़ता है कि इसमें भी राम-कथा उन कांडों के ही क्रम में होगी। किंतु बात ऐसी नहीं है। 'मानस' के 'बाल कांड' की कथा इस रचना के प्रथम तथा चतुर्थ सर्ग में दी गई है। इसके प्रथम सप्तक में केवल वदनादि है। इसके दूसरे सप्तक में दशरथ के राज्य शासन की प्रशंसा की गई है। फिर उन्हें बिये गए अंध मुनि के शाप की चर्चा है जिसका संकेत 'मानस' के 'अयोध्या कांड' में उस स्थल पर किया गया है जहाँ, राम के वनगमन के कारण शोकाकुल हो, राजा ने उसकी कथा कौशल्या से कह सुनाई है। दूसरे तथा अन्य सप्तकों में फिर इसके अनंतर राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ, राम जन्म, बाल-लीला, विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा, अहल्या उद्धार, सीता स्वयंवर एवं विवाह का वर्णन किया गया है और इन्हीं प्रसंगों की कुछ घटनाओं को फिर चतुर्थ सर्ग में विस्तार दे दिया गया है। इन दोनों सर्गों की राम-कथा का अधिकांश 'मानस' की कथा-वस्तु के ही अनुसार है। इनकी विशेषता केवल इस बात में दीख पड़ती है कि धनुर्भंग के अनंतर जनक ने इसके अनुसार दशरथ के यहाँ अपने दूतों को न भेज कर

स्वयं सतानंद को ही भेजा है।^१ जनकपुर से बारात के लौटते समय राम एवं परशु-राम की भेट करायी गई है।^२ नारद के द्वारा राम-जन्म का समाचार हनुमान् को दिलाया गया है^३ और जनकपुर में सीता के प्रकट होने के फलस्वरूप वहाँ के वैभव में वृद्धि होने की भी चर्चा कर दी गई है।^४ 'मानस' में परशुराम का आगमन विवाह के पहले ही हो जाता है।

'रामाज्ञा प्रश्न' के द्वितीय सर्ग में न केवल 'मानस' के अयोध्या कांड' की कथा आती है, अपितु रामादि के अत्रि आश्रम तक जाने, काक द्वारा सीता को कष्ट पहुँचाये जाने, विराध के मारे जाने, शरभंग के शरीर-त्याग करने तथा रामादि के अगस्त्य से भेट करने के भी प्रसंग आ जाते हैं जो 'मानस' के 'अरण्य कांड' के विषय हैं और जान पड़ता है कि यहाँ पर भी गो० तुलसीदास ने वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुकरण उसी प्रकार किया है जिस प्रकार उन्होंने उक्त प्रथम सर्ग के परशुराम-प्रसंग में उसे विवाहोपरात कह कर किया है। 'रामाज्ञा प्रश्न' के तृतीय सर्ग में फिर 'मानस' के 'अरण्य कांड' की ही कथा चलती है और शूर्पणखा के प्रसंग में आरंभ होती है। इसके अनंतर इस सर्ग के पाँचवें सप्तक तक खर-दूषण का बध, सीता-हरण, कबंध-विनाश एवं शबरी मिलन संबंधी प्रसंग आ जाते हैं और उस सप्तक के चौथे दोहे से ही राम एवं हनुमान् की भेट की भी चर्चा आरंभ कर दी जाती है जो, वस्तुतः, 'मानस' के 'किष्किधा कांड' का प्रसंग है। उस कांड की अन्य बातें भी इस सर्ग के ही अंत तक समाप्त हो जाती हैं और 'मानस' के 'सुन्दर कांड' वाले प्रसंगों का आरंभ इस रचना के पाचवें सर्ग से होता है। इस सर्ग में 'मानस' के 'सुन्दर कांड' की कथा के अतिरिक्त उसके 'लंका कांड' की भी प्रायः समस्त कथा आ जाती है। इसके छठे सर्ग के लिए उसके 'लंका कांड' का केवल उतना ही प्रसंग शेष रह जाता है जो इंद्र द्वारा मृत भालु-वानरों के युद्ध भूमि में फिर से जिलाने तथा रामादि के अयोध्या के प्रति प्रस्थान करने से संबंध रखता है और वह भी इसके केवल प्रथम सप्तक में ही समाप्त हो जाता है। इसके पाँचवें सप्तक तक 'मानस'

'रामाज्ञा प्रश्न' सर्ग १ सप्तक ४ दोहा ६। ^१ वही, सप्तक ६, दोहा ४-६।

वही, सर्ग ४, सप्तक ४, दोहा १। ^४ वही, सप्तक ५, दोहा १।

के 'उत्तर कांड' की कथा है। 'रामाज्ञा प्रश्न' के छठे सर्ग के सातवें सप्तक में सीता-परिष्ठाग, लव-कुश जन्म तथा सीता के भूमि-प्रवेश के प्रसंग आते हैं जो 'मानस' में नहीं हैं। इसके छठे सप्तक में बक-उलूक के भगड़े, यती-श्वान के संवाद तथा सीता के कलक की ओर भी सूक्ष्म संकेत कर दिया गया है जो 'मानस' के विषय नहीं हैं। इन अंतिम प्रसंगों में भी गो० तुलसीदास ने वाल्मीकीय 'रामायण' का ही अनुसरण किया है।

'रामाज्ञा प्रश्न' के अतर्गत राम-कथा के जितने भी प्रसंग आये हैं उनमें से किसी का भी वर्णन 'मानस' का-सा नहीं किया गया है। ग्रंथ-रचना का प्रमुख उद्देश्य केवल शुभाशुभ फलादेश मात्र होने के कारण इसमें उनका उल्लेख कर देना ही पर्याप्त समझा गया है। इस प्रकार सारी रचना राम-कथा की एक सूची-सी बन गई है और इसमें शुद्ध साहित्यिक गुणों का अभाव है। इस रचना का सातवाँ सर्ग तो प्रधानतः राम विषयक भक्ति, राम-नाम महिमा जैसे विषयों से ही भरा है। इसमें जो कुछ प्रसंग आये हैं वे भी दोबारा दे दिये गए हैं। परन्तु इस सर्ग की द्विवृत्ति भी वैसी नहीं है जैसी प्रथम सर्ग की कथा के फिर चतुर्थ सर्ग में दुहरा देने से हो गई है। प्रथम सर्ग की कथा को चतुर्थ सर्ग में दुहराते समय कवि ने उसे अधिक सुंदर और सुव्यवस्थित रूप देने की भी चेष्टा की है। उसने उसे कदाचित् शुभप्रद समझ कर ऐसा किया है और किष्किधा तथा विशेषतः लका कांड की कथाओं को, इसके विपरीत, मार-काट की जान कर उन्हें उसने अत्यंत सक्षिप्त कर दिया है। 'मानस' के साथ 'रामाज्ञा प्रश्न' की तुलना करते समय जो सबसे उल्लेखनीय बात दीख पड़ती है वह इन दोनों की कथा-वस्तु विषयक विभिन्नता है। इनकी राम-कथाओं में जहाँ-कहीं भी कोई अंतर लक्षित होता है वह कवि द्वारा वाल्मीकीय 'रामायण' का पूरा अनुकरण करने के कारण, संभव हुआ जान पड़ता है और इससे स्वभावतः यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गो० तुलसीदास पर पहले 'रामायण' का प्रभाव अधिक रहा होगा।

२. 'राम चरित मानस' और 'गीतावली'—'गीतावली' गो० तुलसीदास की बड़ी रचनाओं में गिनी जाती है। आकार में यह 'मानस' को छोड़ कर सबसे अधिक बृहद् है और इसके विषय का विभाजन भी 'रामाज्ञा प्रश्न' की भाँति सर्गों

में न कर कांडों में किया गया है, किंतु राम-कथा के कई प्रसंगों के विचार से, जहाँ यह 'मानस' के समान और 'रामाज्ञा प्रश्न' से विलक्षण है वहाँ दूसरों की दृष्टि से 'रामाज्ञा प्रश्न' के ही समान और 'मानस' से भिन्न है। उदाहरण के लिए इसके अंतर्गत भी जनक, विवाह का मंदेश दूतों के द्वारा न भेज कर, सतानंद से भेजते हैं।^१ राम और परशुराम की भेंट वारात के घर लौटते समय होती है^२ और 'रामाज्ञा प्रश्न' की ही भाँति, सीता-परित्याग एवं लव-कुश के जन्म आदि के प्रसंग^३ दिये गए मिलते हैं जो 'मानस' में नहीं हैं। परंतु इसके विपरीत 'गीतावली' में राम और सीता धनुर्भंग के पहले एक दूसरे को देख लेते हैं।^४ धनुर्भंग के समय लक्ष्मण का भाषण होता है तथा 'मानस' की ही भाँति रावण की सभा में अगद दूत बन कर जाते हैं जो 'रामाज्ञा प्रश्न' के प्रसंग नहीं है। 'गीतावली' के 'उत्तर कांड' की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें राजा रामचंद्र के सुखमय दैनिक जीवन का भी एक सुंदर चित्रण मिलता है।^५ इसके सिवाय इसके कई स्थल ऐसे भी दीख पड़ते हैं जिनमें अनुमान होता है कि वे 'मानस' में आये हुए प्रसंगों में कहीं-कहीं पर कुछ वृद्धि करके लिख दिये गए हैं। उदाहरण के लिए, इसके 'अयोध्या कांड' में, राम से भेट होने पर निषाद राज उनके वनगमन की सूचना अयोध्या भेजता है।^६ 'अरण्य कांड' में सीता के विरह में दुःखी राम को देवता लोग उनका पता बतलाते हैं।^७ 'सुंदर कांड' में हनुमान् द्वारा मुद्रिका गिरा देने पर सीता उसीसे राम का कुशल-धेम पूछने लगती है।^८ विभीषण रावण से दृष्ट हो कर पहले क्रमशः अपनी माता एवं कुबेर के पास जा लेते हैं तब राम की शरण में पहुँचते हैं^९ तथा 'लंका कांड' में हनुमान् द्वारा संजीवनी बूटी के ले जाते समय, लक्ष्मण की मूर्छा के समाचार से सुमित्रा दुःखी हो, शत्रुघ्न को भेजने लगती है।^{१०}

^१ 'गीतावली' (बाल कांड) पद १००-१। ^२ वही, पद।

^३ वही, (उत्तर कांड) पद २४-६।

^४ वही, पद १८-२२।

^५ वही, (अयोध्या कांड) पद ८९।

^६ वही, (अरण्य कांड) पद १०-११।

^७ वही, (सुंदर कांड), पद ४।

^८ वही, पद २७।

^९ वही, (लंका कांड) पद १३।

‘गीतावली’ के पदों को पढ़ते समय जान पड़ता है कि उनके रचयिता के सामने कवि सूरदास के पदों का आदर्श अवश्य रहा होगा। गो० तुलसीदास ने इस ग्रंथ में राम के चरित्र को सर्वत्र वैसी अलौकिकता नहीं प्रदान की है जैसी ‘मानस’ में की गई है। यहाँ वे, कवि सूरदास का अनुकरण करते हुए, उनका चित्रण अधिकतर एक सुन्दर बालक, वीर युवक अथवा वैभवशाली नरेश के ही रूप में करना पसंद करते हैं। इसमें राम और उनके भाइयों का चौगान खेलना दिखलाया गया है।^१ हिंडोले में राम एवं सीता के परस्पर विहार करने का भी चित्र खींचा गया है।^२ चारों भाइयों का जन्मोत्सव, छठी, नामकरण, माताओं का वात्सल्य भाव, अपने शिशुओं के लिए उनका मंत्रोपचार करना तथा स्वयं शिव का उनके अंतःपुर में आकर चारों भाइयों के विषय में भविष्यवाणी करना आदि ऐसी बातें हैं जो सूरदास की रचनाओं में ही मिल सकती हैं। इनका ‘मानस’ में अभाव है, किंतु, इन जैसी कई अन्य बातों के भी कारण, ‘गीतावली’ में स्वाभाविकता की मात्रा उससे अधिक आ जाती है। ‘गीतावली’ में, इसके विपरीत, ‘मानस’ के ‘अयोध्या कांड’ का वह मार्मिक चित्रण नहीं मिलता जो वहाँ राम एवं भरत के मिलन में अंकित है। भरत के राम की खोज में चित्रकूट की यात्रा करने तथा वहाँ पहुँच कर उनसे मिलने आदि का वर्णन यहाँ शुक-मारी-भवाद द्वारा कराया गया है।^३ कौशल्यादि के चित्रकूट से लौट कर राम के विरह में बार-बार बोल उठने के जो दृश्य इसमें आते हैं,^४ वे सूरदास की यशोदा का स्मरण दिलाते हैं। ‘गीतावली’ में गो० तुलसीदास का ध्यान जितना कोमल मानवीय वृत्तियों के चित्रण की ओर गया है उतना पक्ष वृत्तियों के कारण अस्तित्व में आ जाने वाली युद्धादि की घटनाओं के वर्णन की ओर आकृष्ट नहीं हुआ है। यही कारण है कि इसमें न तो बाल एवं सुग्रीव के द्वंद्व युद्ध का प्रसंग आता है और न लंकाकांड के किसी भी एक युद्ध का वर्णन किया जाता है। ‘किष्किधा कांड’ के केवल दो छंदों में से एक में राम द्वारा सीता के आभूषण देखने और उससे

^१ ‘गीतावली’ (बाल कांड) पद ४३-४। ^२ वही, (उ० कांड) पद १८।

^३ वही, (उ० कांड) पद ६६-७।

^४ वही, पद ८६-७।

उनके विरहाकुल हो जाने की कथा आती है^१ और 'लंका कांड' के कई पदों में लक्ष्मण के शक्ति द्वारा आहत होने तथा उसके उपचारार्थ हनुमान् के सजीवनी वृत्ती लाने आदि के ही मार्मिक प्रसंग मिलते हैं^२। इस रचना के केवल पदमयी होने पर भी इसमें 'सूरसागर' में कहीं अधिक प्रबधात्मकता है। यद्यपि इसमें उसका द्विरुक्ति वाला दोष भी आ गया है।^३

इस प्रकार 'गीतावली' के कई अंशों में जहाँ वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण किया गया है वहाँ अन्यत्र कई स्थलों पर इसमें 'मानस' के कुछ प्रसंगों को विशेष रूप से बढ़ा-सजा कर प्रदर्शित किया गया है और यहाँ 'सूरसागर' के आदर्श पर भी दृष्टि रखी गई है। इस रचना को हम इसी कारण, न तो एकांत रूप से 'मानस' के पहले की कह सकते हैं और न उसके पीछे निर्मित की गई ही ठहरा सकते हैं। 'गीतावली' के अंतिम पद में जो रामचरित के प्रसंगों की सूची दी गई है उसकी

जनक सुता समेत आवत गृह परशुराम अति मदहारी ।^४

पंक्ति में स्पष्ट है कि राम एवं परशुराम की भेंट का अवसर बतलाते समय कवि ने यहाँ 'रामायण' के अनुसार लिखा है, 'मानस' की भाँति नहीं, यह रचना वस्तुतः, भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे गए पदों का संग्रह है जिस कारण इसमें वर्ण्य विषय की एकरूपता सुरक्षित नहीं रह सकी है। इसमें कवि ने अपना विशेष ध्यान अपने इष्टदेव की एक मधुर भाँकी तैयार करने की ओर दिया है और इसे तदनुरूप ललित शब्दों में ही निर्मित किया है। वह इस बात में यहाँ तक रम गया है कि उसे इस ग्रंथ में राम द्वारा रावण का वध करा देना तक विस्मृत हो गया है। इसी प्रकार हनुमान् द्वारा लंका दहन किये जाने का वर्णन भी इसमें केवल एक संक्षिप्त संकेत के रूप में ही मिलता है। 'कवितावली' में इसे बहुत विस्तार दिया गया है।

३. 'राम चरित मानस' और 'कवितावली'—गो० तुलसीदास की रचना 'कवितावली' भी 'गीतावली' की ही भाँति एक संग्रह ग्रंथ है। इसमें उसके पदों के

^१ गीतावली (कि० कां०) पद १। ^२ वही, (लंका कांड) पद १०-५।

^३ वही, (बाल कांड) पद ५० तथा ५३ और पद ५५, ५६ एवं ५७।

^४ 'गीतावली' (उत्तर कांड) पद ३८।

स्थान पर कवित्त एवं सवैयें संगृहीत हैं और उसमें जो माधुर्य आया है उसकी जगह इसमें अधिकतर ऐश्वर्य का समावेश है। 'गीतावली' की भाँति 'कवितावली' भी मात काडों में विभाजित है और लगभग उसीका अनुसरण इसमें कथाओं के अंगों के चुनने में भी किया गया है। इसमें कवि ने राम-कथा के जितने प्रसंगों का वर्णन किया है उनका भी उसने पूर्णरूप नहीं दर्शाया है। अनेक स्थलों पर उसने उनके महत्त्वपूर्ण अंशों की केवल एक सदर भाँकी भर देकर छोड़ दिया है। किंतु जहाँ विस्तृत वर्णन किया है वहाँ विशद चित्र भी खींच दिया है। इसका 'उत्तर कांड' जहाँ ग्रथ के अर्द्धांश से भी बड़ा है वहाँ इसके 'अरण्य कांड' एवं 'किष्किंधा कांड' में से प्रत्येक में केवल एक ही एक छंद है। 'बालकांड' की कथा इसमें रामादि चारों भाइयों के जन्म से नहीं आरंभ होती प्रत्युत सुन्दर बालक राम के रूप एवं लीलादि से चलती है। राम एवं परशुराम की भेट इस रचना में भी विवाहोपरात करायी गई है जो 'रामायण' के अनुसार है, किंतु जो 'मानस' के विरुद्ध पड़ती है। इसमें 'अयोध्या कांड' में भी कैकेयी एवं मथुरा का सवाद अथवा राम एवं भरत का वह मिलन प्रसंग नहीं है जो 'मानस' की एक उल्लेखनीय घटना है। इसका भी आरंभ अचानक राम के वनगमन समय के दृश्य से ले कर किया गया है और उसे अत्यन्त आकर्षक भी बना दिया गया है। इस कांड के अंत में राम का मृगया में निरत रहना भी दिखलाया गया है जो 'मानस' में नहीं है।^१ 'अरण्य' एवं 'किष्किंधा' कांडों के विषय की ओर क्रमशः निर्देश मात्र करके 'सुन्दरकांड' के प्रसंगों में से रावण की बाटिका का वर्णन आरंभ कर दिया गया है। 'सुन्दर कांड' के अंतर्गत लका दहन के सजीव चित्रण में हनुमान् के पौरुष का भी प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित है^२ और 'लंका कांड' के बारह छंदों में^३ फिर उन्हीं की युद्ध-शैली का वर्णन है। 'मानस' भर में हनुमान् को इस प्रकार का महत्त्व कही भी नहीं दिया गया है। 'लंका कांड' के अंत में किया गया रावण एवं कुम्भकर्ण के बध का उल्लेख^४ एक साधारण सूचना

^१ गीतावली छंद १७-२२। ^२ 'कवितावली' (अयोध्या कांड) छंद २६-७।

^३ वही, (सुन्दर कांड) छंद ३-२८। ^४ वही, (लंका कांड), छंद ३६-४७।

^५ वही, छंद ५७।

मात्र-सा लगता है और वह उसके पहले खींचे गए समारागण के चित्रों के सामन अत्यंत हल्का प्रतीत होता है। 'मानस' के प्रबन्ध-काव्य में इस प्रकार का दोष नहीं आने पाया है और वह इस विचार से इससे कहीं उत्कृष्ट है। 'कवितावली' के 'उत्तर कांड' में राम-कथा का कोई भी प्रसंग नहीं आया है और इसके लगभग दो सौ छंदों को राम के गुणगान तथा आत्म परिचयादि से ही भर दिया गया है।

वास्तव में 'कवितावली' के अंतर्गत राम-कथा कहीं पर भी क्रमपूर्वक कहीं नहीं गई है और न इसमें उसकी घटनाओं का सुंदर विकास है। कवि ने अपने इष्टदेव राम की शक्ति और शौर्य का जहाँ वर्णन किया है वहाँ भी अधिकतर शब्द चित्रों से ही काम लिया है। राम-कथा के वे ही स्थल इस रचना में अधिक महत्त्वपूर्ण समझे गए हैं जहाँ पर उसके नायक राम का ऐश्वर्य अधिक से अधिक प्रस्फुटित हो सका है। इस कारण 'मानस' अथवा 'गीतावली' की अपेक्षा इसमें रौद्र, वीर एवं भयानकरसों का परिपाक अधिक पूर्ण और स्पष्ट है। इस ग्रंथ में गो० तुलसीदास द्वारा ऐसी शैली का भी प्रयोग हुआ है जो रीतिकालीन कवियों की ही विशेषता है। 'मानस' की कथा के साथ इसके वर्ण्य विषय की तुलना करने पर पता चलता है कि 'गीतावली' की अपेक्षा यह उसके अधिक निकट है। दोनों में केवल कुछ ही अंतर है। जान पड़ता है कि 'कवितावली' के छंदों का संग्रह 'मानस' की रचना के बहुत पीछे हुआ। कुछ लोगों का तो यहाँ तक अनुमान है कि इन्हें कवि ने किसी 'शृंग' नामक शिष्य ने संगृहीत किया था जिसका समय 'शिव सिंह सरोज' के अनुसार स० १७०८ समझा जाता है।^१

४. 'राम चरित मानस' और 'बरवै रामायण'—'गीतावली' एवं 'कवितावली' की अपेक्षा 'बरवै रामायण' एक अत्यन्त छोटी-सी काव्य रचना है। उन्हींकी भाँति इसका विभाजन भिन्न-भिन्न कांडों में हुआ है और वैसा ही यह एक संग्रह ग्रंथ भी है। इसमें कुल मिलाकर केवल ६९ छंद संगृहीत हैं। इसके 'बालकांड' की कथा का प्रारंभ राम एवं सीता के सौंदर्य-वर्णन से होता है जो कदाचित् जनकपुर के रनिवास की स्त्रियों द्वारा किया हुआ है। इसके उपरान्त धनुर्भंग तथा विवाह की

^१ शिवनन्दन सहाय : 'श्री गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३१४।

घटनाओं का केवल एक आभास मात्र दे दिया गया है। 'अयोध्या कांड' के केवल आठ छंदों में ही कैकेयी के कोप, राम के वनवास, वनगमन, ग्रामवासियों की बातचीत, गंगा माहात्म्य, गंगा-वतरण तथा वाल्मीकि मिलन की बातें भर दी गई हैं। इसी प्रकार इसके 'अरण्य कांड' में भी शूर्पणखा प्रसंग, हेम-हिरण, सीता-हरण के कारण राम के विरह जनित सताप आदि का आभास केवल छः छंदों में ही करा दिया गया है और 'किष्किंधा कांड' के दो छंदों में राम के सुग्रीवादि के साथ मिलन की ओर भक्ति कर दिया गया है। इसके 'सुंदर कांड' में केवल सीता का विरह-निवेदन तथा हनुमान् द्वारा उसका राम के प्रति कथन है और 'लंका कांड' के एकमात्र छंद में केवल सेना का वर्णन है। वास्तव में 'गीतावली' एवं 'कवितावली' की भांति इस रचना का भी 'उत्तर कांड' ही सबसे बड़ा है। किंतु उसमें उसी प्रकार राम-कथा के प्रसंग भी नहीं आते हैं। उसमें केवल राम-भक्ति, चित्रकूट-महिमा तथा कवि के कतिपय अन्य सिद्धांतों से संबन्ध रखने वाले उद्गार मात्र संगृहीत हैं।

'बरवै रामायण' में राम एवं सीता-संबन्धी श्रृंगारिक भावों के आ जाने से इस कवि की प्रारम्भिक रचना समझने की परंपरा है। इसकी कुछ पंक्तियों में तो लोग अत्यंत साधारण कोटि के शृंगार के ही उदाहरण देखते हैं और उन्हें मर्यादा रक्षा के प्रेमी गो० तुलसीदास की रचना मानने में सकोच करते तथा उन्हें क्षेपक तक ठहराने लग जाते हैं। परन्तु 'मानस' की बहुत-सी पंक्तियों के साथ इसकी अनेक पंक्तियों और पदावलियों का इतना मेल खाता है^१ कि इसके तुलसीकृत कहने में बहुत कठिनाई नहीं आ पाती। इसके सिवाय 'बरवै रामायण' की कुछ पंक्तियों के विषय तथा वर्णन-शैली से यह भी पता चल जाता है कि इसका संग्रह संभवतः 'मानस' के पीछे ही हुआ होगा। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि ये गो० तुलसीदास की वृद्धावस्था की रचनाएं हैं जब उन पर अपने भावी अंत का प्रभाव कुछ न कुछ पड़ने लग गया था। इसकी राम-कथा सर्वत्र अधूरी-सी लगती है, इसलिए

^१ दे० विशेषतः 'बरवै रामायण' छंद २०-२२, ३६ आदि।

^२ दे० वही, छंद ६५, ६७-९।

यह भी संभव है कि इसकी पूर्ण प्रति अभी तक प्रकाशित ही नहीं हुई है।

५. 'राम चरित मानस' तथा 'रामलला नहछू' और 'जानकी मंगल'—
'रामलला नहछू' और 'जानकी मंगल' गो० तुलसीदास की वे रचनाएँ हैं जिनमें कवि ने राम-कथा का वर्णन केवल उसके आशिक रूपों में ही किया है, 'रामलला नहछू' उनकी सर्वप्रथम कृति समझी जाती है। यह उसके केवल २० सोहर छंदों की रचना है और इसका विषय, संभवतः यज्ञोपवीत के समय की 'नहछू' विधि का वर्णन है। इसमें आये हुए 'दूल्हा', 'वर' तथा 'मायन' जैसे शब्दों को देख कर कुछ लोग इसे विवाह के समय की 'नहछू' विधि मानते जान पड़ते हैं। किंतु ऐसे शब्दों के प्रयोग स्त्रियों द्वारा, गीतों में, उपनयन के समय भी किये गए पाये जाते हैं। इसके सिवाय 'कोटिन्ह बाजन बाजहि दशरथ के गृह हो'^१ तथा 'आजु अवधपुर आनंद नहछू रामक हो'^२ में 'अयोध्या' एवं 'दशरथ के घर' के स्पष्ट उल्लेखों से भी यह बात असादिग्ध हो जाती है। राम के धनुर्भंग के अनंतर और विवाह के पहले अयोध्या में रहने का किसी भी राम-चरित में कोई संकेत नहीं मिलता। 'मायन' वा मातृका पूजन भी, एक ऐसी प्रथा है जो विवाह की भाँति यज्ञोपवीत के समय भी प्रचलित है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने तो इसकी पंक्ति—

कौशल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।

नहछू जाइ करावहु बंठि सिंहासन हो॥^३

मे राजा दशरथ के किसी ज्येष्ठ भ्राता के अभाव में, कौशल्या की किसी जेठानी के भी न होने से, ग्रंथ रचयिता की ऐतिहासिक भूल तक की शंका उठाई है^४ और, इसके अतिरिक्त, इसमें कुछ प्रबंध दोष निकाले हैं। परंतु क्या ऐसे अवसर पर किसी मगी जेठानी का ही होना अनिवार्य है? क्या किसी निकट संबंध के कारण, कोई दूसरे घर की स्त्री कौशल्या की जेठानी नहीं कही जा सकती थी? साधारण परि-

^१ 'रामललानहछू' छंद २। ^२ वही, छंद १३। ^३ वही, छंद ९।

^४ डा० मा० प्र० गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग), पृ० २१५-६।

वारों में तो यह बराबर देखा जाता है कि ऐसे उत्सवों में निमंत्रित अन्य परिवारों को स्त्रियाँ भी पूर्ण सहयोग प्रदान करती हैं। डा० गुप्त ने जिन पंक्तियों में प्रबंध दोष देखे हैं उनका भी समाधान इस बात से हो जा सकता है कि यह ग्रंथ कवि की प्रारम्भिक रचना है। इसमें उसने नहछू की विधि का वर्णन, दशरथ के सारे परिवार को एक साधारण परिवार की ही स्थिति में रख कर, किया है और इस दृष्टि से देखने पर यह रचना लोक-संस्कृति का वर्णन करने वाली एक उत्कृष्ट कृति भी मानी जा सकती है।

रामादि के यज्ञोपवीत संस्कार का वर्णन 'मानस' अथवा गो० तुलसीदास के अन्य किसी ग्रन्थ में भी किया गया नहीं मिलता। 'मानस' में केवल इतना ही कहा गया है कि "भए कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।"^१ 'रामाज्ञा प्रश्न' में भी—

करनबध चूड़ाकरन, श्री रघुबर उपवीत।

समय सकल कल्याण मय, मंजुल मंगल गीत ॥२॥^२

मात्र कहा गया है। किन्तु उनकी 'जानकी मंगल' नामक रचना के अंत में आता है—

उपवीत व्याह उछाह जे सियराम मंगल गावहीं।

तुलसी सकल कल्याण ते नर, नारि अनुदिनु पावहीं ॥२१६॥^३

जिसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि कवि को न केवल राम-विवाह सम्बन्धी अपितु उनके उपनयन विषयक गीत भी एक ही समान कल्याणप्रद जान पड़ते थे और इसके निमित्त भी उनका लिख देना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। 'रामलला नहछू' की रचना के संबंध में केवल इतना ही कह सकते हैं कि उसका इसमें यज्ञोपवीत-संस्कार का पूरा वर्णन न करके केवल उसके एक अंग मात्र पर ही

^१ 'राम चरित मानस' (बाल कांड) दो० २०४।

^२ 'रामाज्ञा प्रश्न' सर्ग १ सप्तक ३ दो० २।

^३ 'जानकी मंगल' छंद २१६।

लिखने बैठना कुछ अनोखी-सी बात अवश्य जान पड़ती है जो इसके गीतमयी तथा प्रारंभिक होने के कारण, ठीक ही समझी जा सकती है।

‘जानकी मंगल’ गो० तुलसीदास की एक ऐसी रचना है जिसमें उन्होंने अपने विषय को संक्षिप्त न करके उसे विस्तार देने की चेष्टा की है। इसका वर्ण्य विषय केवल राम एवं सीता का वर्णन करना है, किंतु उन्होंने इसमें इस प्रकार लिखा है—“तिरहुत नामक सुंदर देश के राजा जनक सर्वगुण सम्पन्न नरेश थे और उनकी पुत्री सीता भी कल्याणी थी। उसके वयस्क हो जाने पर उन्होंने उसके विवाहार्थ स्वयंवर की रचना की जिसमें देश-देशांतर के राजा निमंत्रित हुए और उसमें दानव, किन्नरादि तक ने सुंदर रूप धारण करके भाग लिया। उसी समय विश्वामित्र मुनि अयोध्या पहुंचे और वहाँ के राजा दशरथ से उनके दो लड़के राम एवं लक्ष्मण को उनसे अपने यहाँ माँग ले गए। इन दोनों भाइयों ने ताड़का को मार कर मुनि के यज्ञ की रक्षा की और उन्होंने इन्हे विद्या एवं मंत्रों की शिक्षा दी। विश्वामित्र फिर इन्हे अपने साथ लेकर जनकपुर का धनुष यज्ञ देखने गए जहाँ उन्होंने इनका परिचय राजा जनक से कराया और जनक ने उन सभी को यज्ञशाला दिखलायी। विश्वामित्र ने यज्ञशाला के रचना-कौशल की प्रशंसा की और वे दोनों भाइयों के साथ उच्चासनो पर बैठ गए। धनुष की कठोरता के कारण वहाँ उपस्थित सभी नर नारियों के हृदय में राम के उसे तोड़ पाने में संदेह था। किंतु जब सीता स्वयंवर में लायी गई और बंदीगण ने राजा जनक का प्रण कह सुनाया तथा अनेक अविवेकी राजा धनुष उठाने तक में भी असफल रहे तो विश्वामित्र का आदेश पा कर उन्होंने उसके दो टुकड़े कर दिये। इस पर सीता ने राम के गले में जयमाला पहनाई और जनक ने विश्वामित्र के आदेश से इस बात की सूचना अयोध्या भेज दी। तदनुसार राजा दशरथ बारात ले कर जनकपुर पहुँचे जहाँ उनका स्वागत-सत्कार हुआ और कुलाचार एवं वेदाचार के साथ राम और सीता का विवाह हुआ। उसी समय अन्य तीन भाइयों की भी विवाह-विधि सम्पन्न हुई और बहुत-सी वस्तु, दायज में पाकर बारात अयोध्या लौटी। लौटते समय, बाजो का बजना तथा जन कोलाहल सुनकर, मार्ग में परशुराम बिगड़ते हुए राम से मिले और राम ने उन्हें शांत किया। बारात के अयोध्या लौट आने पर भी बहुत बड़ा

उत्सव मनाया गया और सब लोगो ने प्रमत्न होकर चारों जोड़ियों को आशीर्वाद दिया।”

‘जानकी मंगल’ की कथा के उक्त सारांश से प्रकट होता है कि वह वस्तुतः वही है जो वाल्मीकीय ‘रामायण’ अथवा ‘मानस’ में दी गई है। परन्तु उन दोनों के विवाह सत्रधो पूरे वर्ण्य विषय के साथ इसकी तुलना करने पर जान पड़ता है कि एक ओर जहाँ यह रचना ‘रामायण’ का अनुसरण करती है वहाँ दूसरी ओर इसका अधिक मेल ‘मानस’ की वर्णन-शैली से खाना है। ‘रामायण’ के राम राजकुमार हैं जहाँ ‘मानस’ में वे इष्टदेव बन जाते हैं। अतएव, कथा-प्रसंगों की दृष्टि से ‘रामायण’ पर पूरा ध्यान रखते हुए भी, इसमें ‘मानस’ के रचयिता ने कई बातों का समावेश कर दिया है। इसमें विश्वामित्र राम और उनके भाइयों को, अयोध्या में पहले-पहल, देखते ही उन पर मुग्ध हो जाते हैं और उनके आनंदाश्रु आने लगते हैं।^१ जनक तथा जनकपुर के अन्य नर-नारियों की भी दशा राम एवं लक्ष्मण के मौदर्य को देखकर प्रायः इसी प्रकार की हो जाती है।^२ धनुर्भङ्ग के पहले लक्ष्मण का शेष नाग को, पृथ्वी को बलपूर्वक पकड़े रहने के लिए मजग करना^३ तथा कवि द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के रस्मों का विवाह के समय वर्णन किया जाना ‘रामायण’ में नहीं है। इसके विपरीत वाल्मीकीय ‘रामायण’ में जहाँ, विश्वामित्र के साथ राम एवं लक्ष्मण के जाते समय, कई बाह्य प्रसंगों का उल्लेख हुआ है वहाँ ‘जानकी मंगल’ में उनकी चर्चा नहीं आती और ताड़का बध भी यहाँ पर केवल कुछ ही शब्दों में करा दिया जाता है।^४ यहाँ पर गौतम नारी का भी उद्धार कर के और उसे अपने पति के घर भेजकर शीघ्र राम जनक नगर चल देते हैं।^५ ‘रामायण’ की भाँति न उसे प्रणाम करते हैं और न उससे सत्कृत होते हैं।

परन्तु ‘जानकी मंगल’ की कथा सर्वत्र ‘मानस’ की कथा का भी अनुसरण नहीं करती। इस रचना में जनकपुर का वह बाटिका प्रसंग नहीं आता जो ‘मानस’ के अंतर्गत एक बहुत ही सुन्दर और आकर्षक स्थल समझा जाता है। इसमें राम एवं

^१ ‘जानकी मंगल’ छंद २०।

^२ वही, छंद ६१-३।

^३ वही छंद ११०।

^४ दे० ‘बधी ताड़का’ छंद ४०।

परशुराम की भेंट भी बारात के विवाहोपरांत अयोध्या लौटते समय, मार्ग में होती है^१ और यहाँ पर लक्ष्मण एवं परशुराम का 'मानस' वाला संवाद भी नहीं दीख पड़ता। इसके सिवाय 'मानस' के जनक जहाँ विवाह का निमंत्रण अपने दूतों द्वारा अयोध्या भेजते हैं वहाँ यहाँ पर अपने 'कुलगुरु' द्वारा^२ 'जानकी मंगल' की वर्णन-शैली तथा उसके कतिपय प्रसंगों पर भी वाल्मीकीय 'रामायण' की अपेक्षा 'अध्यात्म रामायण' का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। फिर भी 'जानकी मंगल' तथा 'मानस' में बहुत अधिक साम्य है और कई स्थलों पर तो 'मानस' की शब्दावली तक इसमें उद्धृत कर ली गई है। जैसे,

१. देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह विवेह विराग विरागेउ ॥^३ (जा० मं०)
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ विदेहु विदेहु बिसेखी॥^४ मानस
२. पन परिहरि सिय देव जनक वर श्यामहिं ॥^५ (जा० मं०)
पन परिहरि हठि करे विवाह ॥^६ (मानस)
३. चतुर नारि वर कुंवरिहि रीति सिखावहिं।
देहि गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं ॥^७ (जा० मं०)
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन नारद कहें ॥^८ (मानस)
४. सीय सहित सब सुता सौँपि कर जोरहिं।
बार बार रघुनार्थहिं निरखि निहोरहिं ॥^९ (जा० मं०)
करि विनय सिय रामहिं समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहें^{१०} मानस
५. परेउ निसानहिं घाउ राउ अवधहिं चले।
सुरगान वरषहिं सुमन सगुन पावहिं भले ॥^{११} (जा० मं०)

^१ 'जानकी मंगल', छंद १९९-२००। ^२ वही, छंद १२६। ^३ वही, छंद ४६।

^४ 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० २१५। ^५ 'जानकी मंगल' छंद ६४।

^६ 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० २२२। ^७ 'जानकी मंगल' छंद १६७।

^८ 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० ३२५। ^९ 'जानकी मंगल' छंद १८७।

^{१०} 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० ३३६। ^{११} 'जानकी मंगल' छंद १९०।

सुर प्रसून वरषाहिं हरषि करहिं अपछरा गान ।

चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान ॥^१। (मानस)

अतएव, हो सकता है कि 'जानकी मंगल' 'मानस' के कुछ ही पूर्व लिखा गया हो। गो० तुलसीदास ने 'जानकी मंगल' की ही भाँति 'पार्वती मंगल' की भी रचना की है जिसका परिचय 'मानस' की तुलना के साथ, इसके पहले दिया जा चुका है। इन दोनों मंगलों में भी कवि ने, 'रामलला नहछू' की भाँति ही, लोक-संस्कृति के कतिपय अंगों का वर्णन बड़ी निपुणता के साथ किया है।

(६) 'राम चरित मानस' तथा 'विनय पत्रिका' और 'दोहावली'—'विनय पत्रिका' गो० तुलसीदास द्वारा अपने इष्टदेव राम के प्रति लिखकर उनकी सेवा में विधिवत समर्पित किया जाने वाला, एक आवेदन पत्र है जो वस्तुतः कवि के दो सौ उन्नीस पदों का एक संग्रह-सा दीख पड़ता है। इसमें अपने प्रभु से आत्मनिवेदन करने के पहले उनके निकटवर्ती व्यक्तियों की वंदना और उनसे सहायतार्थ प्रार्थना भी की गई है। अतएव, इस रचना में कहीं राम-कथा की चर्चा करने की कोई वैसी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। फिर भी कवि ने इसके एक पद में ब्रह्म राम के 'व्यक्त लीलावतारी' रूप का वर्णन करते समय, उसके विविध प्रसंगों की एक सूची प्रस्तुत कर दी है जिसमें राम के 'ऋषि मखपालन' से लेकर उनके 'सौमित्रि सीता सचिव सहित' 'पुष्पकारूढ़' होकर अवध लौटने तथा राज्यभार स्वीकार करने तक के विवरण आ जाते हैं।^१ इस सूची में 'गीतावली' के अंतिम पद की भाँति, परशुराम वाले प्रसंग को विवाह के अनंतर नहीं रखा गया है। इसमें 'मानस' का ठीक अनुसरण है। 'विनय पत्रिका' गो० तुलसीदास के अंतिम दिनों की रचनाओं में से एक समझी जाती है जब 'रामायण' के सभी प्रसंगों को उसीके क्रमानुसार देना उनकी दृष्टि में आवश्यक नहीं रह गया था और जब स्वयं उनका अपना 'मानस' ग्रंथ भी भलीभाँति प्रसिद्ध हो चुका था।

गो० तुलसीदास की 'दोहावली' नामक रचना में कुल ५७३ दोहे, सोरटे संगृहीत हैं जिनमें से लगभग आधे उनकी अन्य कृतियों से लिये गए हैं। इस ग्रंथ का प्रधान

^१ 'राम चरित मानस' (बा० का०) दो० ३३९। ^२ 'विनय पत्रिका' पद ४३।

विषय भक्ति, नाम-माहात्म्य, नीति, भक्तों की रीति आदि का वर्णन है और इसके सभी पद्य फुटकर-से ही लगते हैं। किन्तु इस रचना के अंतर्गत भी वे राम-कथा की जहाँ-तहाँ चर्चा कर देना नहीं भूल सके हैं। इसके प्रारंभिक दोहों में वे पंचषटी के 'बटविटप' के नीचे तथा चित्रकूट में, सीता एवं लक्ष्मण के साथ निवास करने वाले राम का ध्यान करते हैं।^१ फिर बालक राम के अपने बाल-बंधुओं के साथ बाल-विनोद करने तथा 'राज अजिर' में सुंदर दीख पड़ने वाले स्वरूप का वर्णन करते हैं।^२ वे इसमें बालि एवं सुग्रीव के स्वभाव को भी नहीं भूलते, प्रत्युत सुग्रीव के प्रति प्रदर्शित राम की दयालुता तक की ओर संकेत कर देते हैं^३ और इसी प्रकार विभीषण के अपने भाई रावण का परित्याग कर राम से आ मिलने तथा राम द्वारा उन्हें लंका का राज्य दिये जाने की भी चर्चा करते हैं।^४ 'दोहावली' के दोहों में 'गीधपति जटायु' के अपनी करणी के कारण राम की गोद में मर कर मुक्त होने का भी प्रसंग आता है^५ और इसमें अन्यत्र राम-राज्य की प्रशंसा भी की गई है।^६ परन्तु इस प्रकार बिखरे हुए प्रसंगों के क्रमिक रूप में आने के कारण उनकी तुलना 'मानस' के वर्ण्य विषय के साथ करना कठिन है।

उपसंहार

गो० तुलसीदास की जीवनी की रूपरेखा इस समय केवल यत्किंचित् सामग्रियों के ही आधार पर निर्मित की जा सकती है। वह प्रत्यक्षतः धुंधली और अधूरी होगी। परन्तु उसके क्षीण संकेतों से भी स्पष्ट हो जाता है कि उसके बाल्यकाल की हीनावस्था, प्रौढ वयस की अवमानता तथा उनके अंतिम दिनों की शारीरिक

^१ 'दोहावली', दोहा ३-४।

^२ वही, दोहा ११७-२२।

^३ वही, दोहा १५७-८।

^४ वही, दोहा १५९-६६।

^५ वही, दोहा २२२-७।

^६ वही, दोहा १८२-६।

व्याधियों ने उनकी मनोदशा को क्रमशः एक निश्चित दिशा की ओर पूर्ण रूप में मोड़ दिया था। वे अपने को सभी प्रकार से अकिंचन, अपमानित और असहाय मानने लगे थे, और साधु-महात्माओं के सत्संग में आ कर, वे संसारकी ओर से पूरे विरक्त भी हो गए थे। फलतः उनके गुरु ने जो उन्हें उनके वचन में 'राम भजन' की दीक्षा दी थी वह समय पा कर उनके लिए सुदृढ़ अवलंब बन गई और जो 'राम-कथा' उन्होंने उनके मुख से सुनी थी वह उनकी जीवन-यात्रा के लिए एक आवश्यक संबल सिद्ध हुई। उनके हृदय में जागृत हुआ दैन्यभाव व्यक्तित्व का एक प्रमुख अंग बन चुका था जिसे उन्होंने अपने इष्टदेव की ओर उन्मुख कर दिया और उस राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को परमोच्च आदर्श का स्थान दे दिया। वे आजीवन अपने राम के एकांतनिष्ठ भक्त बने रह गए और उस दीर्घकाल के अंतर्गत जो कुछ उन्होंने साहित्य-रचना की उसका विषय उन्होंने केवल राम-भक्ति अथवा राम-चरित को ही बनाया।

राम-चरित उनके लिए कोई एक साधारण विषय नहीं था और न उन्होंने उसका वर्णन अन्य साधारण कवियों की भाँति किया। उन्होंने उसे राम-भक्ति का भी परमावश्यक साधन बना डाला और केवल उसीके आधार पर उन्होंने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना की। राम-चरित का महत्त्व उनके समक्ष बहुत बड़ा था और वे चाहते थे कि उसके द्वारा सब किसी का कल्याण हो। इस कारण उन्होंने इस विषय को ले कर अपने समय की प्रचलित प्रायः सभी शैलियों में काव्य-रचना की। इनमें से किसी ग्रंथ में उन्होंने यदि उक्त विषय के एक अंग को अधिक महत्त्व दिया तो दूसरे में किसी दूसरे अंग पर अधिक प्रकाश डाला। किन्तु उसके मूल को नहीं छोड़ा और अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना 'राम चरित मानस' के अंतर्गत उन्होंने उसका एक सर्वांगपूर्ण रूप उपस्थित कर दिया। इस ग्रंथ को लिखते समय उन्होंने अपने सामने जो आदर्श रखा वह अत्यंत उच्चकोटि का था। उन्होंने इसके प्रारंभिक अंशों में ही कह दिया था—

हृदय सिंधु मति सीपि समाना । स्वाती सारव कहँहि सुजाना ॥

जौ बरखे बर वारि बिचारू । होहि कीचित मुकुता मनि चारू ॥

जुगुति बेधि पुनि पोहि अहि, राम चरित वर ताग ।

पहिरहि सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥^१

अतएव 'राम चरित मानस' ही, स्वभावतः उनके सभी उक्त अन्य राम-चरित ग्रंथों के लिए भी मानदंड बन गया ।

परन्तु, 'मानस' की 'राम-कथा' गो० तुलसीदास की कोई अपनी देन नहीं थी । वह उनके शताब्दियों पहले से एक व्यापक एवं लोकप्रिय विषय बन चुकी थी और उसके किसी एक विशिष्ट रूप का ही श्रवण उन्होंने अपने गुरु के मुख से किया था । इस विषय का बीजारोपण कदाचित् वैदिक युग में ही हो चुका था और वह पहले केवल आख्यानो के ही रूप में प्रचलित था । किन्तु समय पा कर फिर वह कभी लिपिबद्ध भी हो गया और उसका एक सुव्यवस्थित रूप वाल्मीकीय 'रामायण' में दीख पड़ा जो आगे चल कर संस्कृत के अतिरिक्त अन्य अनेक देशी तथा विदेशी भाषाओं में भी प्रवेश पा गया । उसके अन्य कुछ रूपों का पता हमें बौद्ध तथा जैन राम-कथाओं में चलता है जिनका प्रभाव विदेशों में ही अधिक रहा । किन्तु इन सभी का पारस्परिक मेल-जोल तथा आदान-प्रदान के कारण उसके मौलिक रूप को पहचान पाना उतना कठिन नहीं था । 'राम-कथा' के दीर्घकालीन इतिहास से हमे उसके क्रमिक विकास का भी पता चलता है और उससे सिद्ध हो जाता है कि 'मानस' में उसका रूप एक युग विशेष का प्रसाद बनकर प्रकट हुआ और इसी कारण उसमें तथा 'रामायण' की कथा-वस्तु में हमें कुछ अंतर भी प्रतीत होता है । 'मानस' के राम 'रामायण' के नायक की भाँति केवल एक आदर्श चरित्रवान् व्यक्ति ही नहीं है, प्रत्युत भवतो के प्रभु और सर्वस्व भी है ।

'राम चरित मानस' की रचना करते समय तक गो० तुलसीदास ने अनेक प्रकार के ग्रंथों का अध्ययन कर लिया था । उन ग्रंथों के अनुशीलन, सत्संग तथा निजी अनुभवों द्वारा उपलब्ध की गई सभी बातों का उन्होंने उसमें समावेश किया और उसकी कथा में इस प्रकार बहुत-सी ऐसी भी बातें आ गईं जो 'रामायण' की दृष्टि से नवीन भी कही जा सकती थी । 'मानस' के पहले तक लिखे गए उनके

^१ 'राम चरित मानस' (बाल कांड) दो-चौ० ११ ।

रामचरित-संबंधी ग्रंथों में 'रामायण' की कथा के अनुसरण की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। जैसे-जैसे वे इन ग्रंथों की रचना करते गए हैं वे उसमें प्रवृत्ति और परिस्थिति के अनुसार कुछ न कुछ फेरफार करते गए हैं और इन्हे अधिक सुंदर एवं सुव्यवस्थित भी बनाते गए हैं। 'मानस' के पीछे की ऐसी रचनाएं केवल संग्रह ग्रंथों के ही रूप में आती हैं जिन पर दोनों समय का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। किन्तु 'मानस' की मूल कथा पर यदि विचार किया जाय तो पता चलेगा कि उसका रूप उसके सभी ऐसे ग्रंथों में प्रायः एक-सा ही है। वास्तव में यह 'रामायण' की भी कथा-वस्तु से अधिक भिन्न नहीं है और जो कुछ अंतर इनमें दीख पड़ता है वह प्रसंगों के क्रम भेद का है। 'रामायण' में उन्हें जिस क्रम में रखा गया है उसमें गो० तुलसीदास ने अपने दृष्टिकोण से कुछ अंतर ला दिया है।

'मानस' की राम-कथा वस्तुतः वही है जो कई शताब्दियों से प्रचलित है और परिस्थितियों के अनुसार कई भिन्न-भिन्न रूपों में दीख पड़ती है। उसके पात्र प्रधानतः वे ही हैं जो मूल कथा के थे और उसकी प्रमुख घटनाओं में भी कोई विशेष अंतर नहीं है। किन्तु 'मानस' के रचयिता ने उसे अपने एक दृष्टिकोण विशेष से देखा है और उस पर अपने व्यक्तित्व विशेष का रंग चढ़ा दिया है। फलतः उसने उसका वर्णन करते समय उसमें अपनी ओर से तदनुकूल बातें जोड़ दी हैं और संपूर्ण रचना को अपनी निजी शैली में निर्मित कर उसे एक ऐसा रूप दे दिया है जो सर्वथा नवीन-सा लगता है और जो इसी कारण अधिक आकर्षक भी हो गया है। 'मानस' में न केवल एक महाकाव्य के गुण आये हैं, अपितु उसमें एक भक्तिकाव्य की भी सभी विशेषताएं पायी जाती हैं। इन सबके साथ उसमें वह लोक-संस्कृति की स्वच्छ धारा भी प्रवाहित होती है जिसके परिचित जल में मज्जन करने के लिए सर्वसाधारण शीघ्र दौड़ पड़ते हैं। 'मानस' के लोकप्रिय होने का यही सबसे बड़ा रहस्य है कि उसमें सभी कोटि के व्यक्तियों के लिए अपनी वस्तु मिल जाती है।

पूर्वाह्न

मानस की राम-कथा

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर बदन ।
 करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन ॥
 बंदौ गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि ।
 महा मोह तम पुज जासु बचन रबिकर निकर ॥

गुर पद रज मृदु मंजुल^१ अंजन । नयन अमिअं दृग दोष बिभंजन ॥
 तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन । बरनौ रामचरित भव मोचन ॥
 जागबलिक जो कथा सुहाई^२ । भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई ॥
 कहिहौं सोइ संवाद बखानी । सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी ॥
 संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । ऋहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥
 सोइ सिव कागभुसुडिहि दीन्हा । राम भगति अधिकारी चीन्हा ॥
 तेहि सन जागबलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
 औरौ जे हरिभगत सुजाना । कहहि सुनहि समुझहि बिधि नाना ॥

दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत ।
 समुझी नहि तसि बालपन तब अति रहेउं अचेत ॥

तदपि कही गुर बारहि बारा । समुझि परी कछु मति अनुसार ॥
 भाषाबद्ध^३ करबि मैं सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥
 जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें । तस कहिहौं हिअं हरि कें प्रेरें ॥
 संबत सोरह सैं एकतीसा । करौं कथा हरिपद धरि सीसा ॥

^१ मृदु मंजुल रज ।

^२ सुनाई ।

^३ भाषाबंध ।

नौमी भौमवार मधु मासा । अवधपुरी^१ यह चरित प्रकासा ॥
 राम चरित मानस एहि नामा । सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा ॥
 रचि महेश निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ॥
 ताते राम चरित मानस बर । धरेउ नाम हिअँ हेरि हरषि हर ॥
 संभु प्रसाद सुमति हिअँ हुलसी । राम चरित मानस कवि तुलसी ॥
 करै^२ मनोहर मति अनुहारी । सुजन सुचित सुनि लेहुँ सुधारी ॥

दो०—मति अनुहारि सुवारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ ।

सुमिरि भवानी संकरहि कह कवि कथा सुहाइ ॥

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना बिधि करहीं ॥
 तब तब कथा मुनीसन्ह गाई^३ । परम पुनीत प्रबंध बनाई^४ ॥
 हरि अनंत हरिकथा अनंता । कहहि सुनिहि बहुबिधि सब संता ॥
 अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ । बेदबिदित तेहि दसरथ नाऊ ॥
 धर्म धुरंधर गुननिधि ज्ञानी । हृदयँ भगति मति सारंगपानी ॥

दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत ।

पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल विनीत ॥

एक बार^५ भूपति मन माहीं । भै गलानि मोरे सुत नाही ॥
 गुर गृह गएउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि बिनय बिसाला ॥
 निज दुख सुख स्रव गुरहि सुनाएउ । कहि बसिष्ठ बहु विधि सभुभाएउ ॥
 धरहु धीर होइहि सुत चारी । त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी ॥
 श्रुगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा । पुत्रकाम सुभ^६ जग्य करावा ॥
 भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे । प्रगटे अगनि चरु कर लीन्हे ॥
 जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा । सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥
 येह हबि बाँटि देहु नृप जाई । जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥

^१ अवधपुरी ।

^२ करर ।

^३ तब तब कथा मुनीसन्ह गाई; तब तब कथा बिचित्र सुहाई ।

^४ परम विचित्र प्रबंध बनाई; परम पुनीत मुनीसन्ह गाई ।

^५ मन्ने ।

^६ लनि ।

दो०—तब अदृश्य भए पावक सकल सभहि समुभाइ ।

परमानंद मगन नृप हरष न हृदय समाइ ॥

तबहि राय प्रिय नारि बोलाई । कौसल्यादि तहां चलि आई ॥
अर्द्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा । उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥
कैकेई कहँ नृप सो दएऊ । रह्यो सो उभय भाग पुनि भएउ ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि । दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥
एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी । भई हृदय हरषित सुख भारी ॥
जा दिन तें हरि गर्भहि आए । सकल लोक सुख संपति छाए ॥
मंदिर महुँ सब राजहि रानी । सोभा सील तेज की खानी ॥
सुख जुत कछुक काल चलि गएऊ । जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएऊ ॥

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल ।

चर अरु अचर हरष जुत राम जनम सुख मूल ॥

नौमी तिथि मधु मास पुनीता । सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा । पावन काल^१ लोक बिश्रामा ॥
सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम चलि आई सब रानी ॥
हरषित जहँ तहँ धाई दासी । आनंद मगन सकल पुर बासी ॥
दसरथ पुत्रजन्म सुन काना । मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ॥
परमानंद पूरि मन राजा । कहा बुलाइ बजावहु बाजा ॥
गुर बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा । आए द्विजन्ह सहित नृपद्वारा ॥
अनुपम बालक देखिन्हि जाई । रूप रासि गुन कहि न सिराई ॥

दो०—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह ।

हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ । सुंदर सुत जनमत में ओऊ ॥
वोह सुख संपति समय समाजा । कहि न सकै सारद अहिराजा ॥
कछुक दिवस बीते, एहि भाँती । जात न जानिअ दिन अरु राती ॥

नामकरन कर अवसर जानी । भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी ॥
 करि पूजा भूपति अस भाखा । धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा ॥
 इन्हकें नाम अनेक अनूपा । मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥
 जो आनंदसिधु सुखरासी । सीकर तें त्रैलोक सुपासी ॥
 सो सुखधाम राम अस नामा । अखिल लोक दायक विश्रामा ॥
 बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ॥
 जाकें सुमिरन तें रिपु नासा । नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥

दो०—लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार ।

गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार ॥

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी । बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ॥
 बारेहि तें निज हित पति जानी । लछिमन राम चरन रति मानी ॥
 भरत सत्रुहन दूनौ भाई । प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ ॥
 स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी । निरखहि छबि जननीं तून तो ॥
 चारिउ सील रूप गुन धामा । तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥
 कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना । मातु दुलारै कहि प्रिय ललना ॥
 लै उछंग कबहुँक हलरावै । कबहुँ पालने घालि भुलावै ॥

दो०—प्रेम मगन कौसल्या निस दिन जात न जान ।

सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान ॥

बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा । अति अनंद दासन्ह कहें दीन्हा ॥
 कछुक काल बीते सब भाई । बड़े भए परिजम सुखदाई ॥
 चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई । बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ॥
 परम मनोहर चरित अपारा । करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥
 भए कुमार जबहिं सब भ्राता । दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥
 गुरु गृह गए पढ़न रघुराई । अल्प काल बिद्या सब पाई ॥
 बिद्या बिनय निपुन गुन सीला । खेलहि खेल सकल नृपलीला ॥
 करतल बान धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥

दो०—कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल ।

प्राणहुँ तें प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल ॥

बंधु सखा सँग लेहि बुलाई । बन मृगया नित खेलहि जाई ॥
पावन मृग मारहि जिअ जानी । दिन प्रति नृपहि देखावहि आनी ॥
अनुज सखा सँग भोजन करहीं । मातु पिता अज्ञा अनुसरहीं ॥
जेहि बिधि सुखी होहि पुर लोगा । करहि कृपानिधि सोइ संजोगा ॥
वेद पुरान सुनिहि मन लाई । आपु कहहि अनुजन्ह समुभाई ॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा । मातु पिता गुर नावहि माथा ॥
आयसु माँगि करहि पुर काजा । देखि चरित हरषै मन राजा ॥

दो०—व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप ।

भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप ॥

यह सब चरित कहा मैं गाई । आगिलि कथा सुनहु मन लाई ॥
बिस्वामित्र महामुनि ज्ञानी । बसहि बिपिन सुभ आश्रम जानी ॥
जहँ जप जज्ञ जोग मुनि करहीं । अति मारीच सुबाहुहि डरहीं ॥
देखत जज्ञ निसाचर धावहि । करहि उपद्रव मुनि दुख पावहि ॥
गाधितनय मन चिता व्यपी । हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी ॥
एहँ मिस देखौ^१ पद जाई । करि बिनती आनौं दोउ भाई ॥

दो०—बहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहि बार ।

करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार ॥

मुनि आगमन सुना जब राजा । मिलन गएउ लै बिप्र समाजा ॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी । निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥
बिबिध भांति भोजन करवावा । मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा ॥
पुनि चरननि मेले सुत चारी । राम देखि मुनि देह बिसारी ॥
तब मन हरषि बचन कह राऊ । मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा । कहहु सो करत न लावौं बारा ॥
असुर समूह सतावहि मोही । मैं जाचन आएउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा । निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥

^१ एहि मिस में देखौं पद; यहि मिसु देखौं प्रभु पद ।

दो०—देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अज्ञान ।

धर्म सुजस प्रभु तुम्हकौ^१ इन्ह कहँ अति कल्यान ॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी । हृदय कंप मुखदुति कुमुलांनी ॥
चौथेंपन पाएउँ सुत चारी । अप्रि बचन नहिं कहेहु बिचारी ॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं ॥
सब सुत प्रिय^२ प्रान की नाई । राम देत नहिं बनै गुसाईं ॥
सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी । हृदयें हरष माना मुनि ज्ञानी ॥
तब वसिष्ठ बहु बिधि समुभावा । नृप संदेह नास कहँ पावा ॥
अति आदर दोउ तनय बोलाए । हृदयें लाइ बहु भांति सिखाए ॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ । तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥

दो०—सौपे भूप रिपिहि सुत बहु बिधि देइ असीस ।

जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस ॥

अरुन नयन उर बाहु बिसाला । नील जलज तनु स्याम तमाला ॥
कटि पट पीत कसे बर भाथा । रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । बिश्वामित्र महानिधि^३ पाई ॥
चले जात मुनि दीन्हि देखाई । सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा । दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥
तब रिषि निज नाथहि जिअं चीन्ही । बिद्यानिधि कहँ बिद्या दीन्ही ॥
जा तें लाग न छुधा पिआसा । अतुलित बल तनु तेज प्रकासा ॥

दो०—आयुध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि ।

कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति^४ हित जानि ॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई । निर्भय जज्ञ करहु तुम्ह जाई ॥
होम करन लागे मुनि भारी । आपु रहे मख की रखवारी ॥
सुन मारीच निसाचर कोही^५ । लै सहाय धावा मुनि द्रोही ॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा । सत जोजन गा सागर पारा ॥

^१ तुम्हकहुँ ।

^२ प्रिय मोहि; प्रिय मम ।

^३ भगत ।

^५ क्रोही ।

पावकसर सुबाहु पुनि मारा^१ । अनुज निसाचर कटकु सँधारा ॥
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया । रहे कीन्हि बिपन्ह पर दाया ॥
तब मुनि सादर कहा बुझाई । चरित एक प्रभु देखिअ जाई ॥
धनुष जज्ञ सुनि^२ रघुकुलनाथा । हरषि चले मुनिबर के साथी ॥
आश्रम एक दीख मग माहीं । खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी । सकल कथा मुनि कही बिसेषी ॥

दो०—गौतम नारि स्नाप बस उपल देह धरि धीर ।

चरन कमल रज चाहति कृपा करहू रघुबीर ॥

छं०—परसत पद पावन सोक नमावन प्रगट भई तप पूंज सही ।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहि आवै बचन कही ।
अतिसय बड़ भागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार बही ॥
जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी ।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी ॥
एहि भाँति सिधारी गौतमनारी बार बार हरि चरन परी ।
जो अति मन भावा सो बरू पावा गे पति लोक अनंद भरी ॥

चले राम लछिमन मुनि संगी । गए जहाँ जग पावनि गंगा ॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई । जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥
तब प्रभु रिपिन्ह समेत नहाए । बिबिध दान महिदेवन्हि पाए ॥
हरषि चले मुनि बृंद सहाया । बेगि बिदेह नगर निअराया ॥
पुर रम्यता राम जब देखी । हरषे अनुज समेत बिसेषी ॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा । उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा ॥
देखि अनूप एक अँबराई । सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना । इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना ॥
भलैहि नाथ कहि कृपानिकेता । उतरे तह मुनि बृंद समेता ॥
बिस्वामित्र महामुनि आए । समाचार मिथिलापति पाए ॥

^१ जारा ।

^२ कहं ।

मानस की राम-कथा

दो०—संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ज्ञाति ।

चले मिलन मुनिनाथ कहि मुदित राउ एहि भाँति ॥

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा । दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा ॥
बिप्र बृंद सब सादर बंदे । जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे ॥
कुसल प्रसन्न कहि बारहि बारा । बिस्वामित्र नृपहि बैठारा ॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई । गए रहे देखन फुलवाई ॥
भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता । बारि बिलोचन पुलकित गाता ॥
मूरति मधुर मनोहर देखी । भएउ बिदेह बिदेहु बिसेषी ॥

दो०—प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर ।

बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गँभीर ॥

कहेहु नाथ सुंदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जे निगम नेति कहि गावा । उभय बेष धरि की सोइ आवा ॥
सहज बिराग रूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
ता तें प्रभु पूछौं सतिभाऊ । कहेहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका । बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्राणी । मनु मुसुकाहि रामु सुनि बानी ॥
रघुकुलमनि दसरथ के जाए । मम हित लागि नरेस पठाए ॥

दो०—रामु लखनु दोउ बंधु बर रूप सील बल धाम ।

मख राखेउ सब साखि जगु जिते^१ असुर संग्राम ॥

मुनि^२ तव चरन^३ देखि कह राऊ । कहि न सकौं निज पुन्य प्रभाऊ ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता । आनंदहूँ के आनंददाता ॥
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू । पुलक गात उर अधिक उछाहू ॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू । चलेउ लवाई नगर अवनीसू ॥
सुंदर सदन सुखद सब काला । तहाँ बासु लै दीन्ह भुआला ॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई । गएउ राउ गृह बिदा कराई ॥

^१ जीति ।

^२ मुनि ।

^३ चरित ।

दो०—रिषय संग रघुवंसमनि करि भोजनु विश्रामु ।

बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु ॥

लषन हृदयें लालसा बिसेखी । जाइ जनकपु आइअ देखी ॥
राम अनुज मन की गति जानी । भगत बछलता हिअं हलसानी ॥
परम विनीत सकुचि मुसुकाई । बोले गुर अनुसासन पाई ॥
नाथ लषनु पुरु देषन चहहीं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं । नगर देखाइ तुरत लै आवौ ॥
सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीती ॥

दो०—जाइ देखि आवहु नगर सुख निधान दोउ भाइ ।

करहु सुफल सब के नयन सुदर बदन देखइ ॥

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता । चले लोक लोचन सुख दाता ॥
बालक बृंद देखि अति सोभा । लगे संग लोचन मनु लोभा ॥
देखन नगर भूप सुत आए । समाचार पुरबासिन्ह पाए ॥
धाए धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ॥
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई । होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥
जुवतीं भवन भरोखन्हि लागीं । निरखाहि राम रूप अनुरागीं ॥
कहहि परसपर बचन सप्रीती । सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती ॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । सोभा असि कहूँ सुनिअति नाहीं ॥

दो०—बय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुख धाम ।

अंग अंग पर वारिअहि कोटि कोटि सत काम ॥

देखि राम छबि कोउ एक कहई । जोगु जानकिहि येहु बरु अहई ॥
जौ सखि इन्हहि देख नरनाहू । पन परिहरि हठि करै बिबाहू ॥
कोउ कह ए भूपति पहिचाने । मुनि समेत सादर सनमाने ॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई । बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई ॥
कोउ कह जौं भल अहै बिधाता । सब कहूँ सुनिअ उचित फलदाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू । नाहिन आलि इहाँ संदेहू ॥
जौं बिधि बस अस बने सँजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ॥
सखि हमरें आरति अति तातें । कबहुँक ए आवहि येहि नातें ॥

दो०—नाहिं त हमकहुँ सुनहुँ सखि इन्ह कर दरसनु दूरि ।

यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भरि ॥

बोली अपर कहेहु सखि नीका । येहि बिवाह अति हित सबहीं का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा । ये स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
सबु असमंजस अहइ सयानी । येह सुनि अपर कहै मृदु बानी ॥
सखि इन्हकहँ कोउ कोउ अस कहही । बड प्रभाउ देखत लघु अहहीं ॥
परसि जासु पद पंकज धूरी । तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरें । येह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी । तेहि स्यामल बरु रचेउ विचारी ॥
तासु बचन सुनि सब हरषानी । ऐसेइ होउ कहहि मृदु बानी ॥

दो०—हिअँ हरषहि बरषहि सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद ।

जाहि जहाँ जहं बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद ॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई । जहँ धनु मुख हित भूमि वनाई ॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना । सादर प्रभुहि देखावहि रचना ॥
निज निज रुचि सब लेहि बोलाई । सहित सनेह जाहि दोउ भाई ॥
रामु देखावहि अनुजहि रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ॥
कौतुकु देखि चले गुर पाहीं । जानि बिलंबु त्रास मन माही ॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाई । किए बिदा बालक बरिआई ॥

दो०—सभय सप्रेम बिनोत अति सकुच सहित दोउ भाइ ।

गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥

निसि प्रबेस मुनि आयेसु दीन्हा । सबहीं संध्या बंदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी । रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
बार बार मुनि अज्ञा दीन्ही । रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही ॥
चापत चरन लषनु उर लाएँ । सभय सप्रेम परम सचु पाएँ ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पौढ़े धरि उर पद जलजाता ॥

दो०—उठे लषनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान ।

गुर ते पहिलेहि जगतपति जागे रामु सुजांन ॥

सकल सौच करि जाइ नहाए । नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥
 समय जानि गुर आयेसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥
 भूप बागु बर^१ देखेउ जाई । जहँ बसंत रितु रही लोभाई ॥
 चहुँ दिसि चितै पूँछि मालीगन । लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
 तेहि अवसर सीता तहँ आई । गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥
 सर समीप गिरिजागृह सोहा । बरनि न जाइ देखि मनु मोहा ॥
 मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरि निकेता ॥
 पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बर माँगा ॥
 एक सखी सिय संगु विहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
 तेहि दोउ बंधु बिलोके जाई । प्रेम ब्रिबस सीता पहि आई ॥

दो०—तासु दसा देखो सखिन्ह पुलक गात जलु नयन ।

कहु कारनु निज हरष कर पूछाहि सब मृदु बयन ॥

देखन बागु कुँअर दुइ^२ आए । वय किसोर सब भाँति सुहाए ॥
 स्याम गौर किमि कहौ बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥
 सुनि हरषी सब सखी सयानी । सिय हिअँ अति उतकंठा जानी ॥
 एक कहइ नृपसुत तेइ^३ आली । सुने जे मुनि संग आए काली ॥
 जिन्ह निज रूप मोहनी डारी । कीन्हें स्ववस नगर नर नारी ॥
 बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू । अवसि देखिअहि देखन जोगू ॥
 तासु बचन अति सियहि सोहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
 चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई ॥

दो०—सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत ।

चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभोत ॥

कंकन किकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लपन सन रामु हृदयँ गुनि ॥
 मानहुँ मदन दुदुभी दीन्ही । मनसा विस्व बिजय कहूँ कीन्ही ॥
 असकहि फिरि चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥

^१ बाग भूपकर !

^२ दोउ ।

^३ सोइ; ते ।

भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल ॥
 देखि सीय सोभा सुख पावा । हृदयें सराहत बचनु न आवा ॥
 जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहें प्रगटि देखाई ॥
 सुदरता कहें सुदर करई । छबि गृहँ दीप सिखा जनु वरई ॥
 सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहि पटतरौ विदेहकुमारी ॥

दो०—सिय सोभा हिअँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि ।

बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ॥

तात जनकतनया येह सोई । धनुषजज्ञ जेहि कारन होई ॥
 पूजन गौरि सखी लै आई । करत प्रकास फिरहि फुलवाई ॥
 जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
 सो सबु कारनु जान बिधाता । फरकहि सुभद^१ अंग सुनु भाता ॥
 रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ^२ ॥
 मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी ॥
 जिन्ह कै लहहि न रिपु रन पीठी । नहि पावहि^३ परतिअ मनु डीठी ॥
 मंगन लहहि न जिन्ह कै नाहीं । ते नरबर थोरे जग माहीं ॥

दो०—करत बतकही अनुज सन मनु सिय रूप लोभान ।

मुख सरोज मकरंद छबि करै मधुप इव पान ॥

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । कहँ गए नृपकिसोर मनु चिता^४ ॥
 जहँ बिलोक मृग सावक नयनी । जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ॥
 लता ओट तब सखिन्ह लखाए । स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
 देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
 थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहँ परिहरी निमेखें ॥
 अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
 लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥
 जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी । कहि न सकहि कछु मन सकुचानी ॥

^१ सुभग ।

^२ भूलि न देहि कुमारग पाऊ ।

^३ लावहि ।

^४ चीता ।

दो०—लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ ।

निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल विलगाइ ॥

धरि धीरज एक आलि सयानी । सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप किसोर देखि किन लेहू ॥
सकुचि सीय तब नयन उधारे । सनमुख दोउ रघुसिंध निहारे ॥
नखसिख देखि राम कै सोभा । सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा ॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता । भएउ गहरु सब कहहि सभीता ॥
पुनि आउब एहि बोरिआँ^१ काली । अस कहि मन बिहसी एक आली ॥
गढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी । भएउ बिलंब मातुभय मानी ॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने । फिरी अपनपउ^२ पितु बस जाने ॥

दो०—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरै बहोरि बहोरि ।

निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति । चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी । सुख सनेह सोभा गुन^३ खानी ॥
परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्ही । चारु चित्त भीती^४ लिखि लीन्ही ॥
गई भवानी भवन बहोरी । बंदि चरन बोली कर जोरी ॥
जय जय गिरिवरराज किसोरी । जय महेस मुख चंद चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ॥
मोर मनोरथ जानहु नीकें । बसहु सदा उर पुर सबही कें ॥
कीन्हेउं प्रगट न कारन तेहीं । अस कहि चरन गहे^५ बैदेहीं ॥
बिनय प्रेम बस भई भवानी । खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ । बोलीं गौरि हरष हिअं भरेऊ ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी । पूजिहि मनकामना तुम्हारी ॥
नारद बचनु सदा सुचि साचा । सो बर मिलिहि जाहि मन राचा ॥

^१ बिरिआं ।

^२ फिरि आपनपउ ।

^३ कै ।

^४ चित्र भीतर; बिचित्र भीति ।

^५ गही ।

सो०—जानि गौरि अनुकूल सिय हिअँ हरषु न जाइ कहि ।

मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ॥

हृदयँ सराहत सीय लोनाई । गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
रामु कहा सबु कौसिक पाही । सरल सुभाउ छुआ छल नाही ॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही । पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्ही ॥
करि भोजनु मुनिबर बिजानी । लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥
विगत दिवसु गुर आयेसु पाई । संध्या करन चले दोउ भाई ॥
त्रिगत निसा रघुनायकु जागे । बंधु बिलोकि कहन अस लागे ॥
उएउ अरुनु अवलोकहु ताता । पंकज कोक लोक सुख दाता ॥
बोले लखन जोरि जुग पानी । प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी ॥

दो०—अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।

जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन ॥

रवि निज उदयव्याज रघुराया । प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह देखाया ॥
तब भुज बल महिमा उदघाटी । प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी ॥
बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने । होइ सुचि सहज पुनीत नहाने ॥
नित्य क्रिया करि गुर पहि आए । चरन सरोज सुभग सिर नाए ॥
सतानंदु तब जनक बोलाए । कौसिक मुनि पहि तुरत पठाए ॥
जनक बिनय तिन्ह आनि^१ सुनाई । हरषे बोलि लिए दोउ भाई ॥

दो०—सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहि जाइ ।

चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ ॥

सीय स्वयंबग् देखिअ जाई । ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ॥
लखन कहा जसभाजनु सोई । नाथ कृपा तब जापर होई ॥
हरषे मुनि सब सुनि वर बानी । दीन्हि असीस सर्वाहिं सुखू मानी ॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला । देखन चले धनुष मख साला ॥
रंगभूमि आए दोउ भाई । असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ॥
चले सकल गृह काज बिसारी । बाल जुवान जरठ^२ नरनारी ॥

^१ आइ ।

^२ जठर ।

देखी जनक भीर भै भारी । सुचि सेवक सब लिए हँकारी ॥
तुरत सकल लोगन्ह पहि जाहू । आसन उचित देहु सब काहू ॥

दो०—कहि मृदु बचन विनीत तिन्ह बैठारे नर नारि ।

उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि ॥

राजकुँअर तेहि अवसर आए । मनहुँ मनोहरता तन छाप ॥
गुन सागर नागर बर बीरा । सुंदर स्यामल गौर सरीरा ॥
राज समाज बिराजत रुरे । उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी । प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
रामहि चितव भायें जेहि सीया । सो सनेहु सुखु नहि कथनीया ॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ । कवन प्रकार कहै कबि कोऊ ॥

दो०—राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर ।

सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर ॥

देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे^१ ॥
हरषे जनकु देखि दोउ भाई । मुनि पद कमल गहे तब जाई ॥
करि बिनती निज कथा सुनाई । रंगअवनि सब मुनिहि देखाई ॥
जहँ जहँ जाहिं कुँअर बर दोऊ । तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ ॥
निज निज रुख रामहि सबु देखा । कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा ॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ । राजा मुदित महा सुखु लहेऊ ॥

दो०—सब मंचन्ह तें मंचु एकु सुंदर बिसद बिसाल ।

मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल ॥

प्रभुहि देखि सब नृप हिअ हारे । जनु राकेस उदय भएँ तारे ।
अस प्रतीति सब के मन माहीं । राम चाप तोरब सक नाहीं ॥
बिनु भंजेहु भवधनुषु बिसाला । मेलिहि सीय राम उर माला ॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई । जसु प्रतापु बलु तेजु गँवाई ॥
बिहसे अपर भूप सुनि बानी । जे अबिवेक अंध अभिमानी ॥

^१ भाव ।

^२ टरें न टारे; टरत न टारे ।

तोरेहुँ धनुषु व्याहु अवगाहा । बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा ॥
 एक बार कालहुँ किन होऊ । सिय हित समर जितव हम सोऊ ॥
 येह सुनि अवर महिप^१ मुसुकाने । धरमसील हरिभगत सयाने ॥

दो०—जानि सुअवसर सीय तब पठई जनक बोलाइ ।

चतुर सखी सुदर सकल सादर चली लवाइ ॥

चलीं संग लै सखीं सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥
 सोह नवल तनु सुदर सारी । जगतजननि अतुलित छबि भारी ॥
 भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
 रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे नर नारी ॥
 पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥
 मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥

दो०—गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।

लागि^२ बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥

राम रूप अरु सिय छबि देखें । नरनारिन्ह परिहरीं निमेषें^३ ॥
 सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥
 बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू । सीय राम कर करै बिआहु ॥
 येहिं लालसाँ मगन सबु लोगू । बरु साँवरो जानकी जोगू ॥
 तब बंदीजन जनक बोलाए । बिरिदावली कहत चलि आए ॥
 कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हिअँ हरषु न थोरा ॥

दो०—बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल ।

पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल ॥

नृप भुज बलु बिधु सिवधनु राहू । गरुअ कठोर बिदित सब काहू ॥
 रावनु बानु महाभट भारे । देखि सरासन गर्वाहिं सिधारे ॥
 सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा । राज समाज आजु जोइ तोरा ॥
 त्रिभुवन जय समेत बैदेही । बिनहिं बिचार बरै हटि तेही ॥

^१ अपर भूप ।

^२ लगी ।

^३ बेखी; निमेषी ।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे । भटमानी अतिसय मन माषे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥
तमकि ताकि^१ तकि सिवधनु धरहीं । उठै न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्हकें ऋछु विचार मन माहीं । चाप समीप महीप न जाँही ॥

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठै न चलहिं लजाइ ।

मनहुँ पाइ भट बाहु बलु अधिकु अधिकु गरुआइ ॥

भूप सहस दस एकहिं बारा । लगे उठावन टरै न टारा ॥
डगै न संभु सरासनु कैसैं । कामी बचनु सती मनु जैसैं ॥
श्रीहत भए हारि हिअँ राजा । बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने । बोले बचन रोष जनु साने ॥
दीप दीप के भूपति नाना । आए सुनि हम जो पनु ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा । बिपुल बीर आए रनधीरा ॥

दो०—कुँअरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।

पावनिहार विरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ॥

कहहु काहि येहु लाभु न भावा । काहुँ न संकर चापु चढ़ावा ॥
रहौ चढ़ाउब तोरब भाई । तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई^२ ॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी । बीर बिहीन मही मैं जानी ॥
तजहु आस निज निज गृहँ जाहू । लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥
सुकृनु जाइ जाँ पनु परिहरऊँ । कुँअरि कुँआरि रहौ का करऊँ ॥
जाँ जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई । तौ पन करि होतेउँ न हँसाई ॥
जनक बचन सुनि सब नर नारी । देखि जानकिहि भए दुखारी ॥
माखे लषनु कुटिल भैं भौहैं । रदपट फरकत नयन रिसौहैं ॥

दो०—कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान ।

नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान ॥

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई । तेहिं समाज अस कहै न कोई ॥
कही जनक जसि अनुचित बानी । बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ॥

^१ तमकि ।

^२ सकेउ छड़ाई; सके उठाई; काहुँ छड़ाई ।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू । कहौ सुभाउ न कछु अभिमान् ।
जौ तुम्हारि अनुसासन पावौ । कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौ ।
तव प्रताप महिमा भगवाना । को^१ वापुरो पिनाकु पुराना
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौ । जोजन सत प्रमान लै धावौ
दो०—तोरीं छत्रकदंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।

जो न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ ॥
लषन सकोप बचन जब^२ बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले
सयनहिं रघुपति लषनु नेवारे । प्रेम समेत निकट बैठारे
बिस्वामित्र समय सुभ जानी । बोले अति सनेहमय वानी
उठहु राम भंजहु भव वापा । मेटहु तात जनक परितापा
सुनि गुर बचन चरन सिर नावा । हरपु बिषादु न कछु उर आवा
ठाढे भए उठि सहज सुभाएँ । ठवनि जुवा मृगुराज लजाएँ
दो०—उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग ।

बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भूंग ॥
गुर पद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयेसु मांगा
सहजहिं चले सकल जग स्वामी । मत्त मंजु वर कुंजर गामी
चलत राम सब पुर नर नारी । पुलक पूरि तन भए मुखारी
तब रामहिं बिलोकि बैदेही । सभय हृदय बिनवति जेहि तेही
मनहीं मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी
करहु सुफल आपनि सेवकाई । करि हितु हरहु चाप गरुआई
गननायक बरदायक देवा । आजु लगें कीन्हें^३ तुअ^४ सेवा ।
वार वार बिनती सुनि मोरी । करहु चाप गुरुता अति थोरी
दो०—देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर ।

भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर ॥
नीकें निरखि नयन भरि सोभा । पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ।
अहह तात दारुनि हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभु न हानी ।

^१ का ।^२ जे ।^३ कीन्हें; कीन्ह तब ।^४ तब ।

सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुध समाज बड़ अनुचित होई ॥
कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
बिधि केहि भाँति धरौ उर धीरा । सिरसि सुमन कन बेधिअ हीरा ॥
सकल सभा कै मति भै भोरी । अब मोहि संभुचाप गति तोरी ॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥
अनि परिताप सीय मन माहीं । लव निमेष जुग सय^१ सम जाहीं ॥

दो०—प्रभुहि चितै पुनि चितव^२महि राजत लोचन लोल ।

खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधुमंडल डोल ॥

लोचन जलु रह लोचन कोना । जैसें परम कृपन कर सोना ॥
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरजु प्रतीति उर आनी ॥
तन मन बचन मौर पनु साचा । रघुपति पद सरोज चितु^३ राचा ॥
तौ भगवानु सकल उर बासी । करहि मोहिं रघुबर कै दासी ॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेह । सो तेहि मिलै न कछुसंदेह ॥
प्रभु तन चितै प्रेम पनु ठाना । कृपानिधान रामु सबु जाना ॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें । चितव गरु^४ लघु ब्यालहि जैसें ॥
चाप समीप रामु जब आए । नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥

दो०—राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि ।

चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि ॥

गुरहि प्रनामु मनहि मन कीन्हा । अति लाघवें उठाइ धनु लीन्हा ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें । काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें ॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ॥
प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे । देखि लोग सब भए सुखारे ॥
रही भुवन भरि जय जय बानी । धनुष भंग धुनि जात न जानी ॥
मुदित कहहि जहँ तहँ नर नारी । भंजेउ राम संभुधनु भारी ॥

दो०—बंदी मागध सूत गन बिरिद बदाहि मतिधीर ।

करहि निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर ॥

^१ सत सम ।

^२ चितइ पुनि चितव ; चितव पुनि चितव ।

^३ मन ।

^४ डगर ।

सखिन्ह सहित हरषीं सब^१ रानीं । सूखत धानु परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई । पैरत थकें थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भए भूप धनु टटें । जैसे दिवस दीप छबि छूटें ॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भांती । जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥
रामहि लखनु बिलोकत कैसें । ससिहि चकोर किसोरकु जैसें ॥
सतानंद तब आयेसु दीन्हा^२ । सीता गमनु राम पहि कीन्हा ॥

दो०—संग सखी सुदरि चतुर गावहि मंगलचार ।

गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार ॥

तन सकोचु मन परम उछाहु । गूढ प्रेमु लखि परै न काहु ॥
जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेशी ॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहि सभित देत जयमाला ॥
गावहि छवि अवलोकि सहेलीं । सिय जयमाल राम उर मेली ॥

सो०—रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहि सुमन ।

सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुद गन ॥

पुर अरु व्योम बाजने बाजे । खल भए मलिन साधु सब राजे^३ ॥
नाचहि गावहि बिबुध बधूटीं । बार बार कुसुमांजलि^४ छूटीं ॥
जहँ तहँ बिप्र बेद धुनि करहीं । बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं ॥
महि पातालु नाकु^५ जसु व्यापा । राम बरी सिय भंजेउ चापा ॥
सोहति^६ सीय राम कै जोरी । छवि सिगारु मनहुँ एक ठोरी ॥
सखीं कहहि प्रभु पद गहु सीता । करति न चरन परस अति भीता ॥

दो०—गौतम तिअ गति सुरति करि नहि परसति पग पानि ।

मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥

^१ अति ।

^२ क्रमशः दीन्ही; कीन्ही ।

^३ गाजे ।

^४ कुसुमावलि । तु० : प्र० । च० : प्र० [(८) : कुसुमानलि]

^५ नाक; व्योम; नभ महँ ।

^६ सोहत ।

तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ मन माषे ॥
 ज़ुठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥
 लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥
 तोरें धनुष चाँड़ नहि सरई । जीवत हमहि कुँअरि को बरई ॥
 जाँ विदेह कछु करै सहाई । जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥
 साधु भूप बोले सुनि बानी । राज समाजहि लाज लजानी ॥
 बलु प्रतापु बीरता बडाई । नाक पिनाकहि संग सिधाई ॥
 कोलाहलु सुनि सीय सकानी । सखी लेवाइ गई जहँ रानी ॥
 राम सुभाय चले गुर पाहीं । सिय सनेहु बरनत मन माहीं ॥
 भूप बचन सुनि इत उत तकहीं । लषनु राम डर बोलि न सकहीं ॥

दो०—अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप ।

मनहुँ मत्त गज गन निरखि सिंध किसोरहि^१ चोप ॥

खरभर देखि बिकल पुर नारी^२ । सब मिलि देहि महीपन्ह गारी ॥
 तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा । आउए भृगुकुल कमल पतंगा ॥
 देखि महीप सकल सकुवाने । बाज भपट जनु लवा लुकाने ॥
 देखत भृगुपति बेषु कराला । उठे सकल भय बिकल भुआला ॥
 पितु समेत कहि कहि निज नामा । लगे करन सब दंड प्रनामा ॥
 जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रनामु करावा ॥
 बिस्वामित्र मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ॥
 रामु लषनु दसरथ के ढोटा । दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥

दो०—बहुरि बिलोकि विदेह सन कहहु काह अति भीर ।

पूँछत जानि अजान जिमि व्यापेउ कोपु सरीर ॥

समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सब आए ॥
 सुनत बचन फिरि^३ अनत निहारे । देखे चाप खंड महि डारे ॥
 अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष कै^४ तोरा ॥

^१ किसोरहु ।

^२ नर नारी ।

^३ तब ।

^४ केहि; केइ ।

बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू । उलटौं महि जहँ लगि^१ तब राजू ॥
 अति डरु उतरु देत नृप नाहीं । कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
 भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता । अरध निमेष कल्प सम बीता ॥

दो०—सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु ।

हृदयें न हरषु त्रिषादु कछु बोले श्री रघुबीरु ॥

नाथ संभु धनु भंजनिहारा । होइहि केउ^२ एक दास तुम्हारा ॥
 आयेसु काह कहिअ किन मोही । सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥
 सेवकु सो जो करै सेवकाई । अरि करनी करि करिअ लराई ॥
 सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा । सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥
 सो बिलगाउ बिहाइ समाजा । न त मारे जैहिं सब राजा ॥
 सुनि सुनि बचन लखनु मुसुकाने । बोले परसुधरहि अपमाने ॥
 बहु धनुही तोरीं लरिकार्ड । कबहूँन असि^३ रिस कीन्हि गोसाई ॥
 येहि धनु पर ममता केहि हेतू । सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू ॥

दो०—रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न संभार ।

धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार ॥

लखन कहा हँसि हमरें जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
 का छति लाभु जून धनु तोरें । देखा राम नए^४ कें भोरे ॥
 छुवत टूट रघुपतिहु न दोसू । मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ॥
 बोले चितै परसु की ओरा । रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥
 बालकु बोलि बधौ नहि तोही । केवल मुनि जड़ जानहि^५ मोही ॥
 बाल ब्रह्मचारी अति कोही । बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही ॥

दो०—मातु पितहि जनि सोच बस करसि^६ महीप^७ किसोर ।

गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर ॥

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी । अहो मुनीसु महा भटमानी ॥
 पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू । चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥

^१ लहि । ^२ केइ । ^३ तुम्ह । ^४ नयन । ^५ जानेसि; जानेहि ।

^६ करहि । ^७ महीस; न भूप ।

इहाँ कुम्हड़बतिआ कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥
देखि कुठार सरासन बाना । मैं कछु कहा सहित अभिमाना ॥
भृगुकुल समुभि जनेउ बिलोकी । को कछु कहहु सहौं रिस रोकी ॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरें कुल इन्ह पर न सुराई ॥
बधैं पापु अपकीरति हारैं । मारतहूँ पाँ परिअ तुम्हारें ॥
कोटि कुलिस सम वचनु तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥

दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महा मुनि धीर ।

सुनि सरोष भृगुबंस मनि बोले गिरा गंभीर ॥

कौसिक सुनहु मद येहु बालकु । कुटिल काल बस निज कुलघालकु ॥
काल कबलु होइहि छन माही । कहौ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥
तुम्ह हटकहु जौ चहहु उवारा । कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा ॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा । तुम्हहि अछत को बरनै पारा ॥
अपने मुख तुम्ह आपनि करनी । बार अनेक भाँति बहु बरनी ॥
तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा । बार बार मोहि लागि बोलावा ॥
सुनत लखन के वचन कठोरा । परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू । बाल दोष गुन गनहि न साधू ॥
उतर देत छाड़ौ विनु मारें । केवल कौसिक सील तुम्हारें ॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें । गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें ॥

दो०—गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ^१सूभ ।

अयमय खांड^२न ऊबमय अजहूँ न बूभ अबूभ ॥

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा । को नहि जान विदित संसारा ॥
माता पितहि उरिन^३ भए नीकें । गुर रिनु रहा सोचु बड़ जी कें ॥
सो जनु हमरेहि माथें काढ़ा । दिन चलि गएउ व्याज बहु बाढ़ा ॥
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली । तुरत देउँ मैं थैली खोली ॥
सुनि कटु वचन कुठार सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही । विप्र विचारि बचौ नृप द्रोही ॥

^१ गाधिसुबन ।

^२ गहरिअरेइ; हरियरइ ।

^३ खंड ।

^४ अरिन ।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े । द्विज देवता घरहिं बे बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सैनहि लखनु नेवारे ॥

दो०—लखन उतर आहुति सरिस भृगुवर कोपु कृसानु ।

बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुल भानु ॥

नाथ करहु बालक पर छोह । सूध दूधमुख करिअ न कोह ॥
जौ पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना । तौ कि वरावरि करै अयाना ॥
जौ लरिका कछु अचगरि करही । गुर पितु मातु मोद मन भरही ॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नखसिख रिस व्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही । नीचु मीचु सम देख न मोही ॥

दो०—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल ।

जेहि बस जन अनुचित करहि चरहि^१ बिस्व प्रतिकूल ॥

मै तुम्हार अनुचर मुनिराया । परिहरि कोप करिअ अब दाय़ा ॥
टूट चाप नहि जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहि पाय पिराने ॥
बोलत लखनहि जनकु डेराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाही ॥
थर थर काँपहि पुर नर नारी । छोट कुमार खोट अति^२ भारी ॥
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी । रिस तनु जरै होइ बल हानी ॥
बोले रामहि देइ निहोरा । बचौ विचारि बंधु लघु तोरा ॥

दो०—सुनि लछिमनु बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम ।

गुर समीप गवने सकुचि^३ परिहरि बानी बाम ॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी । बोले रामु जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना । बालक बचनु करिअ नहि काना ॥
तेहि नाही कछु काज बिगारा । अपराधी में नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोपु बंधु बंधु^४ गोसाईं । मोपर करिअ दास की नाईं ॥
कहिअ बेगि जेहि जिधि रिस जाई । मुनिनायक सोइ करौ^५ उपाईं ॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसें । अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें ॥

^१ होहि; परहि । ^२ बड़ । ^३ बहुरि । ^४ बंधे । ^५ करिअ; करहु ।

दो०—गर्भ स्रवहिं अवनप रवनि सुनि कुठार गति घोर ।

परसु अच्छत देखौं जिअत बैरी भूप किसोर ॥

बहै न हाथु दहै रिस छाती । भा कुठार कुंठित नृपघाती ॥
भएउ वाम बिधि फिरेउ सुभाऊ । मोरे हृदय कृपा किसि काऊ ॥
अजु दया^१ दुखु दुसह सहावा । सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा ॥
देखु जनकु हठि बालकु येहू । कीन्ह चहत जड़ु जमपुर गेहू ॥
बेगि करहु किन आंखिन्ह ओटा । देखत छोट खोट नृप ढोटा ॥
बिहसे लखनु कहा मन माही । मूँदें आंखि कतहुँ कोउ नाही ॥

दो०—परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु ।

संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु ॥

बंधु कहै कटु संमत तोरे । तू छल बिनय करसि कर जोरे ॥
करु परितोषु मोर संग्रामा । नाहि त छाड़ कहाउब रामा ॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही । बंधु सहित न त मारौं तोही ॥
भृगुपति बकहि कुठारु उठाए । मन मुसुकाहि रामु सिर नाए ॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा । कर कुठारु आगे यह सीसा ॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी । मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥

दो०—प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु विप्रवर रोसु ।

बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालक हुँ^२ नहिं दोसु ॥

देखि कुठारु बान धनु धारी । मैलरिकहि रिस बीरु बिचारी ॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा । बंस सुभायें उत्तर तेहिं दीन्हा ॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाई । पद रज सिर सिसु धरत गोसाई ॥
छमहु चूक अनजानत केरी । चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी ॥
हमहि तुम्हहिं सरबरि कस नाथा । कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें । नव गुन परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु विप्र अपराध हमारे ॥

^१ देव ।

^२ प्र० : बालक हूँ ।

दो०—बार बार मुनि बिप्रवर कहा राम सन राम ।

बोले भृगुपति सरूप हसि तहँ बंधु सम बाम ॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही । मैं जस बिप्र सुनावौ तोही ॥
मैं येहि परसु काटि बलि दीन्है । समर जग्य जग कोटिन्ह कीन्है ।
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें । बोलसि निदरि बिप्र कैं भोरें ॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा । अहमिति मनहु जीति जगु टाढ़ा ॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी । रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
छुवतहि टूट पिनाकु पुराना । मैं केहि हेतु करौ अभिमाना ॥

दो०—जौ हम निदरहिं बिप्र वदि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।

तौ अस को जग सुभटु जेहि भयबस नावहि माथ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जौ रन हमहि प्रचारै कोऊ । लरहि सुखेन कालु किन होऊ ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना^१ । कुल कलंकु तेहि पाँवर आना^२ ॥
कहौ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी । कालहु डरहि न रन रघुवंसी ॥
बिप्र बंस कै असि प्रभुताई । अभय होइ जो तुम्हहि डराई ॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के । उधरे पटल परसुधर मति के ॥
राम रमापति कर धनु लेहू । खेचहु मिटै मोर संदेहू ॥
देत चापु आपुहि चलि गएऊ । परसुराम मन बिसमय भएऊ ॥

दो०—जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात ।

जोरि पानि बोले बचन हृदयें न प्रेम अमात^३ ॥

करौ काहु^४ मुख एक प्रसंसा । जय महेस मन मानस हंसा ॥
अनुचित बहुत^५ कहेउँ अज्ञाता । छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघुकुल केतू । भृगुपति गए बनहि तप हेतू ॥
अपभयं कुटिल महीप डेराने । जहँ तहँ कायर गँवहि हराने ॥
सुखु बिदेह कर बरनि न जाई । जन्म दरिद्र मनहुं निधि पाई ॥

^१ जप ।

^२ डेराना ।

^३ आना ; जाना ।

^४ समात ।

^५ कहा ।

^६ बचन ।

विगत त्रास भई सीय सुखारी । जनु बिभु उदयँ चकोरकुमारी ॥
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा । प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई । अब जो उचित सो कहिअ गोसाई ॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना । रहा बिबाहु चाप आधीना ॥
टूटत हीं धनु भएउ बिबाहु । सुर नर नाग विदित सब काहु ॥

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस व्यवहार ।

बूझि विप्र कुलबृद्ध गुर बेद विदित आचार ॥

दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दसरथहि बोलाई ॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला । पठाए दूत बोलि तेहिं काला ॥
बहुरि महाजन सकल बोलाए । आइ सबन्हि सादर सिर नाए ॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा । नगरु सवारहु चारिहु पासा ॥
हरषि चले निज निज गृह आए । पुनि परिचारक बोलि पठाए ॥
रचहु विचित्र बितान बनाई । सिर धरि बचन चले सचु पाई ॥
पठाए बोलि गुनी तिन्ह नाना । जे बितान विधि कुसल सुजाना ॥
विधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा । बिरचे कनक केदलि के खंभा ॥

दो०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल ।

रचना देखि विचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल ॥

पहुँचे दूत रामपुर पावन । हरषे नगरु बिलोकि सुहावन ॥
भूप द्वार तिन्ह खबर जनाई । दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई ॥
करि प्रनाम तिन्ह पाती दीन्ही । मुदित महीप आपु उठि लीन्ही ॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती । पुलक गात आई भरि छाती ॥
रामु लखनु उर कर बर चीठी । रहि गए कहत न खाटी मीठी ॥
पुनि धरि धीरपत्रिका बाँची । हरषी सभा बात सुनि साँची ॥
खेलत रहे तहाँ सुधि पाई । आए भरनु सहित हित^३ भाई ॥
पूँछत अति सनेहँ सकुचाई । तात कहाँ तें पाती आई ॥

दो०—कुसल प्रान प्रिय बंधु दोउ अहहि कहहु केहि देस ।

सुनि सनेह साने बचन बाँची बहुरि नरेस ॥

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेहु समात न गाता ॥
तब नृप दूत निकट बैठारे । मधुर मनोहर बचन उचारे ॥
भैया कहहु कुसल दोउ बारे । तुम्ह नीकें निज नयन निहारे ॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ । प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ ॥
जा दिन तें मुनि गए लेवाई । तब तें आजु साँचि सुधि पाई ॥
कहहु बिदेह कवनि बिधि जाने । सुनि प्रिय बचन दूत मुसुकाने ॥

दो०—सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम्ह सम धन्य न कोउ ।

रामु लखनु जाके तनय बिस्व बिभूषन दोउ ॥

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे । पुरुषसिंघ तिहुँ पुर उजिआरे ॥
जिन्हकें जस प्रताप के आगे । ससि मलीन रवि सीतल लागे ॥
तिन्ह कहैं कहिअ नाथ किमि चीन्हे । देखिअ रवि कि दीप कर लीन्हे ॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका । समिटे सुभट एक तें एका ॥
संभु सरासन काहुँ न टारा । हारे सकल बीर बरिआरा ॥
तीन लोक महुँ जे भटमानी । सब कै सकति संभुधनु भानी ॥

दो०—तहाँ राम रघुबंसमनि सुनिअ महा महिपाल ।

भंजेउ चापु प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल ॥

सुनि सरोष भृगुनायकु आए । बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए ॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा । करि बहु बिनय गवनु बन कीन्हा ॥
राजत रामु अतुलबल जैसैं । तेज निधान लखनु पुनि तैसैं ॥
देव देखि तब बालक दोऊ । अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥
सभा समेत राउ अनुरागे । दूतन्ह देन निछावरि लागे ॥
कहि अनीति ते मूँदाहि काना । धरमु विचारि सर्वाहं सुखु माना ॥

दो०—तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ ।

कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बोलाइ ॥

सुनि बोलै गुर^१ अति सुख पाई । पुन्य पुरुष कहँ महि सुख छाई ॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख संपति बिनहि बोलार्है । धरम सील पहि जाहि सुभाएँ ॥
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी । तसि पुनीत कौसल्या देवी ॥
सुकृती तुम्ह समान जग माही । भएउ न है कोउ होनेउ नाहीं ॥
तुम्ह कहँ सर्व काल कल्याना । सजहु बरात बजाइ निसाना ॥

दो०—चलहु बेगि सुनि गुर बचन भलेहि नाथ सिरु नाइ ।

भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ ॥

राजा सब रनिवासु बोलाई । जनक पत्रिका बाँचि सुनाई ॥
सुनि संदेसु सकल हरषानी । अपर कथा सब भूप बखानी ॥
प्रेम प्रफुल्लित राजहि रानी । मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी ॥
लेहि परसपर अतिप्रिय पाती । हृदय लगाइ जुड़ावहि छाती ॥
मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए । रानिन्ह तब महिदेव बोलाए ॥
दिए दान आनंद समेता । चले बिप्र बर आसिष देता ॥

सो०—जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि ।

चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रवर्ति दसरत्थ के ॥

कहत चले पहिरे पट नाना । हरषि हने गहगहे निसाना ॥
समाचार सब लोगन्ह पाए । लागे घर घर होन बधाए ॥
भुवन चारि दस भरा^२ उछाहू । जनकसुता रघुबीर बिआहू ॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे । मग गृह गली सवारन लागे ॥
जद्यपि अवध सदैव सुहावनि । रामपुरी मंगलमय पावनि ॥
तदपि प्रीति कै रीति^३ सुहाई । मंगल रचना रची बनाई ॥

दो०—मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ ।

बीथीं सीचीं चतुरसम चौकै चारु पुराइ ॥

भूप भवनु किमि जाइ बखाना । बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना ॥
कतहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं । कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं ॥

^१ मुनि ।

^२ भएउ; भरेउ ।

^३ प्रीति कै प्रीति ।

गावहि सुंदरि मंगल गीता । लै लै नामु रामु अरु सीता ।
 भूप भरतु पुनि लिए बोलाइ । हय गय स्यंदन साजहु जाई ॥
 चलहु बेगि रघुबीर बराता । सुनत पुलक पूरे दोड भ्राता ॥
 भरत सकल साहनी बोलाए । आयेसु दीन्ह मुदित उठि धाए ॥
 रचि रुचि^१ जीन तुरग तिन्ह साजे । बरन बरन बर वाजि बिराजे ॥
 तिन्ह सब छैल भए असवारा । भरत सरसि बय^२ राजकुमारा ॥
 रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए । ध्वज पताक मनि भूषन लाए ॥
 साँवकरन^३ अगनित हय होते । ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ॥

दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात ।

होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात ॥

कलित करिबरन्ह परी अंबारी । कहि न जाहि जेहि भाँति सँवारी ॥
 बाहन अपर अनेक बिधाना । सिबिका सुभग सुखासन जाना ॥
 तिन्ह चढ़ि चले बिप्र बर बदा । जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा ॥
 मागध सूत बंदि गुननायक । चले जान चढ़ि जो जेहि लायक ॥
 बेसर ऊँट वृषभ बहु जाती । चले वस्तु भरि अगनित भाँती ॥
 चले सकल सेवक समुदाई । निज निज साजु समाजु बनाई ॥

दो०—सब के उर निर्भर हरषु पूरति पुलक सरीर ।

कबहि देखिबे नयन भरि रामु लषनु दोड बीर ॥

गरजहि गज घंटा धुनि घोरा । रथ रव वाजि हिंस^४ चहुँ ओरा ॥
 निदरि घनहि घुम्मरहि निसाना । निज पराइ कछु सुनिअ न काना ॥
 महा भीर भूपति कें द्वारें । रज होइ जाइ पषानु पवारें ॥
 चढ़ी अटारिन्ह देखहि नारी । लिए आरती मंगल थारी ॥
 गावहि गीत मनोहर नाना । अति आनंदु न जाइ बखाना ॥
 तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी । जोते रबि हय निंदक बाजी ॥
 दोड रथ रुचिर भूप पहि आने । नहि सादर पहि जाहि बखाने ॥
 राज समाजु एकरथ साजा । दूसर तेज पुंज अति भ्राजा ॥

^१ रचि रचि ।

^२ सब ।

^३ स्यामकरन ।

^४ हिंसाहि ।

दो०—तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहुं हरषि चढ़ाइ नरेसु ।

आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु ॥

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें । सुरपुर संग पुरंदर जैसें ॥
करि कुल रीति बेद विधि राऊ । देखि सबहि सब भाँति बनाऊ ॥
सुमिरि रामु गुर आयेसु पाई । चले महीपति संख बजाई ॥
भणउ कुलाहल हय गय गाजे । व्योम बरात बाजने बाजे ॥
घंट घटि धुनि बरनि न जाही^१ । सरौ करहि पाइक^२ फहराही ॥
कहिं बिदूषक कौतुक नाना । हास कुसल कल गान सुजाना ॥

दो०—तुरग नचावहि कुँअर वर अकनि मृदंग निसान ।

नागर नट चितवहि चकित डगहिं न ताल बंधान ॥

बनै न बरनत बनी बराता । होहि सगुन सुदर सुभ दाता ॥
राम सरिस बर दुलहिनि सीता । समधी दसरथु जनकु पुनीता ॥
सुनि अस व्याहु सगुन सब नाचे । अब कीन्हें विरंचि हम साँचे ॥
येहि बिधि कीन्ह बरात पयाना । हय गय गाजहि हने निसाना ॥
आवत जानि भानु कुल केतू । सरितन्हि जनक बंधाए सेतू ॥
बीच बीच बर बासु बनाए । सुरपुर सरिस संपदा छाए ॥

दो०—आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान ।

सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान ॥

कनक कलस कल^३ कोपर थारा । भाजन ललित अनेक प्रकारा ॥
भरे सुधा सम सब पकवाने । भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने ॥
फल अनेक बर बस्तु सुहाई । हरषि भेंट हित भूप पठाई ॥
मंगल सगुन सुगंध सुहाए । बहुत भाँति महिपाल पठाए ॥
अगवानन्ह जब दीखि बराता । उर आनंदु पुलक भर गाता ॥
देखि वनाव सहित अगवान । मुदित बरातिन्ह^४ हने निसाना ॥

दो०—हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल ।

जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल ॥

^१ जाई : फट्टराई ।

^२ पायक ।

^३ भरि ।

^४ बराती ।

वस्तु सकल राखीं नृप आगें । बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें ॥
 प्रेम समेत राय सबु लीन्हा । भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा ॥
 करि पूजा मान्यता बड़ाई । जनवासे कहूँ चले लेवाई ॥
 वसन बिचित्र पाँवड़े परहीं । देखि धनदु धन महु परिहरहीं ॥
 अति संदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा ॥
 पितु आगमनु सुनत दोउ भाई । हृदयँ न अति आनंदु अमाई ॥
 सकुचन्ह कहि न सकन गुर पाहीं । पतु दरसन लालचु मन माही ॥
 बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी । उपजा उर संतोषु बिसेखी ॥
 हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए । पुलक अंग अंबक जल छाए ॥
 चले जहाँ दसरथु जनवासैं । मनहुँ सरोवर तकेउ पिआसैं ॥

दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत ।

उठे'हरषि सुख सिंधु महुँ चले थाह सो लेत ॥

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा । बार बार पद रज धरि सीसा ॥
 कौसिक राउ लिये उर लाई । कहि असीस पंछी कुसलाई ॥
 पुनि दंडवत करत दोउ भाई । देखि नृपति उर सुखु न समाई ॥
 सुत हिअँ लाइ दुसह दुख मेटे । मृतक सरीर प्राण जनु भेंटे ॥
 पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए । प्रेम मुदित मुनिबर^३ उर लाए ॥
 बिप्र बंद बंदे दुहुँ भाई । मनभावती असीसैं पाई ॥
 भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा । लिए उठाइ लाइ उर रामा ॥
 हरषे लखनु देखि दोउ भ्राता । मिले प्रेम परिपूरित गाता ॥

दो०—पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत ।

मिले जथाविधि सबहि प्रभु परम कृपालु विनीत ॥

रामहि देखि बरात जुड़ानी । प्रीति कि रीति न जाति^१ बखानी ॥
 नृप समीप सोहहिं सुत चारी । जनु धन धरमादिक तनु धारी ॥
 सुतन्ह समेत दसरथहि देखी । मुदित नगर नर नारि, बिसेषी ॥

सतानंदु अरु विप्र सचिव गन । मागध सूत बिदुष बंदीजन ॥
सहित बरात राउ सनमाना । आयेसु माँगि फिरे अगवाना ॥
प्रथम बरात लगन तें आई । ता तें पुर प्रमोदु अधिकाई ॥

दो०—रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज ।

जहँ तहँ पुरजन कहहि अस मिलि नर नारि समाज ॥

जनक सुकृत मूरति बैदेही । दसरथ सुकृत रामु धरें देही ॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी । भए जग जनमि जनकपुर बासी ॥
जिन्ह जानकी राम छबि देखी । को सुकृती हम सरसि बिसेषी ॥
पुनि देखब रघुबीर बिआहू । लेब भली बिधि लोचन लाहू ॥
कहहि परसपर कोकिल बयनी । येहि बिबाह बड़ लाभु सुनयनी ॥
बड़ भाग बिधि बात बनाई । नयन अतिथि होइहहि दोउ भाई ॥

दो०—बारहि बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय ।

लेन आइहहि बंधु दोउ कोटि काम कमनीय ॥

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥
तब तब राम लखनहि निहारी । होइहहि सब पुरलोग सुखारी ॥
सखि जस राम लषन कर जोटा । तैसइ भूप संग दुइ ढोटा ॥
भरतु राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहि नर नारी ॥
लखनु सत्रसूदन एक रूपा । नख सिख तें सब अंग अनूपा ॥
गएँ बीति कछु दिन येहि भाँती । प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥
मंगल मूल लगन दिनु आवा । हिमरितु अगहन मासु सुहावा ॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू । लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू ॥

दो०—धेनुधूरि बेला बिसल सकल सुमंगल मूल ।

बिप्रन्ह कहे बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल ॥

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब बिलंब कर कारनु काहा ॥
सतानंद तब सचिव बोलाए । मंगल कलस साजि सब ल्याए ॥
लेन चले सादर येहि भाँती । गए जहाँ जनवास बराती ॥
भएउ समउ अब धारिअ पाऊ । येह सुनि परा निसानहि घाऊ ॥

गुरहि पुंछि करि कुलविधि राजा । चले संग मुनि साधु समाजा ॥
 व्याह बिभूषन बिबिध बनाए । मंगलमय^१ सब भाँति सुहाए ॥
 बंधु मनोहर सोहहि संगी । जात नचावत चपल तुरंगा ॥
 जेहि तुरंग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ॥

दो०—साजि आरती अनेक विधि मंगल सकल सँवारि ।

चली मुदित परिछनि करन गज गामिनि बर नारि ॥

नयन नीरु हटि मंगल जानी । परिछनि करहि मुदित मन रानी ॥
 बेद बिहित अरु कुल आचारू । कीन्ह भली बिधि कुल व्यवहारू^२ ॥
 करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा । राम गवनु मंडप तब कीन्हा ॥
 दसरथु सहित समाज बिराजे । बिभव विलोकि लोकपति लाजे ॥
 नभ अरु नगर कोलाहल होई । आपनि पर कछु सुनै न कोई ॥
 एहि बिधि रामु मंडपहि आए । अरघु देख आसन बैठाए ॥

दो०—नाऊ बारी भाट नट रामनिछावारि पाइ ।

मुदित असीसहि नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ ॥

मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं । करि बैदिक लौकिक सब रीती ॥
 मिलत महा दोउ राज बिराजे । उपमा खोजि खोजि कवि लाजे ॥
 लही न कतहुँ हारि हिअँ मानी । इन्ह सम एइ उपमा उर आनी ॥
 सामध देखि देव अनुरागे । सुमन बरषि जसु गावन लागे ॥
 जगु बिरंचि उपजावा जब तें । देखे सुने ब्याह बहु तब तें ॥
 सकल भाँति सम साजु समाजू । सम समधी देखे हम आजू ॥

दो०—बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस ।

दिए दिव्य आसन सर्बहि सब सन लही असीस ॥

ददुरि कीन्ह कोसलपति पूजा । जानि ईस सम भाउ न दूजा ॥
 पूजे भूपति सकल बराती । समधी सम सादर सब भाँती ॥

^१ मंगल सब । ^२ व्यवहारू; आचारू । [च० : (६) (६अ) व्यवहारू; व्यवहारू (८) व्यौहारू; बिस्तारू] ।

आमन उचित दिए सब काहूँ । कहौं काह मुख एक उछाहूँ ॥
सकल बरात जनक सनमानी । दान मान बिनती बर बानी ॥
समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए । सादर सतानंदु सुनि आए ॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई । चले मुदित मुनि आयेसु पाई ॥
बिप्रबधूँ कुल बृद्ध बोलाई । करि कुल रीति सुमंगल गाई ॥
सीय सँवारि समाजु बनाई । मुदित मंडपहि चलीं लेवाई ॥

दो०—सोहति बनिता बंद महुँ सहज सुहावनी सीय ।

छवि ललना गन मध्य जनु सुषमा तित कमनीय ॥

भिय सुंदरता बरनि न जाई । लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
हरषे दसरथु सुतन्ह समेता । कहि न जाइ उर आनंदु जेता ॥
सुर प्रनामु करि बरसहि फूला । मुनि असीस धुनि मंगलमूला ॥
गान निसान कोलाहलु भारी । प्रेम प्रमोद मगन नर नारी ॥
येहि विधि सीय मंडपहि आई । प्रमुदित सांति पढ़हि मुनिराई ॥
तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू । दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू ॥

दो०—होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहि ।

बिप्र वेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहि ॥

जनक पाटमहिषी जग जानी । सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
समउ जानि मुनिबरन्ह बुलाई । सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना । हिमगिरि संग बनी जनु मयना ॥
कनक कलस मनि कोपर रूरे । सुचि सुगंध मंगल जल पूरे ॥
निज कर मुदित राय अरु रानी । धरे राम के आगें आनी ॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे । पाय पुनीत पखारन लागे ॥

दो०—जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगलगान निसान ।

सुनि हरषहि बरषहि बिबुध सुरतरु सुमन सुजान ॥

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरि देहीं । नयन लाभु सब सादर लेहीं ॥
राम सीय सुंदर परिछाहीं । जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं ॥
मनहुँ मदनु रति धरि बहु रूपा । देखत राम बिबाहु अनूपा ॥

दरस लालसा सकुच न थोरी । प्रगटत दुरत बहोँर बहोरी ॥
 भए मगन सब देखनिहारे । जनक समान अपान बिसारे ॥
 प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरीं । नेग सहित सब रीति निबेरीं ॥
 रामु सीय सिर सेंदुर देहीं । सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥
 बहूरि बसिष्ठ दीन्ह अनुसासन । बर दुलहिनि बैठे एक आसन ॥

छं०—बैठे बरासनु रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए ।
 तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए ॥
 भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा ।
 केहि भाँति बरनि सिरात रसना एकु येहू मंगलु महा ॥
 तब जनक पाइ बसिष्ठ आयेसु व्याह साजु सँवारि कै ।
 मांडवी श्रुतिकीरति उर्मिला कुँअरि लई हँकारि कै ॥
 कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई ।
 सब रीति प्रीति समेत करि सो व्याहि नृप भरतहि दई ॥
 जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै ।
 सो जनक दीन्ही व्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै ॥
 जेहि नामु श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी ।
 सो दई रिपुसदनहि भूपति रूप सील उजागरी ॥
 अनुरूप बर दुलहिनि परसपर लखि सकुचि हिअँ हरषहीं ।
 सब मुदित सुंदरता सराहहि सुमन सुर गन बरषहीं ॥
 सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं ।
 जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन्ह सहित बिराजहीं ॥

दो०—मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि ।

जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि ॥

जसि रघुबीर व्याह बिधि बरनी । सकल कुँअर व्याहे तेहि करनी ॥
 कहि न जाइ कछु दाइज भूरी । रहा कनक मनि मंडपु पूरी ॥
 वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा । कहि न जाइ जानहि जिन्ह देखा ॥

लोकपाल अवलोकि सिहाने । लीन्ह अवधपति सब सुखु माने ॥
दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा । उबरा सो जनवासेहि आवा ॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी । बोले सब बरात सनमानी ॥

छं०—कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों ।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों ॥
सनबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए ।
एहि राज साज समेत सेवकु जानिबी बिनु गथ लए ॥
ये दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई ^१ ।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठयो दर्ई ^२ ॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमाननिधि समधी किए ।
कहि जाति नहि बिनती परसपर प्रेम परिपूरन हिए ॥
बंदारका गन सुमन बरिसहि राउ जनवासेहि चले ।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले ॥
तब सखी मंगल गान करत मुनीस आयेसु पाइ कै ।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै ॥

दो०—पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न ।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन ॥

दो०—सहित बधूटिन्ह कुँअर सब तब आए पितु पास ।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास ॥

पुनि जेवनार भई बहु भाँती । पठए जनक बोलाइ बराती ॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा । सुतन्ह समेत गवनु कियो भूपा ॥
सादर सब कै पाय पखारे । जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे ॥
धोए जनक अवधपति चरना । सीलु सनेह जाइ नहि बरना ॥
आसन उचित सबहि नृप दीन्हें । बोलि सूपकारी ^३ सब लीन्हें ॥
सादर लगे परन पनवारे । कनक कील मनि पान सँवारे ॥

^१ करुनानई ।

^२ कई ।

^३ सूपकारक ।

दो०—सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत ।

छन महु सब कैं परसि गे चतुर सुआर बिनीति ॥

पंच कवलि करि जेवन लागे । गारि गान सुनि अति अनुरागे ॥
चारि भाँति भोजन बिधि गाई । एक एक बिधि बरनि न जाई ॥
छ रस रुचिर बिजन बहु जाती^१ । एक एक रस अगनित भाँती^१ ॥
जेवत देहि मधुर धुनि गारी । लै लै नाम पुरुष अरु नारी ॥
ममय सुहावनि गारि बिराजा । हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥
येहि बिधि सबहीं भोजन कीन्हा । आदर सहित आचमनु दीन्हा ॥

दो०—देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज ।

जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज ॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं । निमिष सरिस दिन जामिनि जाही ।
बडे भोर भूपतिमनि जागे । जाचक गुनगन गावन लागे ॥
देखि कुँअर बर बधुन्ह समेता । किमि कहि जात मोदु मन जेता ॥
प्रातक्रिया करि गे गुर पाहीं । महा प्रमोदु प्रेमु मन माही ॥
करि प्रनामु पूजा कर जोरी । बोले गिरा अमिअ जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा । भएउँ आजु मै पूरनकाजा ॥

दो०—वामदेव अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि ।

आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि ॥

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे । पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे ॥
चारि लच्छ बर धेनु मँगाई^१ । काम सुरभि समसील सुहाई^१ ॥
सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं । मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही ॥
पाइ असीस महीसु अनंदा । लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा ॥
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन । दिए बूझि रुचि रविकुल नंदन ॥
चले पढ़त गावत गुनगाथा । जय जय जय दिनकर कुल नाथा ॥

दो०—बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ ।

येहु सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ प्रभाउ ॥

^१ भाँती; जाती ।

जनक सनेहु न सीलु करतूती । नृपु सब राति सराह बिभूती^१ ॥
 दिन उठि बिदा अवधपति माँगा । राखहि जनकु सहित, अनुरागा ॥
 नित नूतन आदरु अधिकाई । दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई ॥
 नित नव नगर अनंदु उछाहू । दसरथ गवनु सोहाइ न काहू ॥
 बहुत दिवस बीते एहि भाँती । जनु सनेह रजु बँधे बराती ॥
 कौसिक सतानंद तब जाई । कहा बिदेह नृपहि समुभाई ॥
 अब दसरथ कहूँ आयेसु देहू । जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेह ॥
 भलेहि नाथ कहि सचिव बोलाए । कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए ॥

दो०—अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ ।

भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ ॥

चलिहि बरात सुनत सब रानी । बिकल मीनगन जनु लघुपानी ॥
 पुनि पुनि सीय गोद करि लेही । देइ असीस सिखावनु देहीं ॥
 होएहु संतत पिअहि पिआरी । चिर अहिबातु असीस हमारी ॥
 सासु ससुर गुर सेवा करेहू । पति रुख लखि आयेसु अनुसरेहू ॥
 अति सनेह बस सखीं सयानीं । नारि धरमु सिखवहि मृदु बानीं ॥
 सादर सकल कुँअरि समुभाई । रानिन्ह बार बार उर लाई ॥

दो०—तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानुकुल केतु ।

चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु ॥

दो०—रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठी^२ रनिवासु ।

करहि निछावर आरती महा मुदित मन सासु ॥

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए । छ रस असन अति हेतु जेंवाए ॥
 बोले रामु सुअवसर जानी । सील सनेह सकुचमय बानी ॥
 राउ अवधपुर चहत सिधाए । बिदा होन हम इहाँ^३ पठाए ॥
 मातु मुदित मन आयेसु देहू । बालक जानि करब नित नेहू ।
 सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू । बोलि न सकहि प्रेम बस सासू ॥

^१ राति सराहत बीती ।

^२ उठेउ ।

^३ हित हमहि ।

हृदय लगाइ कुँअरि सब लीन्ही । पतिन्ह सौँपि बिनती अति कीन्हीं ॥
 राम बिदा माँगा^१ कर जोरी । कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी ॥
 पाइ असीस बहुरि सिरु नाई । भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥
 मंजु मधुर मूरति उर आनी । भईं सनेह सिथिल सब रानी ॥
 पुनि धीरजु धरि कुँअरि हँकारी । बार बार भेटहि महतारी ॥

दो०—प्रेम बिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु ।

मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुना बिरह निवासु ॥

सुक सारिका जानकी ज्याए । कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए ॥
 व्याकुल कहहि कहाँ बैदेही । सुनि धीरजु परिहरै न केही ॥
 भए बिकल खग मृग एहि भाँती । मनुज दसा कैसें कहि जाती ॥
 बंधु समेत जनकु तब आए । प्रेम उमगि लोचन जल छाए ॥
 सीय^२ बिलोकि धीरता भागी । रहे कहावत परम बिरागी ॥
 लीन्ह राय उर लाइ जानकी । मिटी महा मरजाद ज्ञान की ॥

दो०—प्रेम बिबस परिवार सबु जानि सुलगन नरेस ।

कुँअरि चढ़ाई पालकिन्ह सुमिरे सिद्ध गनेस ॥

बहु विधि भूप सुता समुभाईं । नारि धरमु कुलरीति सिखाईं ॥
 दासीं दास दिए बहुतेरे । सुचि सेवक जे प्रिय सिय करे ॥
 भूसुर सचिव समेत समाजा । संग चले पहुँचावन राजा ॥
 दसरथ विप्र बोलि सब लीन्हे । दान मान परिपूरन कीन्हे ॥
 चरन सरोज धूरि धरि सीसा । मुदित महीपति पाइ असीसा ॥
 सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना । मंगल मूल सगुन भए नाना ॥
 बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं । जनकु प्रेम बस फिरै न चहहीं ॥
 राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े । प्रेम प्रवाह बिलोचन बाढ़े ॥

दो०—कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति ।

मिलन परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ समाति ॥

^१ मांगत; मांगे ।

^२ सियहि ।

मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा । आसिरबादु सबहि सन पावा ॥
सादर पुनि भेंटे जामाता । रूप सील गुननिधि सब भ्राता ॥
जोरि पंकरुह पानि सुहाए । बोले बचन प्रेम जनु जाए ॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा । कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा ॥
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे । पूरन कामु रामु परितोषे ॥
बिनती बहुत^१ भरत सन कीन्ही । मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही^२ ॥

दो०—मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस ।

भए परसपर प्रेम बस फिरि फिरि नावहिं सीस ।

बार बार करि बिनय बड़ाई । रघुपति चले संग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक पद जाई । चरनु रेनु सिर नयनन्हि लाई ॥
सुनु मुनीस बर दरसन तोरें । अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे ॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई । फिरे महीसु आसिषा पाई ॥
चली बरात निसान बजाई । मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी । पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ॥

दो०—बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुखु देत ।

अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत ॥

पुरजन आवत अकनि बराता । मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे । हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥
भूपति भवन कोलाहलु होई । जाइ न बरनि समउ सुखु सोई ॥
कौसल्यादि राम महतारी । प्रेम बिबस तन दसा बिसारी ॥
मोद^३ प्रमोद बिबस सब माता । चलहि न चरन सिथिल भए गाता ॥
राम दरस हित अति अनुरागी । परिछनि साजु सजन सब लागी ॥
रचीं आरती बहुत बिधाना । मुदित करहि कल मंगल गाना ॥
समय जानि गुर आयेसु दीन्हा । पुर प्रबेसु रघुकुल मनि कीन्हा ॥
आरति करहि मुदित पुर नारी । हरषहिं निरखि कुँअर बर चारी ॥
सिबिका सुभग ओहार उधारी । देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ॥

^१ बहुति ।

^२ कीन्हा; दीन्हा; कीन्हे; दीन्हे ।

^३ मोह; प्रेम ।

दो०—येहि बिधि सबही देत सुखु आए राज दुआर ।

मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार ॥

करहिं आरती बारहिं वारा । प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा ॥
 बधुन्ह समेत देखि सुत चारी । परमानंद मगन महतारी ॥
 पुनि पुनि सीय राम छबि देखी । मुदित सफल जग जीवन लेखी ॥
 सखी सीय मुखु पुनि पुनि चाही । गान करहिं निज सुकृत सराही ॥
 देखि मनोहर चारिउ जोरीं । सारद उपमा सकल ढँढोरी ॥
 देत न बनहिं निपट लघु लागी । एकटक रहीं रूप अनुरागी ॥

दो०—निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत ।

बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत ॥

चारि सिंघासन सहज सुहाए । जनु मनोज निज हाथ बनाए ॥
 तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बँठारे । सादर पाय पुनीत पखारे ॥
 धूप दीप नैबेद बेद बिधि । पूजे बर दुलहिनि मंगल निधि ॥
 देव पितर पूजे बिधि नीकीं । पूजीं सकल बासना जी की ॥
 भूपति बोलि बराती लीन्हें । जान बसन मनि भूषन दीन्हें ॥
 आयेसु पाइ राखि उर रामहि । मुदित गए सब निज निज धामहि ॥
 पुर नर नारि सकल पहिराए । घर घर बाजन लगे बधाए ॥
 जाचक जन जाचहिं जोड़ जोड़ । प्रमुदित राउ देइ सोइ सोई ॥

दो०—देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ ।

तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ^१ ॥

जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्ही । लोक बेद बिधि सादर कीन्ही ॥
 बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा । नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥
 पूजे गुर पद कमल बहोरी । कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥
 नेगु माँगि मणिनाथ लीन्हा । आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा ॥
 नेगी नेग जोग सब लेहीं । रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं ॥
 प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने । भूपति भली भाँति सनमाने ॥

जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे । सहित बधूटिन्ह कुँअर निहारे ॥
कहेउ भूप जिमि भएउ बिबाहू । सुनि सुनि हरषु होइ सब काहू ॥
जनकराज गुन सीलु बड़ाई । प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥
बहु बिधि भूप भाट जिमि बरनी । रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ॥

दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुरु ज्ञाति ।

भोजनु कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति ॥

मंगल गान करहि बर भामिनि । भै सुख मूल मनोहर जामिनि ॥
अँचै पान सब काहूँ पाए । स्नग सुगंध भूषित छबि छाए ॥
नृप सब भाँति सबहि सनमानी । कहि मृदु बचन बोलाई रानी ॥
बधूँ लरिकिनीं पर घर आईं । राखेहु नयन पलक की नाईं ॥
प्रात पुनीत काल प्रभु जागे । अरुनचूड़ बर बोलन लागे ॥
बंदि मागधन्हि^१ गुन गन गाए । पुरजन द्वार जोहारन आए ॥

दो०—कीन्ह सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ ।

प्रात क्रिया करि तात पहि आए चारिउ भाइ ॥

भूप बिलोकि लिए उर लाई । बैठे हरषि रजायेसु पाई ॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी । लोचन लाभु अवधि अनुमानी ॥
पुनि बसिष्ठ मुनि कौसिकु आए । सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए ॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी । मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी ॥
सुदिन सोधि^२ कल कंकन छोरे । मंगल मोद बिनोद न थोरे ॥
बिस्वामित्रु चलन नित चहही । राम सप्रेम बिनय बस रहहीं ॥
मांगत बिदा राउ अनुरागे । सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे ॥
करबि सदा लरिकन्ह पर छोहू । दरसनु देत रहब मुनि मोहू ॥
असकहि राउ सहित सुत रानी । परेउ चरन मुख आव न बानी ॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती । चले न प्रीति रीति कहि जाती ॥

दो०—राम रूप भूपति भगति व्याहु उछाहु अनंदु ।

जात सराहत मनहि मन मुदित गाधिकुल चंदु ॥

^१ बंदी मागध ।

^२ साधि ।

बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी । बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ॥
 सुनि मुनि सुजसु मनहि मन राऊ । बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ ॥
 बहुरे लोग रजायेसु भएऊ । सुतन्ह समेत नृपति गृह गएऊ ॥
 आए ब्याहि रामु घर जब तें । बसे अनंद अवध सब तब तें ॥
 कबि कुल जीवतु पावन जानी । करन पुनीत हेतु निज बानी ॥
 तेहि तें मैं कछु कहा बखानी । करन पुनीत हेतु निज बानी ॥

सो०—सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहि सुनिहि ।

तिन्ह कहूँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ॥

जब तें रामु ब्याहि घर आए । नित नव मंगल मोद बधाए ॥
 रिधि सिधि संपति नदी सुहाई । उमगि अवध अंबुधि कहूँ आई ॥
 कहि न जाइ कछु नगर बिभूती । जनु एतनिअँ बिरंचि करतूती ॥
 सब बिधि सब पुरलोग सुखारी । रामचंद मुख चंदु निहारी ॥
 मुदित मातु सब सखीं सहेलीं । फलित^१ बिलोकि मनोरथ बेलीं ॥
 राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ । प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥

दो०—सबकें उर अभिलाषु अस कहहि मनाइ महेसु ।

आपु अछत जुबराज पदु रामहि देउ नरेसु ॥

एक समयँ सब सहित समाजा । राजसभाँ रघुराजु बिराजा ॥
 तिभुवन तीनि काल तजग माहीं । भूरिभाग दसरथ सम नाही ॥
 मंगल मूल रामु सुत जासू । जो कछु कहिअ थोर सब तासू ॥
 राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा । बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥
 स्रवन समीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
 नृप जुबराजु राम कहूँ देह । जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

दो०—येह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ ।

प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनाएउ जाइ ॥

कहइ भुआलु सुनिअँ मुनिनायक । भए रामु सब बिधि सब लायक ॥
 अब अभिलाष एकु मन मोरें । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ॥

नाथ रामु करिअहिं जुबराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ॥
 प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । येह लालसा एक मन माहीं ॥
 पुनि न सोचु तनु रहउ कि जाऊ । जेहि न होइ पाछें पछिताऊ ॥
 सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए । मंगल मोद मूल मन भाए ॥

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु ।

सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु ॥

मुदित महीपति मंदिर आए । सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए ॥
 कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए । भूप सुमंगल बचन सुनाए ॥
 प्रमुदित मोहि कहेउ गुर ,आजू । रामहि राय देहु जुबराजू ॥
 मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी । अभिमत बिरव परेउ जनु पानी ॥
 बिनती सचिव करहिं कर जोरी । जिअहु जगपति बरिस करोरी ॥
 जग मंगल भल काजु बिचारा । बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोड जोड आयेसु होइ ।

राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ ॥

जो मुनीस जेह आयेसु दीन्हा । सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
 सुनत राम अभिषेक सुहावा । बाज गहागह अवध बधावा ॥
 राम सीय तन सगुन जनाए । फरकहिं मंगल अंग सुहाए ॥
 पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं । भरत आगमनु सूचक अहहीं ॥
 भए बहुत दिन अति अवसेरी । सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥
 रामहि बंधु सोचु दिन राती । अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भांती ॥

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहसेउ रनिवासु ।

सोभत लखि बिधु बढत जनु बारिधि बीचि बिलासु ॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए । भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए ॥
 प्रेम पुलकि तन मनु अनुरागीं । मंगल कलस सजन सब लागीं ॥
 चौकई चारु सुमित्रा पूरीं । मनिमय बिबिध भांति अति रूरी ॥
 आनंद मगन राम महतारी । दिए दान बहु बिप्र हँकारी ॥

पूजों ग्रामदेवि सुर नागा । कहे बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू । देहु दया करि सो बरदानू ॥

दो०—राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरषे नर नारि ।

लगे सुमंगल सजत सब बिधि अनुकूल बिचारि ॥

तब नरनाह बसिष्ठु बोलाए । राम धाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा । द्वार आइ पद नाएउ माथा ॥
आयसु होइ सो करौ गोसाईं । सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुवराजू ॥
राम करहु सब संजम आजू । जौं बिधि कुसल निवाहइ काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहि गएऊ । राम हृदय अस बिसमउ भएऊ ॥
जनमे एक संग सब भाई । भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
बिमल बंस येहु अनुचित एकू । बंधु विहाइ वड़ेहि अभिषेकू ॥

दो०—तेहि अवसर आए लखनु मगन प्रेम आनंद ।

सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद ॥

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना । पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना ॥
हाट बाट घर गली अथाई । कहहिं परसपर लोग लोगाई ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा । पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा ॥
कनक सिंघासन सीय समेता । बैठहिं रामु होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन बनावहिं देव कुचाली ॥
सारद बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पाय लइ परहीं ॥

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।

राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु ॥

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछताती । भइउँ सरोज बिपिन हिम राती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी । मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी । जाइअ अवध देव हित लागी ॥

बार बार गहि चरन सँकोची । चली बिचारि बिबुध मति पोची ॥
ऊँच निवासु नीच करतूती । देखि न सकहि पराइ बिभूती ॥
हरषि हृदयँ दसरथपुर आई । जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई ॥

दो०—नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकै केरि ।

अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि ॥

दीख' मंथरा नगर बनावा । मंजुल मंगल बाज बधावा ॥
पूँछेसि लोगन्ह काह उछाहू । राम तिलक सुनि भा उर दाहू ॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी । का अनमनि हसि कहहँसि रानी ॥
उतर देइ नहिं लेइ उसाँसू । नारि चरित करि डारइ आँसू ॥
ईसि कह रानि गालु बड़ तोरें । दीन्हि लखन सिख असमन मोरें ॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि । छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि ॥

दो०—सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु ।

लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि भा कुबरी उर सालु ॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई । गालु करब केहि कर बलु पाई ॥
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू । जिन्हहि जनेसु देइ जुवराजू ॥
भएउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन । देखत गरब रहत उर नाहिन ॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें । जानित हहु बस नाहुँ हमारें ॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कड़ावौं तोरी ॥

दो०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।

तिअ बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगलदायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
जैठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जाँ साँचेहु काली । देउँ माँगु मनभावत आली ॥

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहूँ । होहूँ राम सिय पूत पतोहूँ ॥
प्राण तें अधिक रामु प्रिए मोरें । तिन्हकें तिलक छोभु कस तोरें ॥

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहूँ परिहरि कपट दुराउ ।

हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ ॥

एकहि बार आस सब पूजी । अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रौरेंहि लगा ॥
हमहूँ कहबि अब ठकुरसोहाती । नाहिं त मौन रहव दिनु राती ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥
जारइ जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ता तें कछुक बात अनुसारी । छमिअ देबि बड़ चूक हमारी ॥

दो०—गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि ।

सुर माया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥

तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी । रहसी चेरि घात जनु फाबी ॥
तुम्ह पूंछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ ॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी । रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते ॥
भानु कमल कुल पोषनिहारा । बिनु जल^१ जाति करै सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सबति उखारी । रूँधहु करि उपाउ बर बारी ॥

दो०—तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ ।

मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ ॥

चतुर गँभीर राम महतारी । बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठए भरतु नून ननिऔरें । राम मानु मत जानब रौरें ॥
राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी । सबति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ॥
येहु कुल उचित राम कहूँ टीका । सबहि सोहाइ मोहिं सुटि नीका ॥
आगिल बात समुझि डर मोही । देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हैसि कपट प्रबोधु ।

कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ बिरोधु ॥

भावी बस प्रतीति उर आई । पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना । निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥
भएउ पाख दिनु सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
रामहि तिलकु कालि जौ भएऊ । तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बएऊ ॥
रेख खँचाइ कहौ ब्रलु भाखी । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौ सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

दो०—कद्रु बिनतहि दीन्ह दुख तुम्हहि कौसिलई देव ।

भरतु बंदि गृह सेइहहि लषनु राम के नेव ॥

कहि कहि कोटिक कपट कहानी । धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी ॥
कीन्हिसि कठिन पढाइ कुपाटू । जिमि न नवइ फिरि उकट कुकाटू ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि सराहइ मानि मराली ॥
सुनु मंथरा वात फुरि^१ तोरी । दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी ॥
दिन प्रति देखौ राति कुसपने । कहौ न तोहि मोह बस अपने ॥
काह करौ सखि सूध सुभाऊ । दाहिन बाम न जानौ काऊ ॥

दो०—अपने चलत न आजु लागि अनभल काहुक कीन्ह ।

केहि अघ एकहि बार मोहि दैअ दुसह दुखु दीन्ह ॥

नैहर जनमु भरब बर जाई । जितत न करबि सवति सेवकाई ॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही । मरनु नीक तेहि जीव न चाही ॥
दीन बचन कह बहु बिधि रानी । सुनि कुबरीं तिअ माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुख सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना ॥
जेहि राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका ॥
जबतें कुमत सुना मै स्वामिनि । भूख न बासर नींद न जामिनि ॥
पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहि येहु साँची ॥
भामिनि करहु त कहौ उपाऊ । है तुम्हरीं सेवा बस राऊ ॥

दो०—परौ कूप तुअ बचन पर सकौ पूत पति त्यागि ।

कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि ॥

लखइ न रानि निकट दुखु कैसें । चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाही । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाही ॥
दुइ बरदान भूप सन थाती । माँगेहु आजु जुडावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू । देहु लेहु सब सबति हुलासू ॥
भूपति राम सपथ जब करई । तब माँगेहु जेहि वचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते । वचनु मोर प्रिय मानेहु जी ते ॥

दो०—बड़ कुंघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु ।

काजु सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतिआहु ॥

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी । बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा । बहे जात कइ भइसि अधारा ॥
जौ बिधि पुरब मनोरथ काली । करौ तोहि चपपूतरि आली ॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकई ॥
कोप समाजु साजि सबु सोई । राजु करत निज कुमति बिगोई ॥
राउर नगर कोलाहल होई । येहु कुचालि कछु जान न कोई ॥

दो०—साँझ समय सानंद नृपु गएउ कैकई गेह ।

गवनु निठुरता निकट किए जनु धरि देह सनेह ॥

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ । भयबस अगटुड़ परै न पाऊ ॥
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे । ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥
सभय नरेसु प्रिया पहि गएऊ । देखि दसा दुखु दारुन भएऊ ॥
भूमि सयन पटु मोट पुराना । दिए डारि तन भूषन नाना ॥
कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी । अनअहिवातु सूच जनु भाबी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी । प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥ :

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिक बचनि ।

कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥

अनहित तोर प्रिया केई कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
 कहु केहि रंकहि करौ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासौ देसू ॥
 सकौ तोर अरि अमरौ मारी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥
 जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मनु तव आनन चंद चकोरू ॥
 प्रिया आन सुन सरबस मोरें । परिजन प्रजा सकल बस तोरें ॥
 जौ कछु कहौ कपटु करि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ॥

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहँसि उठी मनिमंद ।
 भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरानिनि फंद ॥

पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी । प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥
 भामिनि भएउ तोर मन भावा । घर घर नगर अनंद बधावा ॥
 रामहि देउ कालि जुबराजू । सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
 दलकि उठेउ सुनि हृदय^१ कटोरू । जनु छुड गएउ पाक बरतोरू ॥
 अइसिउ पीर बिहँसि तेहि^२ गोई । चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
 कपट सनेहु बड़ाइ बहोरी । बोली बिहँसि नयन मुँहु मोरी ॥

दो०—माँगु साँगु पै कहटु पिय कबहुँ न देहु न लेहु ।
 देन कहेहु वरदान दुइ तेउ पावत संदेहु ॥

जानेउं मरम् राउ हँसि कहई । तुम्हहि कोहाव परम प्रिय अहई ॥
 थाती राखि न माँगिहु काऊ । बिसरि गएउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
 भूठेहु^३ हमहि दोसु जनि देह । दुइ कै चारि माँगि बर^४ लेह ॥
 रघुकुल रीति सदा चलि आई । प्रान जाहुँ बर बचनु न जाई ॥
 तेहि पर राम सपथ करि आई । सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
 बात दड़ाइ कुमति हँसि बोली । कुमत कुबिहंग कुलह जनु खोली ॥

दो०—भूप मनोरथ सुभग वनु सुख सुबिहंग समाजु ।
 भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु ॥

सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का । देहु एक बर भरतहि टीका ॥
 माँगौ दूसर बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
 तापस बेष बिसेषि उदासी । चौदह बरिस रामु बनवासी ॥
 सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू । ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥
 बिबरन भएउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तर तालू ॥
 माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
 मोर मनोरथु सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
 अवध उजारि कीन्ह कैकेई । दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई ॥

दो०—कवने अवसर का भएउ गएउँ नारि बिस्वास ।

जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास ॥

एहि बिधि राउ मनहि मन भाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा ॥
 भरतु कि राउर पूत न होही । आनेहु मोल बेसाहि कि मोही ॥
 जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारें । काहे न बोलहु बचनु सँभारें ॥
 देहु उतर अरु करहु कि नाही । सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माही ॥
 देन कहेहु अब जनि बर देहू । तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ॥
 अति कटु बचन कहति कैकेई । मानहुँ लोन जरे पर देई ॥

दो०—धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे राय ।

सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठाय ॥

आगें दीखि जरति^१ रिस भारी । मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
 बोले राउ कठिन करि छाती । बानी सबिनय तासु सोहाती ॥
 प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती । भीर^२ प्रतीति प्रीति करि हाती ॥
 मोरें भरतु रामु दुइ आँखी । सत्य कहौं करि संकरु साखी ॥
 अवसि दूतु मै पठउब प्राता । अइहहि बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥
 सुदिनु सोधि सबु साजु सजाई । देउँ भरत कहूँ राजु बजाई ॥

दो०—लोभु न रामहि राज कर बहुत भरत पर प्रीति ।

मैं बड़ छोट बिचारि जिअँ करत रहेउँ नृपनीति ॥

राम सपथ सत कहौ सुभाऊ । राम मातु कछु कहेउ न काऊ ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछैं । तेहि तैं परेउ मनोरथ छूछैं ॥
रिस परिहर अब मंगल साजू । कछु दिन गएँ भरत जुबराजू ॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा । बर दूसर असमंजस माँगा ॥
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा । रिस परिहास कि साँवेहु साँचा ॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू । सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू ॥

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि माँगु बिचारि बिबेकु ।

जेहि देखौ अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ॥

समुझि देखु जिअँ प्रिया प्रवीना । जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फलु उन्हहि देउँ करि साका ॥

दो०—होत प्रातु मुनि बेष धरि जौ न रामु बन जाहि ।

मोर मरनु राउर अजसु नृप समुझिअ मन माहि ॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
लखी नरेस बात सब साँची । तिस मिस मीचु सीस पर नाची ॥
गहि पद बिनय कीन्ह पैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही । राम बिरह जनि मारसि मोहीं ॥
राखु राम कहूँ जेहि तेहि भाँती । नाहि त जरिहि जनमु भरि छाती ॥

दो०—देखी व्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ ।

कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ ॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता । करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता ॥
कंठु सूख मुख आव न बानी । जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी ॥

पुनि कह कटु कठोर कैकेई । मनहुं घाय महुं माहुर देई ॥
जौ अंतहु अस करतबु रहेऊ । माँगु माँगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई । होइ कि खेम कुसल रौताई ॥
छोड़हु वचनु कि धीरजु धरहू । जनि अबला जिमि कग्ना करहू ॥

दो०—मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर ।

लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर ॥

चहत न भरत भूपतहि^१ भोरें । अधिबस कुमति बसी जिअं तोरें ॥
सो सद्गु मोर पाप परिनासू । गणउ कुठाहर जेहि विधि बासू ॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ । सुणहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग कर सोई । लोचन ओट बैठु महुं गोई ॥
जब लगि जिऔ कहाँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारू^२ लागी ॥

दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु ।

कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुं मसानु ॥

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू ।
हृदय मनाव भोरु जनि होई । रामहि जाइ कहइ जनि कोई ॥
बिलपत नृपहि भएउ भिनुसारा । बीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥
तेहि निसि नीद परी नहिं काहू । राम दरस लालसा उछाहू ॥
गए सुमंत्रु तब राउर माही । देखि भयावन जात डेराहीं ॥
पूछे कोउ न उतरु देई । गए जेहि भवन भूप कैकेई ॥
कहि जय जीव बैठ सिर नाई । देखि भूप गति गणउ सुखाई ॥
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूछी । बोली असुभभरी सुभ छूछी ॥

दो०—परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु ।

रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरसु महीसु ॥

आतहु रामहि बेगि बोलाई । समाचार तब पूछेहु आई^३
चलेउ^३ सुमंत्रु राय रुख जानी । लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी

^१ भूपपद ।

^२ नहारहि; नाहरह ।

^३ चलन ।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ । रामहि बोलि कहहिं का राऊ ॥
उर धरि धीरजु गण्ट डुआरें । पूँछहिं सकल देखि मनु मारें ॥
रामु सुमंत्रहि आवत देखा । आदर कीन्ह पिता सम लेखा ॥
निरखि बदन कहि भूप रजाई । रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ॥

दो०—जाइ दीख रघुवसमनि नरपति निपट कुसाजु ।

सहमि परेउ लखि सिधिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥

कम्नामय मृदु राम सुभाऊ । प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी । पूँछी मधुर वचन महतारी ॥
मोहि कहु मातु तात दुख कारनु । कगिअ जननु जेहि होइ निवारनु ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू । राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना । माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भणउ भूप उर सोचू । छाड़ि न सकहि तुम्हार सँकोचू ॥

दो०—सुन सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु ।

सकहु त आयेसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु ॥

निधरक बैठि कहइ कटु बानी । सुनत कठिन्ता अति अकुलानी ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई । बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई ॥
मन मुसकाइ भानुकुल भान् । रामु सहज आनंद निधानू ॥
बोले वचन विगत सब दुषन । मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ॥
सुगु जननी सोइ सुनु बडभागी । जो पितु मातु वचन अनुरागी ॥
तनय भानु पितु तोपनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

दो०—मृनिगन मिलनु बिसेषि वन सबहि भाँति हित मोर ।

तेहि पर^१ पितु आयेसु बहुरि संमत जननी तोर ॥

भरहु प्रान प्रिय पावहि राजू । विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौ न जाउँ वन अइसेहुँ काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥
अब एकु दुखु मोहि बिसेषी । निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी । होत प्रतीति न मोहि महतारी ॥

राउ धीरु गुन उदधि अगाधू । भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू ॥
जातें^१ मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथु तोहि कहु मति भाउ ॥

दो०—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान ।

चलइ जोंक जल^१ बक्र गति जद्यपि सलिलु समान ॥

रहसी रानि राम रख पाई । बोली कपट सनेहु जनाई ॥
सपथ तुम्हार भरत कइ आना । हेतु न दूसर मै कछु जाना ॥
पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई । चौथेंपन जेहि अजसु न होई ॥
अवनिप अकनि रामु पगु धारे । धरि धीरजु तब नयन उधारे ॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे । चरन परत नृप रामु निहारे ॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू । चला बिलोचन आरि प्रबाहू ॥
सोक बिबस कछु कहइ न पारा । हृदयें लगावत बारहि बारा ॥
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी । पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी ॥
देस काल अवसर अनुसारी । बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
अति लघु बात लागि दुखु पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥

दो०—मंगल समय सनेह बस सोचु परिहरिअ तात ।

आयेसु देइअ हरषि हिय कहि पुलकें प्रभु गात ॥

आयेसु पालि जनम फलु पाई । अइहौ बेगिहि होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवौ माँगी । चलिहौ बनहि बहुरि पग लागी ॥
अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा । भूप सोकबस उतरु न दीन्हा ॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । छुअत चड़ी जनु सब तन बीछी ॥
सुनि भए बिकल सकल नर नारी । बेलि ब्रिटप जिमि देखि दवारी ॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई । बड़ विषादु नहि धीरजु होई ॥

दो०—मुख सुखाहि लोचन स्रवहि सोकु न हृदयें समाइ ।

मनहुँ करुन रस कटकई^१ उतरी अवध बजाइ ॥

मिलेहि माँभ बिधि बात बेगारी । जहँ तहँ देहि कैकेइहि गारी ॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी । भइ रघुबंस बेनु बन आगी ॥

^१ ताते ।

^२ कटक लेइ; कटक ।

एक कहहिं भलु भूप न कीन्हा । बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥
 एक धरम परमिति पहिचाने । नृपहि दोसु नहिं देहि सयाने ॥
 एक भरत कर संमत कहहीं । एक उदास भाय सुनि रहहीं ॥
 एक बिधातहि दूषन देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
 बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी । जे प्रिय परम कैकेई केरी ॥
 लगीं देन सिख सीलु सराही । बचन वान सम लागहि ताही ॥

दो०—सीय कि पिय संगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहि धाम ।

राजुकि मूँजव भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम ॥

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू । सोक कलंक कोटि^१ जनि होहू ॥
 भरतहि अवसि देहु जुबराजू । कानन काहू राम कर काजू ॥
 गुर गृहें बसहुँ रामु तजि गेहू । नृप सन अस बरु दूसर लेहू ॥
 जौं परिहास कीन्हि कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥
 राम सरिस सुत कानन जोगू । काह कहिहि सुनि तुम्ह कहूँ लोगू ॥
 उठहु बेगि सोइ करहु उपाई । जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ॥

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित ।

तेहि कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी । मृगिन्ह चितव जनु बाधिनि भूखी ॥
 व्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी । चलीं कहत मतिमंद अभागी ॥
 अति बिपाद अस लोग लोगार्इ^२ । गए मातु पहिं रामु गोसार्इ ॥
 रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा । मुदित मातु पद नाएउ माथा ॥
 धरम धुरीन धरम गति जानी । कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
 पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
 आयेसु देहि मुदित मन माता । जेहि मुद मंगल कानन जाता ॥
 जनि सनेह बस डरपसि भोरें^३ । आनंद अंब अनुग्रह तोरें ॥

दो०—बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान ।

आइ पाय पुनि देखिहौं मनु जनि करसि मलान ॥

^१ कोपि; कोटि ।

^२ मोरें ।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के । मर मम लगे मातु उर करके ॥
 सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी । जिमि जवास परें पावस पानी ॥
 धरि धीरजु सुत बदन निहारी । गदगद बचन कहति महतारी ॥
 तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे । देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
 राज देन कहैं सुभ दिन साधा । कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
 तात सुनावह मोहि निदानू । को दिनकर कुल भएउ कृसानू ॥

दो०—निरखि राम रख सचिवसुत कारनु कहेउ बुभाइ ।

सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहि जाइ ॥

राखि न सकइ न कहि सक जाहू । दूहैं भाँति उर दारुन दाहू ॥
 बहुरि समुझि तिस धरमु सयानी । रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥
 सरल सुभाउ राम महतारी । बोली बचन धीर धरि भारी ॥
 तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका । पितु आयेसु सब धरम क टीका ॥
 जौ पितु मातु कहेउ बन जाना । तौ काननु सत अवध समाना ॥
 जौ सुत कहौ संग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ॥

दो०—येह बिचारि नहि करौ हठ भूँठ सनेह बढ़ाइ ।

मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ ॥

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाईं ॥
 अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना ॥
 अस बिचारि सोइ करहु उपाईं । सबहि जितत जेहि भेंटहु आईं ॥
 जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ । करि अनाथ जनपरिजन गाऊँ ॥
 सब कर आजु सुकृत फल बीता । भएउ करालु कालु विपरीता ॥
 दारुन दुमह दाहु उर व्यापा । बरनि न जाहि बिलाप कलापा ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ ।

जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ॥

बैठि नमित मुख सोचति सीता । रूप रासि पति प्रेम पुनीता ॥
 चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृति सन होइहि साथू ॥
 मंजु बिलोचन मोचत बारी । बोली देखि राम महतारी ॥

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी । सासु ससुर परिजनहि पिआरी ॥
 फूलत फलत भगुड बिधि बामा । जानि न जाइ काह परिनामा ॥
 सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्र लिखित कपि देखि डेराती ॥
 जौ सिय भवन रहइ कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥
 सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी । सील सनेह सुधा जनु सानी ॥

दो०—कहि प्रिय वचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष ।

लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगति बिपिन गुन दोष ॥

मातु समीप कहत सकुचाही । बोले समउ समुभि. मन माही ॥
 राजकुमारि सिखावनु सनहू । आनि भाँति जिअँ जनि कछु गुनहू ।
 आपन मोर नीक जौ चहहू । वचनु हमार मानि गृह रहहू ॥
 येहि तें अधिकु धरमु नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
 मै पुनि करि प्रवान' पितु बानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
 जौ हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥

दो०—भूमि सयन बलकल वसन असन कंद फल मूल ।

ते कि सदा सब दिन मिलहि सबहुइ समय अनुकूल ॥

डरपहि धीर गहन सुधि आएँ । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ ॥
 रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चंदबदनि दुखु कानन भारी ॥
 सुनि मृदु वचन मनोहर पिअ कें । लोचन ललित भरे जल सिय कें ॥
 उतरु न आव बिकल बेदही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
 लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी ॥
 वन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
 प्रभु बियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
 अस जिअँ जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ सग मोहि छाँड़िअ जनि ॥

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहिं प्रान ।

दीनबंधु सुदर सुखद सील सनेह निधान ॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
 को प्रभु सँग मोहि चितवनि हारा । सिंघ बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
 अस कहि सीय बिकल भइ भारी । बचन बियोगु न सकी सँभारी ॥
 देखि दसा रघुपति जिअँ जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राणा ॥
 कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा । परिहरि सोचु चलहु बन साथी ॥
 कहि प्रिय बचन प्रिया समुभाई । लगे मानु पद आसिष पाई ॥
 बेगि प्रजा दुख मेटव आई । जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥
 फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी । देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥

दो०—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात ।

कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहौं गात ॥

लखि सनेह कातरि महतारी । बचनु न आव बिकल भइ भारी ॥
 राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
 तब जानकी सासु पग लागी । सुनिअ माय मैं परम अभागी ॥
 सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा । मोर मनोरथु सफल^१ न कीन्हा ॥
 तजव छोभु जनि छाँड़िअ छोहू । करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
 सुनि सिय बचन सासु अकुलानी । दसा कवनि बिधि कहौ बखानी ॥
 बारहिं बार लाइ उर लीन्ही । धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
 अचल होउ अहिबातु तुम्हारा । जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥

दो०—सीतहिं सासु असीस सिख दीन्ह अनेक प्रकार ।

चलीं नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥

समाचार जब लछिमन पाए । ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥
 कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े । मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
 बोले बचनु रामु नयनागर । सील सनेह सरल सुख सागर ॥
 भवन भरतु रिपुसूदन नहिं । राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
 मैं बन जाउँ तुम्हिहि लेइ साथी । होइ सर्बहिं बिधि अवध अनाथा ॥
 रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥

दो०—उतर न आवत प्रेमबस गहे चरन अकुलाइ ।

नाथ दास मै स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥

दीन्ह मोहि सिख नीकि गोसाईं । लागि अगम अपनी कदराईं ।
गुर पितु मातु न जानौं काहू । कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लागि जगत सनेह सगाईं । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाईं ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरनरत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ॥

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन विनीत ।

समुभाए उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत ॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए । मनहुं अंध फिरि लोचन पाए ॥
जाइ जननि पद नायउ माथा । मनु रघुनंदन जानकि साथी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा । मृगी देखि दव जनु चहुं ओरा ॥
लखन लखेउ भा अनरथु आजू । येहिं सनेहबस करब अकाजू ॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं । जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं ॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुसीलु सुभाउ ।

नृप सनेहु लखि धुनेउि सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
रागु रोषु इरिषा महु मोह । जनि सपनेहु इन्हकें बस होह ॥
जेहि न रामु बन लहहि कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥

सो०—मातु चरन सिरु नाइ चले तुरित संकित हृदय ।

बागुर विषम तोराइ मनहुं भाग मृगु भागबस ॥

गए लखनु जहँ जानकिनाथू । भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
 बदि राम सिय चरन सुहाए । चले संग नृपमंदिर आए ॥
 सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय वचन रामु पगु धारे ॥
 सिय समेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भएउ भूमिपति भारी ॥
 नाइ सीसु पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ॥
 राय राम राखत हित लागी । बहृत उपाय किए छलु त्यागी ॥
 लखी^१ राम रख रहत न जाने । धरम धुरंधर धीर सयाने ॥
 तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही । अति हित बहृत भाँति सिख दीन्ही ॥

दो०—सिख सीतलि हित मधर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि ।

सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ॥

सीय सकुच बस उतर न देई । सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
 मुनि पट भूषन भाजन आनी । आगें धरि बोली मृदु बानी ॥
 नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा । सील सनेह न छॉड़िहि भीरा ॥
 अस विचारि सोइ करहु जो भावा । राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
 रामु तुरत मुनि बेषु बनाई । चले जनक जननी सिरु नाई ॥
 निकसि ब्रसिष्ठ द्वार भागु ठाढे । देखे लोग बिरह दव दाढ़े ॥
 दासी दास बोलाइ बहोरी । गुरहि सौपि बोले कर जोरी ॥
 सब कै सार सँभार गोसाई । करबि जनक जननी की नाई ॥
 बारहि बार जोरि जुग पानी । कहत रामु सबसन मृदु बानी ॥
 सोई सब भाँति मोर हितकारी । जेहि तें रहइ भुआल सुखारी ॥

दो०—मातु सकल मोरें बिरहँ जेहिं न होहि दुख दीन ।

सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रवीन ॥

येहि विधि राम सबहि समुझावा । गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा ॥
 गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ॥
 रामु चलत अति भएउ बिषादू । सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
 गइ मुरुछा तब भूपति जागे । बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥

रामु चले बन प्रान न जाही । केहिं सुख लागि रहत तन माही ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाह । ले रथु संग सखा तुम्ह जाह ॥

सो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि ।

रथ चढ़ाइ देखराइ वनु फिरेहु गए दिन चारि ॥

जौ नहि फिरहि धीर दोउ भाई । सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी । फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी ॥
जब सिय, कानन देखि डेराई । कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई ॥
मासु ससुर अस कहेउ संदेसू । पुत्रि फिरिअ वन बहुतु कलेसू ॥
येहि विधि करेहु उपाय कदवा । फिरइ त होइ प्रान अवलंबा ॥
असि कहि मुरछि परा महि राऊ । राम लखनु सिय आनि देखाऊ ॥

दो०—पाइ रजायेसु नाइ सिख रथु अति बेग बनाइ ।

गएउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ ॥

तव सुमंत्र नृप वचन सुनाए । करि विनती रथ रामु चढ़ाए ॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई । चले हृदय अवधहि सिख नाई ॥
चलत रामु लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लागे साथ ॥
कृपासिधु बहु विधि समुभावहि । फिरहि प्रेमबस पुनि फिरि आवहि ॥
सहि न सके रघुवर बिरहागी । चले लोग सब व्याकुल भागी ॥
सबहि बिचारु कीन्ह मनमाही । राम लखन सिय बिनु सुखु नाही ॥

दो०—बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ ।

तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ॥

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सद्य हृदय दुखु भएउ विसेपी ॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए । बहु विधि राम लोग समुभाए ॥
किए धरम उपदेस घनेरे । लोग प्रेमबस फिरहि न फेरे ॥
सील सनेहु छाँड़ि नहि जाई । असमंजसबस भे रघुराई ॥
जबहि जाम जुग जामिनि बीती । राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोजु मारि रथु हाँकहु ताता । आन उपाय बनिहि नहि बाता ॥

दो०—राम लखनु सिय जान चढ़ि संभु चरन सिख नाइ ।

सचिव चलाएउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ ॥

जागे सकल लोग भए भोरू । गे रघुनाथ भएउ अति सोरू ॥
 रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं । राम राम कहि चहुँ दिसि धावहि ॥
 मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू । भएउ बिकल बड़ बनिक समाजू ॥
 एकहि एक देहि उपदेसू । तजे राम हम जानि कलेसू ॥
 जौ पै प्रिय ब्रियोगु बिधि कीन्हा । तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा ॥
 एहि बिधि करत प्रलाप कलापा । आए अवध भरे परितापा ॥

दो०—राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि ।

मनहु कोक कोकीं कमल दीन बिहीन तमारि ॥

सीता सचिव सहित दोउ भाई । सृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई ॥
 उतरे राम देवसरि देखी । कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी ॥
 लखन सचिवैं सियँ किए प्रनामा । सर्वाह सहित सुख पाएउ रामा ॥
 मज्जनु कीन्ह पंथ स्रमु गएऊ । सुचि जलु पिअत मुदित मनु भएऊ ॥
 येह सुधि गुह निषाद जब पाई । मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई ॥
 लिए फल मूल भेट भरि भारा । मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥
 सहज सनेह बिबस रघुराई । पूँछी कुसल निकट बैठाई ॥
 नाथ कुसल पद पंकज देखें । भएउँ भाग भाजन जनु लेखें ॥
 कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ । थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ ॥
 कहेहुँ सत्य सबु सखा सुजाना । मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना ॥

दो०—बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहार ।

ग्रामु बास नहिं उचित सुनि गुहहि भएउ दुख भार ॥

राम लखन सिय रूपु निहारी । कहहि सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
 ते पितु मातु कहहु सखि कैसें । जिन्ह पठए बन बालक ऐसें ॥
 एक कहहि भल भूपति कीन्हा । लोयन लाहु हमहि बिधि दीन्हा ॥
 तब निषादपति उर अनुमाना । तरु सिंसुपा मनोहर जाना ॥
 लै रघुनाथहि ठाँव देखावा । कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
 पुरजन करि जोहर घर आए । रघुबर संध्या करन सिधाए ॥

गुहँ सवाँरि साथरी डसाई । कुस किसलय मय मृदुल सुहाई ॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि भरि राखेसि आनी^१ ॥

दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ ।

सयन कीन्ह रघुवंसमनि पाय पलोत्त भाइ ॥

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ॥
गुह बोलाइ पाहणु प्रतीती । ठावँ^२ ठावँ राखें अति प्रीती ॥
आपु लखन पहुँ बैठेउ जाई । कटि भाथी^३ सर चाप चढाई ॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भएउ प्रेमवस हृदयँ विषादू ॥
तनु पुलकित जल लोचन बहई । वचन सप्रेम लखन सन कहई ॥
रामचंद्र पति सो बैदेही । सोवति^४ महि बिधि व्राम न केही ॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू । करमु प्रधान सत्य कह लोगू ॥

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह ।

जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥

कहत राम गुन भा भिनुमारा । जागे जग मंगल दातारा^५ ॥
सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बटछीर मंगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए । देखि सुमंत्र नयन जल छाए ॥
हृदय दाहु अति वदन मलीना । कह कर जोरि वचन अति दीना ॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लै रथु जाहु राम के साथी ॥
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी । संसय सकल संकोच निबेरी ॥

दो०—नृप अस कहेउ गोसाईँ जस कहई करौं बलि सोइ ।

करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मगु तुम्ह सबु सोधा ॥
सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ॥

^१ पानी ।

^२ भाथा ।

^३ सोवत ।

^५ सुखदारा ।

मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा । तजे तिहूँ पुर अपजस छावा ॥
संभावित कहूँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दाहन दाहू ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ । दिऐँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ ॥

दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करबि कर जोरि ।

चिता कवनिहु बात कइ तात करिअ जनि मोरि ॥

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें । बिनती करौँ तात कर जोरें ॥
सब बिधि सोइ करतव्य तुम्हारे । दुखु न पाव पितु सोच हमारे ॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू । सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू ॥
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया । सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया ॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना । सियहि दीन्हि सिख कोटि बिधाना ॥
सासु ससुर गुर प्रिय परिवारु । फिरहु त सबकर मिटइ खभारु ॥
पतिहि प्रेम मय बिनय सुनाई । कहति सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी । उतर देउँ फिरि अनुचित भारी ॥

दो०—सासु ससुर सन मोरि हुँति बिनय करबि परि पायँ ।

मोर सोचु जनि करिअ कछु मै बन सुखी सुभायँ ॥

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी । भएउ बिकल जनु कनि मनि हानी ॥
राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । तदपि होति नहि सीतलि छाती ॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई । फिरेउ बनिकु जनु मूरु गवाई ॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये । सुरसरि तीर आपु तब आए ॥
माँगी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहू सबु कहई । मानुषकरनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥
कृपासिंधु बोले मुसुकाई । सोइ करु जेहि तव नाव न जाई ॥
केवट रामु रजायेसु पावा । पानि कठवता भरि लइ आवा ॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार ।

पितर पारु करि प्रभङ्गि पनि मदित गएउ लइ पार ॥

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा । पूजि पारथिव नाएउ माथा ॥
 तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू । सुनत सूख मुख भा उर दाहू ॥
 सहज सनेहु राम लखि तासू । संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥
 तेहि दिन भएउ बिटप तर बासू । लखन सखा सब कीन्ह सुपास ॥
 प्रात प्रातकृत करि रघुराई । तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥
 मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा । पूजि जथाविधि तीरथ देवा ॥
 तब प्रभु भरद्वाज पहि आये । करत दंडवत मुनि उर लाये ॥
 सीय लखन जन सहित सुहाये । अतिरुचि राम मूल फल खाये ॥

दो०—राम कीन्ह बिस्त्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ ।

चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे । जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे ॥
 ग्राम निकट निकसहि जब जाई । देखहि दरसु नारि नर धाई ॥
 अति लालसा सबहि मन माहीं । नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं ॥
 सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं । रानी राय कीन्ह भल नाही ॥
 पुनि सिय राम लखन कर जोरी । जमुनिहि कीन्ह प्रनाम बहोरी ॥
 चले ससीय मुदित दोउ भाई । रबितनुजा कै करत बड़ाई ॥
 गाँव गाँव अस होइ अनंद । देखि भानु कुल कैरव चंद ॥
 राम लखन पथि कथा सुहाई । रही सकल मग कानन छाई ॥

दो०—येहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत ।

जाहि चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ॥

देखत बन सर सैल सुहाए । बालमीकि आस्रम प्रभु आए ॥
 मुनि कहूँ राम दंडवत कीन्हा । आसिरबादु बिप्रवर दीन्हा ॥
 मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए । कंद मूल फल मधुर मँगाए ॥
 सिय सौमित्रि राम फल खाए । तब मुनि आसन दिए सुहाए ॥
 तब कर कमल जोरि रघुराई । बोले बचन स्रवन सुखदाई ॥
 देखि पाय मुनिराय तुम्हारे । भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
 अब जहँ राउर आयेसु होई । मुनि उदबेगु न पावइ कोई ॥
 कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक । आस्रमु कहौ समय सुखदायक ॥

दो०—चित्रकूट महिमा अमित कही महा मुनि गाइ।

आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहुँ कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥
रमेउ राम मन देवन्ह जाना। चले सहित सुरथपति प्रधाना^१॥
कोल किरात वेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाइ मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

दो०—लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।

सोह मदन मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥

येह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥
राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
विदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहि बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥
नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहि बिसोकी॥
सेवहि लखनु करम मन जानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बन प्रिय लागा॥
सीय लखनु जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथु करहि सोइ कहहीं॥
कहहि पुरातन कथा कहानी। सुनहि लखनु सिय अति सुखु मानी॥

दो०—राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।

जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहि छनहि छन मगन बिषादा॥
सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर विहीना॥
बचन न आउ हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥

^१ सुरपति परधाना।

देहीं उतर कौन मुँहु लाई । आएउँ कुसल कुँअर पहुँचाई ॥
 येहि विधि करत पंथ पछितावा । तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
 बिदा किए करि विनय निषादा । फिरे पाय परि बिकल बिषादा ॥
 अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारें । पैठ भवन रथु राखि दुआरें ॥

दो०—सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भएउ रनिवासु ।

भवन भयंकर लाग तेहि मानहु प्रेत निवासु ॥

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा । अमिअ रहित जनु चंद्र विराजा ॥
 भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई । बूझत कछु अधार जनु पाई ॥
 सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसु । कहु सिय राम लखनु संदेसु ॥
 सूत बचन सुनतहि नरनाहू । परेउ धरनि उर दारुन दाहू ॥
 कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही । कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ॥
 बिलपत राउ बिकल बहु भाँती । भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।

तनु परिहरि रघुबीर बिरह राउ गएउ सुरधाम ॥

सोक बिकल सब रोवहि रानी । रूपु सीलु बलु तेजु बखानी ॥
 करहि बिलाप अनेक प्रकारा । परहि भूमि तल बारहि बारा ॥
 बिलपहि बिकल दास अरु दासी । घर घर रुदनु करहि पुरबासी ॥
 अँधएउ आजु भानुकुल भानू । धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥
 गारी सकल कैकइहि देहीं । नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं ॥
 येहि बिधि बिलपत रडनि बिहानी । आए सकल महामुनि ज्ञानी ॥

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास ।

सोक निवारेउ सबहि कर निज बिज्ञान प्रकास ॥

तेल नाव भरि नृपु तनु राखा । दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥
 धावहु बेगि भरत पहि जाहू । नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥
 एतनेइ कहेहु भरत सन जाई । गुर बोलाइ पठए दोउ भाई ॥
 सुनि मुनि आयेसु धावन धाए । चले बेगि बर बाजिलजाए ॥
 अनरथु अवध अरंभेउ जब ते । कुसगुन होहि भरत कहूँ तब तें ॥
 माँगहि हृदयँ महेस मनाई । कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥

दो०—येहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ ।

गुर अनुसासन स्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥

चले समीर बेग हय हाँके । नाघत सरित सैल बन बाँके ॥
 एक निमेष बरष सम जाई । येहि बिधि भरत नगर निअराई ॥
 आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि । हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि ॥
 सजि आरती मुदित उठि धाई । द्वारेहि भेंटि भवन लेइ आई ॥
 भरत दुखित परिवार निहारा । मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा ॥
 सुतहि ससोच देखि मनु मारें । पूँछति नैहर कुसल हमारें ॥
 सकल कुसल कहि भरत सुनाई । पूँछी निज कुल कुसल भलाई ॥
 आदिहु तें सबु आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन ।

हेतु अपनपउ जानि जिअं थकित रहे धरि मौन ॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुभावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
 सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारु । पाकें छत जनुलाग अँगारु ॥
 धीरजु धरि भरि लेहि उसासा । पापिनि सबहि भाँति कुल नासा ॥
 तेहि अवसर कुबरी तहँ आई । बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥
 लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई । बरत अनल घृत आहुति पाई ॥
 हूमगि लात तकि कूबर मारा । परि मुँह भर महि करत पुकारा ॥
 कूबर टूटेउ फूट कपारु । दलित दसन मुख रुधिर प्रचारु ॥
 आह दइअ मै काह नसावा । करत नीक फलु अनइस पावा ॥
 सुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी । लगे घसीटन धरि धरि भोंटी ॥
 भरत दयानिधि दीन्हि छड़ाई । कौसल्या पहि गे दोउ भाई ॥

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीरु दुख भार ।

कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसारु ॥

भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनि परी भइँ आई ॥
 देखत भरतु बिकल भए भारी । परे चरन तन दसा बिसारी ॥
 मात तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई । सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥
माता भरतु गोद बैठारे । आँसु पोंछि म्दु वचन उचारे ॥
काहुहि दोस देहू जनि ताता । भा मोहि सब बिधि वाम बिधाता ॥
जो एतेहु दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ॥
रामु लखनु सिय वनहि सिधाए । गइउँ न सग न प्रान पठाए ॥

दो०—कौसल्या के वचन सुनि भरत सहित रनिवासु ।

व्याकुल बिलपत राजगृहु मानहुँ सोक निवासु ॥

बिलपहि विकल भरत दोउ भाई । कौसल्या लिए हृदय लगाई ॥
करत बिलाप बहुत येहि भाँती । बैठेहि बीति गई सब राती ॥
वामदेउ बसिष्ठ तब आए । सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे । कहि परमारथ वचन सुदेसे ॥
नृप तनु बेद बिहित अन्हवावा । परम बिचित्रु विमान बनावा ॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई । जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥
येहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही । बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही ॥
सोधि सुमृत सब बेद पुराना । कीन्ह भरत दसगात विधाना ॥
बेठे राजसभा सब जाई । पठए बोलि भरत दोउ भाई ॥
भरतु बसिष्ठ निकट बेठारे । नीति धरममय वचन उचारे ॥

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।

हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥

भएउ न अहइ न अब होनिहारा । भूउ भरत जस पिता तुम्हारा ॥
येहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू । सिर धरि राज रजायेसु करहू ॥
बेद विदित संमत सबही का । जेहि पिनु देइ सो पावइ टीका ॥
सौपेहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेहु सुनाएँ ॥
कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयेसु अहई ॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषातु काल गति जानी ॥

सो०—भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि ।

बचनु अमिअ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ॥

मोहि उपदेसु दीन्ह ग्र नीका । प्रजा सचिव संमत सबहीं का ॥
मातु उचित धरि^१आयेसु दीन्हा । अवमि सीस धरि चाहौं कीन्हा ॥
जद्यपि येह समुझत हउँ नीके । तदपि होत परितोष न जी के ॥
हित हमार सियपति सेवकाई । सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥
मै अनुमानि दीखि^२मन माही । आन उपाय मोर हित नाही ॥
जाउँ राम पहि आयेसु देह । एकहि आँक मोर हित येह ॥
उतर देउँ केहि विधि केहि केही । कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ॥
मोर जनम रघुवर बन लागी । भूँठ काह पछिताउँ अभागी ॥

दो०—आपनि दारुन दीनता कहौ सबहि सिरु नाइ ।

देखें बिनु रघुनाथ पद जिअ कै जरनि न जाइ ॥

आन उपाय मोहि नहिं सूझा । को जिअ कै रघुवर बिनु बूझा ॥
एकहि आँक इहइ मन माही । प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाही ॥
तुम्ह पै पाँव मोर भल मानी । आयेसु आसिष देहु सुबानी ॥
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी । आवहि बहुरि रामु रजधानी ॥
भरत बचन सब कहूँ प्रिय लागे । राम सनेह सुधा जनु दागे ॥
मातु सचिव गुर पुर नर नारी । सकल सनेह विकल भए भारी ॥

दो०—अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह ।

सोक सिधु बूझत सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥

भा सब के मन मोदु न थोरा । जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥
मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई । चले सकल घर विदा कराई ॥
जागत सब निसि भएउ बिहाना । भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू । बनहि देव मुनि रामहिं राजू ॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना । चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी । चढ़ि चढ़ि चलत भई सब रानी ॥

दो०—सौंपि नगर सुचि सेवकन्ह सादर सबहि चलाइ ।

सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरतु दोउ भाइ ॥

बन सिय रामु समुझि मन माहीं । सानुज भरत पयादेहि जाही ॥
देखि सनेहु लोग अनुरागे । उतरि चले हय गय रथ त्यागे ॥
जाइ समीप राखि निज डोली । राम मातु मृदु बानी बोली ॥
तात चढ़हु रथ बलि महतारी । होइहि प्रिय परिवार दुखारी ॥
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू । सकल सोक कृस नहि मग जोगू ॥
सिर धरि बचन चरन सिरु नाई । रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू । दूसर गोमति तीर निवासू ॥
सई तीर बसि चले बिहाने । शृङ्गबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निषादा । हृदयें बिचार करइ सविषादा ॥
कारन कवन भरतु बन जाहीं । है कछु कपट भाव मन माही ॥

दो०—अस बिचारि गुह जाति सन कहेउ सजग सब होहु ।

हथबासहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ॥

होहु सँजोइल रोकहु घाटा । ठाटहु सकल मरइ के ठाटा ॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ । जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥
दीख निषादनाथ भल टोलू । कहेउ बजाउ जुभाऊ ढोलू ॥
एतना कहत छींक भइ बाएँ । कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ॥
बूढु एक कह सगुन बिचारी । भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढा । सहसा करि पछिताहिं बिमूढा ॥

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब लेउँ मरमु मिलि जाइ ।

बूझि मित्र अरि मध्य गति तबु तसु^१ करिहौं आइ ॥

मिलन साजु सजि मिलन सिधाए । मंगलमूल सगुन सुभ पाए ॥
देखि दूरि तें कहि निज नामू । कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा । भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥
राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा । चले उतरि उमगत अनूरागा ॥

रामसखहि मिलि भरतु सप्रेमा । पूँछी कुसल^१ सुमंगल खेमा ॥
 देखि भरत कर सीलु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥
 कहि निषाद निज नामु सुबानी । सादर सकल जोहारीं रानी ॥
 जानि लखन सम देहि असीसा । जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ॥
 येहि बिधि भरत सेनु सब संगी । दीख जाइ जग पावनि गंगा ॥
 रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू । भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥

दो०—येहि बिध मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ ।

मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाई ॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा । भरत सोधु सबहीं कर लीन्हा ॥
 चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी । जननी सकल भरत सनमानी ॥
 भाइहि सौपि मातु सेवकाई । आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ॥
 पूँछत सबहि सो ठाउँ देखाऊ । नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥
 जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए । कहत भरे जल लोचन कोए ॥
 चरन रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥
 निदहि आपु सराहि निषादहि । को कहि सकइ बिमोह बिषादहि ॥
 येहि बिधि राति लोगु सबु जागा । भा भिनुसारु गुदारा लागा ॥
 गुरहि सुनाव चढाई सुहाई । नई नाव सब मातु चढाई ॥
 दंड चारि महँ भा सबु पारा । उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥

दो०—प्रात क्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ ।

आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाई ॥

किएउ निषादनाथु अगुआई । मातु पालकी सकल चलाई ॥
 साथ बोलाई भाइ लघु दीन्हा । बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा ॥
 गवने भरत पयादेहि पाएँ । कोतल संग जाहि डोरिआएँ ॥
 कहहि सुसेवक बारहि बारा । होइअ नाथ अस्व असवारा ॥
 रामु पयादेहि पाउ सिधाए । हम कहँ रथ गज बाजि बनाए ॥
 सिर भर जाउँ उचित अस मोरा । सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग ।

कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए । भरद्वाज मुनिबर पहि आए ॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे । मूरतिवंत^१ भाग्य निज लेखे ॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्ह असीस कृतारथ कीन्हे ॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे । चहत सकुच गहँ जनु भजि पैंटे ॥
मुनि पूँछब किछु येह बड़ सोचू । बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू ॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । बिधि करतब पर किछु न बसाई ॥
भरत धन्य तुम जग जस^२ जयेऊ । कहि अस प्रेम मगन मुनि भएऊ ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी । सब दुखु मिटिहि राम पग देखी ॥

दो०—करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि प्रेम प्रिय होहु ।

कंद मूल फल फूल हम देहि लेहु कर छोहु ॥

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा । नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा ॥
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे । चले चित्रकूटहि चितु दीन्हे ॥
लखन राम सिय पंथ कहानी । पूँछत सखहि कहत मुदु बानी ॥
बीच बास करि जमुनहि आए । निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥
प्रात पार भए एकहि खेवाँ । तोषे रामसखा की सेवाँ ॥
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई । साथ निषादनाथु दोउ भाई ॥
जहँ जहँ राम बास बिस्रामा । तहँ तहँ करहि सपेम प्रनामा ॥
करि प्रनामु पूँछहि जेहि तेही । केहि बन लखनु राम बैदेही ॥

दो०—तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ ।

राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ ॥

राम सखा तेहि समय देखावा । सैल सिरोमनि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित पय तीरा । सीय समेत बसहि दोउ बीरा ॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा । जागे सीय सपन अस देखा ॥
सहित समाज भरत जनु आए । नाथ बियोग ताप तन ताए ॥

^१ मूरतिमंत ।

^२ जस जग ।

सकल मलिन मन दीन दुखारी । देखीं सासु आन अनुहारी ॥
 सुनि सिय सपन भरे जल लोचन । भए सोच बस सोचबिमोचन ॥
 लखन सपन यह नीक न होई । कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
 अस कहि बंधु समेत नहाने । पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥

छं०—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए ।
 नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गए ॥
 तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चत सचकित^१ रहे ।
 सब समाचार । केरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर ।
 सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल ॥

बहुरि सोचबस भे सियरवनू । कारन कवन भरत आगमनू ॥
 एक आइ अस कहा बहोरी । सेन संग चतुरंग न थोरी ॥
 सो सुनि रामहि भा अति सोचू । इत पितु बच उत बंधु सँकोचू ॥
 भरत सुभाउ समुझि मन माहीं । प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं ॥
 लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू । कहत समय सम नीति बिचारू ॥
 कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी । जानि रामु बन बास एकाकी ॥
 करि कुमंत्रु मन साजि समाजू । आए करइ अकंटक राजू ॥
 अनुचित नाथ न मानब मोरा । भरत हमहि उपचरा^२ न थोरा ॥

दो०—छत्र^३जाति रघुकुल जनमु राम अनुज^४जगु जान ।
 लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ॥

उठि कर जोरि रजायेसु माँगा । मनहुँ बीररस सोवत जागा ॥
 आजु राम सेवक जसु लेऊँ । भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
 जौ सहाय कर संकरु आई । तौ मारौ रन राम दोहाई ॥
 जगु भय मगन गगन भइ बानी । लखन बाहु बलु बिपुल बखानी ॥
 अनुचित उचित काजु कछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥

^१ चक्रित चक्कित ।

^२ उपचार ।

^३ छत्रि ।

^४ अनुग ।

सहसा करि पाछें पछिताही । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ ।

कबहुँ की काँजी सीकरनि छीरसिधु बिनसाइ ॥

इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ । मंदाकिनी पुनीत नहाएँ ॥
सरित समीप राखि सब लोगा । माँगि मातु गुर सचिव नियोगा ॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई । साथ निषादनाथु लघु भाई ॥
फेरति मनहिं^१ मातृकृत खोरी । चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुभत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ॥
तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई । कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
ये तर सरित समीप गोसाईं । रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय रामु सुजान ।

सुनहि कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
भरत दीख प्रभु आस्रमु पावन । सकल सुमंगल सदन सुहावन ॥
करत प्रवेस मिटे दुख दावा । जनु जोगी परमारथु पावा ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं । भूतल परे लकुट की नाई ॥
उठे रामु सुनि पेस अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ॥

दो०—बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।

भरत राम की मिलनि लखि बिसरे^२ सबहि अपान ॥

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम ।

भूरि भायँ^३ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ॥

^१ मनहु ।

^२ बिसरा ।

^३ भाग ।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
 पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥
 सानुज भरत उमगि अनुरागा । धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
 पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए । सिर कर कमल परसि बैठाए ॥
 सीय असीस दीन्ह मन माहीं । मगन सनेह देह सुधि नाहीं ॥
 सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच उर अपडर बीता ॥
 कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा । प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥
 तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग ।

सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग ॥

सीलसिधु सुनि गुर आगवनू । सिय समीप राखे रिपुदवनू ॥
 चले सबेग राम तेहि काला । धीर धरम धुर दीन दयाला ॥
 गुरहि देखि सानुज अनुरागे । दंड प्रनाम करन प्रभु लागे ॥
 मुनिबर धाइ लिए उर लाई । प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई ॥
 प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरि तें दंड प्रनाम् ॥
 रामसखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुटत^१ सनेह समेटा ॥
 देखीं राम दुखित महतारी । जनु सुबेलि अवलीं हिम मारी ॥
 प्रथम राम भेंटी कैकेई । सरल सुभायें भगति मति भेई ॥

दो०—भेंटी रघुवर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु ।

अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोसु ॥

सीय आइ मुनिबर पग लागी । उचित असीस लही मन माँगी ॥
 सासु सकल जब सीय^२ निहारी । मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ॥
 बिकल सनेह सीय सब रानी । बैठन सर्बाहि कहेउ गुर ज्ञानी ॥
 नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा । सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा ॥
 मुनिबर बहुरि राम समुभाए । सहित समाज सुसरित नहाए ॥
 ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा । मुनिहुँ कहें जलु काहु न लीन्हा ॥

^१ लुठत ।

^२ दीख ।

दो०—भोर भएँ रघुनंदनहिं जो मुनि आयसु दीन्ह ।

श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सब सादर कीन्ह ॥

पुर नर नारि मगन अति प्रीती । वासर जाहिं पलक सम बीती ॥
यहु संसउ सबकें मन माहीं । राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं ॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी । सोचत भरतहिं रैन बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई । बैठत पठए रिषय बोलार्इ ॥
बोले मुनिबरु समय समाना । सुनहुँ सभासद भरत सुजाना ॥
सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू । मंगल मोद मूल मगु एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ । कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे । तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥

दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु ।

सुनि सनेहमय वचन गुर उर उमंगा अनुरागु ॥

सकुचौ तात कहत एक बाता । अरध तजहि बुध सरबसु जाता ॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई । फेरिअहि लखनु सीय रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता । भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥
भरतु मुनिहि मन भीतर भाए । सहित समाज राम पहि आए ॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु । बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु ॥
बोले मुनिबरु वचन बिचारी । देस काल अवसर अनुहारी ॥

दो०—सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ ।

पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ ॥

सुनि मुनि वचन कहत रघुराऊ । नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा । भरत सनेह बिचारु न राखा ॥
मोरें जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ शिव साखी ॥
गुर अनुरागु भरत पर देखी । राम हृदय आनंदु बिसेषी ॥
बोले गुर आयेसु अनुकूला । वचन मंजु मृदु मंगल मूला ॥
भरतु कहहिं सोइ किए भलाई । अस कहि रामु रहे अरगाई ॥

दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब संकोचु तजि तात ।

कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कइ बात ॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई । गुर साहिब अनुकूल अघाई ॥
 पुर्लकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
 कहब मोर मुनिनाथ निबाहा । येहि तें अधिक कहौं मैं काहा ॥
 बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बीचु जननी मिस पारा ॥
 महीं सकल अनरथ कर मूला । सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
 बोले उचित बचन रघुनंदू । दिनकर कुल कैरव बन चंदू ॥
 राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ पेम पन लागी ॥
 तासु बचन मेटत मन सोचू । तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू ॥

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु ।

सत्यसंघ रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु ॥

सुरगन सहित सभय सुरराजू । सोर्चाहिं चाहत होन अकाजू ॥
 करत उपाय बनत कछु नाहीं । राम सरन सब गे मन माहीं ॥
 लगि लगि कान कहहि धुन माथा । अब सुर काज भरत कें हाथा ॥
 आन उपाय न देखिअ देवा । मानत राम सुसेवक सेवा ॥
 निज सिर भारु भरत जिय जाना । करत कोटि बिधि उर अनुमाना ॥
 करि बिचारु मन दीन्ही ठीका । राम रजायेसु आपन नीका ॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ ।

करि प्रनामु बोले भरत जोरि जलज युग हाथ ॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी । कृपा अंबुनिधि अतरजामी ॥
 मोर अभागु मातु कुटलाई । बिधि गति विषम काल कठिनाई ॥
 पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला । प्रनतपाल पन आपन पाला ॥
 अब करुनाकर कीजिअ सोई । जन हित प्रभु चित छोभु न होई ॥
 देव एक बिनती सुनि मोरी । उचित होइ तस करब बहोरी ॥
 तिलक समाजु साजि सबु आना । करिअ सुफल प्रभु जाँ मनु माना ॥

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ ।

नतर फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ ॥

नतर जाहिं बन तीनिउँ भाई । बहुरिअ सीय सहित रघुराई ॥
 जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुनासागर कीजिअ सोई ॥

कहँ बचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत कैं चित चेतू ॥
भरत बचन सुनि सुनि सुर हरषे । साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध नेवासी । प्रमुदित मन तापस बनवासी ॥
जनक दूत तेहिं अवसर आए । मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता । कहहु बिदेह भूप कुसलाता ॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा । बोले चर बर जोरें हाथा ॥
खबरि लेन हम पठए नाथा । तिन्ह कहि अस महि नाएउ माथा ॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे । मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥

दो०—सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु ।

रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु ॥

अस मन आनि मुदित नर नारी । भएउ बहोरि रहब दिन चारी ॥
येहि प्रकार गत बासर सोऊ । प्रात नहान लाग सबु कोऊ ॥
भाइ सचिव गुर पुरजन साथी । आगें गवन कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं । करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं ॥
आए निकट देखि अनुरागे । सादर मिलन परसपर लागे ॥
सोक बिकल दोउ राज समाजा । रहा न ज्ञानु न धीरजु लाजा ॥
तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ । नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई । गएउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥

दो०—सादर सब कहैं रामगुर पठए भरि भरि भार ।

पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फलहार ॥

येहि बिधि बासर बीते चारी । रामु निरखि नर नारि सुखारी ॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं । बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं ॥
येहि बिधि सकल मनोरथ करहीं । बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं ॥
प्रिय परिजनहि मिली बैदेही । जो जेहिं जोगु भाँति तेहि तेही ॥
जनक रामगुर आयेसु पाई । चले थलहिं सिय देखी आई ॥
तापस बेष जनक सिय देखी । भएउ पेमु परितोषु बिसेपी ॥

दो०—बारबार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्ह सनमानि ।

कही समय सिर भरत गति रानि सुवानि सयानि ॥

राज समाज प्रात जुग जागे । न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥
 गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई । बंदि चरन बोले रुख पाई ॥
 नाथ भरतु पुरजन महतारीं । सोक बिकल बनबास दुखारीं ॥
 सहित समाज राउ मिथिलेसू । बहुत दिवस भए सहत कलेसू ॥
 आपु आस्रमहिं धारिअ पाऊ । भएउ सनेह सिथिल मुनिराऊ ॥
 करि प्रनामु तब रामु सिधाए । रिषि धरि धीर जनक पहिं आए ॥
 राम बचन गुर नृपहि सुनाए । सील सनेह सुभायँ सुहाए ॥
 समउ समुभि धरि धीरजु राजा । चले भरत पहिं सहित समाजा ॥
 भरत आइ आगें भइ लीन्हे । अवसर सरिस सुआसन दीन्हे ॥
 तात भरत कह तेरहुतिराऊ । तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ ॥

दो०—राम सत्यव्रत धरमरत सब कर सीलु सनेहु ।

संकट सहत सकोचबस कहिअ जो आयेसु देहु ॥

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी । बोले भरतु धीर धरि भारी ॥
 प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू । कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥
 कौसिकादि मुनि सचिव समाजू । ज्ञान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
 सिसु सेवकु आयेसु अनुगामी । जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥
 येहि समाज थल बूझब राउर । मौन मलिन मैं बोलब बाउर ॥
 छोटे बदन कहौं बड़ि बाता । छमब तात लखि वाम बिधाता ॥

दो०—राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि ।

सब कें संमत सर्व हित करिअ प्रेमु पहिचानि ॥

गए जनकु रघुनाथ समीपा । सनमाने सब रबिकुल दीपा ॥
 समय समाज धरम अबिरोधा । बोले तब रघुबंस पिरोधा ॥
 जनक भरत संबादु सुनाई । भरत कहाउति कही सुहाई ॥
 सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी । बोले सत्य सरल मृदु बानी ॥
 बिद्यमान आपुनु मिथिलेसू । मोर कहब सब भाँति भदेसू ॥
 राउर राय रजायसु होई । राउरि सपथ सही सिर सोई ॥

दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत ।

मकल त्रिलोकन भरत मग्न बनद न उन्नत देत ॥

सभा सकुचबस भरत निहारी । राम बंधु धरि धीरजु भारी ॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा । बढ़त बिधि जिमि घटज निवारा ॥
करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे । रामु राउ गुर साधु निहोरे ॥
प्रभु पितु बचन मोहबस पेली । आएउँ इहाँ समाजु सँकेली ॥
नाथ निपट मई कीन्हि ढिठाई । स्वामि समाज सकोचु बिहाई ॥
अबिनय बिनय जथारुचि बानी । छमिहिं देउ अति आरत जानी ॥

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि ।

आयेसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि ॥

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई । समउ सनेह न सो कहि जाई ॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी । बैठाए समीप गहि पानी ॥
देसु कालु लखि समौ समाजू । नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥
बोले बचन बानि सरबसु से । हित परिनाम सुनत ससिरसु से ॥
तुम्हहि बिदित सबही करकरमू । आपन मोर परम हित धरमू ॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू । सकल धरम धरनीधरु सेसू ॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोह । तात तरनि कुल पालक होहू ॥
भरतहि भएउ परम संतोषू । सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू ॥
कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी । बोले पानि पंकरुह जोरी ॥
सो अबलंब देउ' मोहि देई । अवधि पारु पावउँ जेहि सेई ॥

दो०—देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ ।

आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ ॥

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं । सभय सकोच जात कहि नाहीं ॥
चित्रकूट मुनिथल तीरथ बन । खग मृग सरसरि निर्भर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी । आयेसु होइ त आवउँ देखी ॥
अवसि अत्रि आयेसु सिर धरहू । तात बिगत भय कानन करहू ॥
रिषिनायकु जहँ आयेसु देहीं । राखेहु तीरथजलु थल तेहीं ॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा । मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा ॥

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप ।

राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप ॥

भरत अत्रि अनुसासन पाई । जल भाजन सब दिए चलाई ॥
पावन पाथ पुन्य थल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा ॥
बिधि बस भणउ विस्व उपकारु । सुगम अगम अति धरम बिचारु ॥
भरतकूप अब कहिहिहि लोगा । अति पावन तीरथ जल जोगा ॥
येहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं । नेम प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं ॥
फिरहि गएँ दिनु पहर अढ़ाई । प्रभु पद कमल बिलोकिहि आई ॥

दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माँझ ।

कहत सुनत हरि हर सुजसु गएउ दिवसु भइ साँझ ॥

भोर न्हाई सबु जुरा समाजू । भरत भूमिसुर तेरहुतिराजू ॥
भल दिनु आजु जानि मन माहीं । राम कृपाल कहत सकुचाहीं ॥
भरत सुजान राम रुख देखी । उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी । राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥
मोहि लागि सबहि सहेउ^१ संतापू । बहूत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाईं मोहि देउ रजाई । सेवउँ अवध अवधि भरि जाई ॥

दो०—दीनबंधु पुनि बंधु के बचन दीन छलहीन ।

देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन ॥

पितु आयेसु पालिअ दुहुँ भाई । लोक बेद भल भूप भलाई ॥
गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें । चलेहूँ कुमग पग परहि न खालें ॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई । पालहु अवध अवधि भर जाई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती । बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही । सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो । रामप्रेम रसु कहि न परत सो ॥
भेटि भरतु रघुवर समुभाए । पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए ॥
प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई । चले सीस धरि राम रजाई ॥

^१ सहेउ सकल; सहेउ सर्बाहं ।

दो०—लखनहिं भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धरि ।

चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि ॥

सानुज राम नृपहि सिर नाई । कीन्ह बहुत बिधि बिनय बड़ाई ॥
देव दयाबस बड़ दुखु पाएउ । सहित समाज काननहिं आएउ ॥
पुर पगु धारिअ देइ असीसा । कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा ॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा । विदा किए सब सानुज रामा ॥
परिजन मानु पितहिं मिलि सीता । फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता ॥
करि प्रनामु भेंटि सब सासू । प्रीति कहत कबि हिय न हुलासू ॥
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाई । सम सनेह जननी पहुँचाई ॥
साजि बाजि गज बाहन नाना । भूप भरत दल कीन्ह पयाना ॥

दो०—गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत ।

फिरे हरष बिसमय सहित आए परननिकेत ॥

विदा कीन्ह सनमानि निषाद । चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषाद ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु गुन ग्राम गुनत मम माहीं । सब चुप चाप चले मग जाहीं ॥
जमुना उत्तरि पारु सब भएऊ । सो बासरु बिनु भोजन गएऊ ॥
उत्तरि देवसरि दूसर बासू । रामसखा सब कीन्ह सुपासू ॥
सई उत्तरि गोमती नहाए । चौथें दिवस अवधपुर आए ॥
जनकु रहे पुर बासर चारी । राज काज सब साज सँभारी ॥
सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू । तेरहुति चले साजि सबु साजू ॥

दो०—राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास ।

तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस ॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे । निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई । सौंपी सकल मानु सेवकाई ॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाए । समाधानु करि सबस बसाए ॥
सानुज गे गुर गेह बहोरी । करि दंडवत कहत कर जोरी ॥

आयेसु होइ त रहउँ सनेमा । बोले मुनि तन पुलिक सपेमा ॥
समुभव कहब करब तुम्ह जोई । धरम सारु जग होइहि सोई ॥

दो०—सनि सिख पाइ असीम बड़ि गनक बोलि दिनु साधि ।

सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि ॥

राममातु गुर पद सिरु नाई । प्रभुपद पीठ रजायेसु पाई ॥
नंदिगाँव करि परनकुटीरा । कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ॥
जटा जूट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन व्रत नेमा । करत कठिन रिषिधरम सपेमा ॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई । दसरथ धनु सुनि घनद लजाई ॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
देह दिनहु दिन दूबरि होई । घटइ^१ तेजु बलु मुख छबि सोई ॥
नित नव राम पेम पनु पीना । बढ़त धरम दलु मनु न मलीना ॥

दो०—नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति ।

माँगि माँगि आयेसु करत राज काज चहुँ भाँति ॥

उत्तरार्द्ध

पुर नर^१ भरत प्रीति में गाई । मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
 अब प्रभु चरित सुनहूँ अति पावन । करत जे बन सुर नर मुनि भावन ॥
 एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर भूषण राम बनाए ॥
 सीतहि पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥
 सुरपति सुत धरि बाइस बेखा । सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
 जिमि पिपीलिका सागर थाहा । महा मंदमति पावन चाहा ॥
 सीता चरन चोंच हति भागा । मूढ़ मंद मति कारन कागा ॥
 चला रुधिर रघुनायक जाना । सीक धनुष सायक संधाना ॥
 दो०—अतिकृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह ।

ता सनु आइ कीन्ह छलु मूर्ख अवगुन गेह ॥

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा । चला भाजि^२ बाइस भय पावा ॥
 धरि निज रूप गएउ पितु पाहीं । राम बिमुख राखा तेहि नाहीं ॥
 भा निरास उपजी मन त्रासा । जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा ॥
 ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका । फिरा स्रमित व्याकुल भय सोका ॥
 काहूँ बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम कर द्रोही ॥
 नारद देखा बिकल जयन्ता । लागि दया कोमल चित संता ॥
 पठवा तुरत राम पहिं ताहीं । कहेसि पुकारि प्रनतहित पाहीं ॥
 सुनि कृपाल अति आरत आनी । एक नयन करि तजा भवानी ॥

सो०—कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित ।

प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए स्तुति^३ सुधा समाना ॥
 बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ॥

^१पुर जन; पूरन ।

^२भागि ।

^३अति; सब ।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई । सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गएऊ । सुनत महा मुनि हरषित भएऊ ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने । सादर निज आस्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए । दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि ।

मुनिबर परमप्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि ।

चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ॥

अनसुइया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील बनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई । आसिष देइ^१ निकट बैठाई ॥
कह रिषिबधू सरस^२ मृदु बानी । नारिधर्म कछु व्याज बखानी ॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना । आयेसु होइ^३ जाउँ बन आना ॥
संतत मोपर कृपा करेहू । सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥
मुनि पद कमल नाइ करि सीसा । चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
मिला असुर बिराध मग जाता । आवत ही रघुबीर निपाता ॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा । सुदर अनुज जानकी संगी ॥

दो०—देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग ।

सादर पान करत अति धन्य जनम सरभंग ॥

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला । संकर मानस राज मराला ॥
जात रहेउँ बिरंचि^४ के धामा । सुनेउँ श्रवन बन अइहिहि रामा ॥
चितवत पंथ रहेउँ दिनु राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी । जब लगिमिलौं तुम्हहि तनु त्यागी ॥
जोगु जज्ञ जप तप जत कीन्हा । प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ॥
येहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगी ॥

दो०—सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।

मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम ॥

^१ दीन्हि ।

^२ सरल ।

^३ होइ ।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुंठ सिधारा ॥
 रिषि निकाय मुनिबर गति देखी । सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी ॥
 पुनि रघुनाथ चले बन आगे । मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे ॥
 अस्थि समूह देखि रघुराया । पूँछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
 जानतहूँ पूँछिअ कस स्वामी । सबदरसी^१ तुम्ह^२ अंतरजामी ॥
 निसिचर निकर सकल मुनि खाए । सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥

दो०—निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्ह के आस्रमहि^३ जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

मुनि अगस्ति^४ कर सिष्य सुजाना । नाम सुतीछन रति भगवाना ॥
 प्रभु आगवनु स्रवन सुनि पावा । करत मनोरथ आतुर धावा ॥
 निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥
 दिसि अरु बिदिसि पंथ नहि सूझा । को मै चलेउँ कहाँ नहि बूझा ॥
 अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भवभीरा ॥
 मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनसफल जैसा ॥
 मुनिहि राम बहु भाँति जगावा । जाग^५ न ध्यान जनित सुख पावा ॥
 भूप रूप तब राम दुरावा । हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥
 मुनि अकुलाइ बैठा तब कैसैं । बिकल हीनमनि फनिबर जैसैं ॥
 परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥
 भुज बिसाल गहि लिए उठाई । परम प्रीति राखे उर लाई ॥
 राम बदन बिलोकि मुनि ठाढ़ा । मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा ॥

दो०—तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहि बार ।

निज आस्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार ॥

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी । अस्तुति करौं कबनि बिधि तोरी ॥
 महिमा अमित मोरि मति थोरी । रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी ॥
 सुनि मुनि अचन राम मन भाए । बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए ॥
 परम प्रसन्न जानु मुनि मोही । जो बर मागहू देउँ सो तोही ॥

^१ समदरसी ।

^२ उर ।

^३ आस्रमन्हि ।

^४ अगस्त्य ।

^५ जान ।

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा । समुझि न परै भूठ का साँचा ॥
 तुम्हहि नीक लागै रघुराई । सो मोहि देहु दासु सुखदाई ॥
 अबिरल भगति बिरति बिज्ञाना । होह सकल गुन ज्ञान निधाना ॥
 प्रभु जो दीन्ह सो बर मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।

मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा येह काम^१ ॥

एवमस्तु कहि रमानिवासा । हरिष चले कुंभज रिषि पासा ॥
 सुनत अगस्ति तुरत उठि धाये । हरि बिलोकि लोचन जल छाये ॥
 मुनि पद कमल परे द्वौ भाई । रिषि अति प्रीति लिए उर लाई ॥
 सादर कुसल पूँछि मुनि जानी । आसन पर बैठारे आनी ॥
 पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा । मोहि सम भाग्यवंत नहि दूजा ॥
 जहाँ लगि रहे अपर मुनि वृंदा । हरषे सब बिलोकि सुख कंदा ॥

दो०—मुनि समूह महँ^२ बैठे^३ सनमुख सब की ओर ।

सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर ॥

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं । तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
 तुम्ह जानहु जेहि कारन आएउँ । तातें तात न कहि समुझाएउँ ॥
 अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही ॥
 मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेहु नाथ मोहिं का जानी ॥
 है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ । पावन पंचबटी तेहि नाऊँ ॥
 दंडक बन पुनीत प्रभु करहू । उग्र स्नाप मुनिबर कै हरहू ॥
 बास करहु तहँ रघुकुल राया । कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
 चले राम मुनि आयेसु पाई । तुरतहि पंचबटी नियराई ॥

दो०—गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ ।

गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ ॥

सूपनखा रावन कै बहिनी । दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी ॥
 पंचबटी सो गइ एक बारा । देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥

^१ निःकाम ।

^२ मो ।

^३ बैठिकै ।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहि जाई । बोली वचन बहुत मुसुकाई ॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं ॥
ता तें अब लगि रहिउँ कुमारी^१ । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता । अहँ कुमार^२ मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी । प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥
सुदरि सुनु मै उन्ह कर दासा । पराधीन नहि तोर सुपासा ॥
पुनि फिरि रामु निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहि बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥
तब खिसिआनि राम पहि गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुभाई ॥

दो०—लछिमन अति लाघव सों नाक कान बिनु कीन्हि ।

ता के कर रावन कहुँ मनौ चुनौती दीन्हि ॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खरदूषन पहि गइ बिलपाता^३ । धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥
तेहि पूँछा सब कहेसि बुभाई । जातुधान सुनि सैन बनाई ॥
सूपनखा आगे करि लीन्ही । असुभ रूप स्मृति नासा हीनी ॥
कोउ कह जिअत धरहुँ द्वौ^४ भाई । धरि मारहु त्रिय लेहु छड़ाई ॥
धरि पूरि नभ मंडल रहा । राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर । आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित श्री सर धनु पानी ॥
देखि राम रिपु दल चलि आवा । बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥

सो०—आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट ।

जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि धेरत दनुज ॥

सचिव बोलि बोले खरदूषन । येह कोउ नृप बालक नर भूषन ॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरुपा । बध लायक नहि पुरुष अनूपा ॥

^१ कुँआरी ।

^२ कुँआर ।

^३ बिलपाता ।

^४ दोउ ।

देहु^१ तुरत निजनारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥
 मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
 दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई ॥
 हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
 रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं ॥
 जौ न होइ बल घर^२ फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौ न काहू ॥

सो०—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।

लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति ॥
 तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
 तानि सरासन स्रवन लगि पुन छाड़े निज तीर ॥
 तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल ॥
 कोपेउ समर स्त्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम ॥
 भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन तें जाइ ॥
 तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि ॥
 आयुध अनेके प्रकार^३। सनमुख तें करहि प्रहार ॥
 रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुदृ सर संधानि ॥
 छांड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच ॥
 उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन ॥
 महि परत उठि भट भिरत न करत माया अति घनी।
 सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवधधनी ॥
 सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अतिकौतुक करचो ॥
 देखाहि परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरचो ॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।

करि उपाइ रिपु मारे छनमहुँ कृपानिधान ॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सबके भय बीते ॥
 तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥

^१ बेहि; जाहि।

^२ गृह।

^३ अपार।

पंचवटी बसि श्रीरघुनायक । करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥
घुआँ देखि खरदूषन केरा । जाइ सुपनखा रावनु प्रेरा ॥
बोली बचन क्रोध करि भारी । देस कोस कै सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवति दिगुराती । सुधि नहि तव सिर पर आराती ॥

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।

अस कहि बिबिधि बिलाप करि लागी रोदन करन ।

सुनत सथासद उठे अकुलाई । समुभाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता । केइ तव नासा कान निपाता ॥
अवध नृपति दसरथ के जाए । पुरुषसिंघ बनु खेलन आए ॥
समुभि परी मोहिं उन्ह कै करनी । रहित निसाचर करिहहि धरनी ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥
तासु अनुज काटे सुति नासा । सुनि तव भगिनि करहि^१ परिहासा ॥
खरदूषन सुनि लगे पुकारा । छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खरदूषन तिसिरा कर घाता । सुनि दससीस जरे सब गाता ॥

दो०—सूपनखहि समुभाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति ।

गएउ भवन अति सोचबस नींद परइ नहि राति ॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं । मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ॥
खरदूषन मोहिं सम बलवंता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥
सुर रंजन भंजन महिभारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मै जाइ बयरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ॥
होइहि भजनु न तामस देहा । मन श्रम बचन मंत्र दृढ़ येहा ॥
जौ नर रूप भूप सुत कोऊ । हरिहौं नारि जीति रन दोऊ ॥
चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ । बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई । सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥

दो०—लछिमन गए बनहि जब लेन मूल^२ फल कंद ।

जनकसुता सन बोले बिहँसि कृपा सुखबंद ॥

^१ भगिनि करी ।

^२ फूल ।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नर लीला ॥
 तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लगि करौ निसाचर नासा ॥
 जबहि राम सबु कहा बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी ॥
 निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥
 लछिमनहुँ येह मरम न जाना । जो कछु चरित रचा^१ भगवाना ॥
 दसमुख गएउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथरत नीचा ॥

दो०—करि पूजा मारीच तब सादर पूँछी बात ।

कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आएहु तात ॥

दसमुख सकल कथा तेहि आगें । कही सहित अभिमान अभागें ॥
 होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी । जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी ॥
 तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नर रूप चराचर ईसा ॥
 मुनि मख राखन गएउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति मोहिं मारा ॥
 सत योजन आएउ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किऐं भल नाहीं ॥
 जौ नर तात तदपि अति सूरा । तिन्हहिं बिरोधिन आइहि पूरा ॥

दो०—जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड ।

खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस अरिवंड ॥

जाहु भवन कुलकुसल बिचारी । सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ॥
 तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि बिरोधे नहिं कल्याना ॥
 सस्त्री ममीं प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि मानसगुनी ॥
 उभय भाँति देखा^२ निज मरना । तब ताकेसि रघुनायक सरना ॥
 उतर देत मोहि बधव अभागें । कस न मरौ रघुपति सर लागे ॥
 मन अति हरष जनाव न तेही । आजु देखिहौं परम सनेही ॥

दो०—मम पाछे धर धावत धर सरासन बान ।

फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौ धन्य न मो सम आन ॥

तेहि बन निकट दसानन गएऊ । तब मारीच कपटमृग भएऊ ॥
 सीता परम रुचिर मृग देखा । अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥

सुनहु देव रघुबीर कृपाला । येहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥
 सत्यसंध प्रभु बधि करि येही । आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
 तब रघुपति जानत सब कारन । उठे हरषि सुर काजु सँवारन ॥
 प्रभु लछिमनहि कहा समुभाई । फिरत विपिन निसिचर बहु भाई ॥
 सीता केरि करेहु रखवारी । बुधि विवेक बल समय विचारी ॥
 प्रभुहि विलोकि चला मृग भाजी । धाए रामु सरासन साजी ॥
 कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई । कबहुँक प्रगटै कबहुँ छपाई ॥
 प्रगटत दुरत करत छल भूरी । येहि बिधि प्रभुहि गएउ लै दूरी ॥
 तब तकि राम कठिन सर मारा । धरनि परेउ^१ करि घोर पुकारा ॥
 लछिमन कर प्रथमहि लै नामा । पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥

दो०—बिपुल सुमन सुर बरषहि गावहि प्रभु गुन गाथ ।

निज पद दीन्ह असुर कहैं दीनबंधु रघुनाथ ॥

आरत गिरा सुनी जत्र सीता । कह लछिमन सन परम सभीता ॥
 जाहु वेगि संकट अति भ्राता । लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता ॥
 भृकुटि विलास सृष्टि लय होई । सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥
 मरम बचन जब^२ सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
 बन दिसिदेव सौं पि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥
 सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जती के बेषा ॥
 नाना बिधि कहि कथा सुहाई^३ । राजनीति भय प्रीति दिखाई ॥
 कह सीता सुनु जती गुसाईं^४ । बोलेहु^५ बचन दुष्ट की नाईं ॥
 तब रावन निजि रूप देखावा । भई सभय जब नाम सुनावा ॥
 कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा । आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥

दो०—क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ।

चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाइ ॥

^१ परा ।

^२ तब ।

^३ सुनाई ।

^४ बोलेहु; बोले ।

हा जगदेक^१ बीर रघुराया । केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥
 हा लछिमन तुम्हार नहि दोसा । सो फलु पाएउँ कीन्हैउँ रोसा ॥
 बिनति^२ मोरि को प्रभुहि सुनावा । पुरोडास चह रासभ खावा ॥
 सीता कै बिलाप सुनि भारी । भए चराचर जीव दुखारी ॥
 गीधराज सुनि आरति वानी । रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
 धावा क्रोधवन्त खग कैसे । छुटै पवि पर्वत कहुं जैसे ॥
 रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई । निर्भय चलेसि न जानेहि^३ मोही ॥
 आवत देखि कृतांत समाना । फिर दसकंधर कर अनुमाना ॥
 जाना जरठ जटायू येहा । मम कर तीरथ छाड़िहि देहा ॥
 काटेसि पंख परा खग धरनी । सुमिरि राम करि अदभुत करनी ॥
 सीतहि जान चड़ाइ बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ॥
 करति बिलाप जाति नभ सीता । व्याध बिदस जनु मृगी सभीता ॥
 गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी ॥
 येहि बिधि सीतहि सो लै गएऊ । बन असोक महुं राखत भएऊ ॥

दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ ।

तब असोक पादप तर राखिसि^४ जतनु कराइ ॥

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्री राम ।

सो छवि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम ॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी । बाहिज चिता कीन्ह बिसेषी ।
 जनकसुता परिहरेहु अकेली । आएहु तात वचन मम पेली ॥
 निसिचर निकर फिरहि बन माही । मम मन सीता आस्रम नाही^५ ॥
 गहि पद कमल अनुज कर जोरी । कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥
 अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ^६ । गोदावरि तट आस्रम जहवाँ^७ ॥
 आस्रम देखि जानकी हीना । भए विकल जस प्राकृत दीना ॥
 हा गुनखानि जानकी सीता । रूप सील व्रत नेम पुनीता ॥

^१ जगदीश; जगदेव; जग एक । ^२ विपति । ^३ जानेसि; जानसि; जाने ।

^४ राखेसि; राखे । ^५ मम सीता आस्रम महुं नाहि । ^६ प्र० : क्रमशः तहाँ, जहाँ ।

लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूँछत चले लता तरु पाँती ॥
येहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥
आगे परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

दो०—कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर
निरखि राम छबिधाम मुख बिगत भई सब पीर ॥

तब कहूँ गीध बचन धरि धीरा । सुनहु राम भंजन भव भीरा ॥
नाथ दसाननन येह गति कीन्ही । तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥
लै दन्छिन दिसि गएउ गोसाईं । बिलपति अति कुररी की नाई ॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना । चलन चहत अब कृपानिधाना ॥
गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
म्याम गात बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥

दो०—अबिरल भगति माँगि बर गीध गएउ हरि धाम ।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ॥

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई । चले बिलोकत बन बहुताई ॥
आवत पंथ कबंध निपाता । तेहि सब कही स्थाप कै बाता ॥
ताहि देइ गति राम उदारा । सबरी के आस्रमु पगु धारा ॥
सबरी देखि राम गृह आए । मुनि के बचन समुझि जिअँ भाए ॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुदर आसन बैठारे ॥

दो०—कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी । प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी । अधम जाति में जड़मति भारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानौं एक भगति कर नाता ॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी । जानहि कहु करि बर गामिनी ॥

पंपासरहि जाहु रघुराई । तहँ होइहि सुग्रीव मितार्ई ॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा । जानतहँ पूछहु मति धीरा ॥

दो०—जातिहीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।

महा मंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥

चले रामु त्यागा वन सोऊ । अतुलित बल नरकेहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा । कहत कथा अनेक संवादा ॥
पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा । पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥
संत हृदय जस निर्मल बारी । बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥
देखी सुंदर तरु बर छाया । बैठे अनुज सहित रघुराया ॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आए । अस्तुति कर निज धाम सिधाए ॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला । कहत अनुज सन कथा रसाला ॥

दो०—रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग ।

राम भगति दृढ़ पावहिं विनु बिराग जप जोग ॥

आगे चले बहुरि रघुराया । रिष्यमूक पर्वत निअराया ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा । आवत देखि अतुल बल सीवा ॥
अति सभित कह सुनु हनुमाना । पुरुष जुगल बल रूप निधाना ॥
धरि बटु रूप देखु तै जाई । कहेसु जानि जिअँ सयन बुभाई ॥
पठए^१ बालि होहि मन मैला । भागौं तुरत तजौं येह सैला ॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गएऊ । माथ नाइ पूँछत अस भएऊ ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा । छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी । कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता । सहत दुसह बन आतप बाता ॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ । नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥

दो०—जग कारन तारन भव^२ भंजन धरनी भार ।

की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार ॥

कोसलेस दसरथ के जाए । हम पितु बचन मानि बन आए ॥
 नाम राम लछिमन दोउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
 इहाँ हरी निसिचर बैदेही । बिप्र फिरहि हम खोजत तेही ॥
 आपन चरित कहा हम गाई । कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥
 प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना । सो सुख उमा जाइ नहि बरना ॥
 पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही । हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही ॥

दो०—एक मंद मै मोहबस कुटिल^१ हृदय अज्ञान ।

पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान ॥

अस कहि परेउ चरन अकुलाई । निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥
 तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥
 देखि पवनसुत पति अनुकूला । हृदयँ हरष बीती सब सृला ॥
 नाथ सैल पर कपिपति रहई । सो सुग्रीव दास तब अहई ॥
 तेहि सन नाथ मइत्री कीजै । दीन जानि तेहि अभय करीजै ॥
 सो सीताकर खोज कराइहि जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥
 येहि विधि सकल कथा समुझाई । लिए दुवौ जन पीठि चढाई ॥
 जब सुग्रीव राम कहँ देखा । अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥
 सादर मिलेउ नाइ पद माथा । भेंटैउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
 कपि कर मन बिचार येहि रीती । करिहहि विधि मोसन ये प्रीती ॥

दो०—तब हनुमंत उभय दिसि की^२सब कथा सुनाइ ।

पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा । लछिमन राम चरित सब भाषा ॥
 कह सुग्रीव नयन भरि बारी । मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥
 मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा । बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
 गगन पंथ देखी मैं जाता । परबस परी बहुत बिलपाता ॥
 राम राम हा राम पुकारी । हमहि देखि दीन्हैउ पट डारी ॥

^१ कीस ।

^२ कहि; कह ।

^३ बिलपाता ।

माँगा रामु तुरत तेहिं दीन्हा । पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहौ सेवकाई । जेहि विधि मिलिहिं जानकी आई ॥

दो०—सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसीव ।

कारन कवन बसहु वन मोहि कहहु सुग्रीव ॥

नाथ बालि अरु मैं द्वौ^१ भाई । प्रीति रही कछु बरनि न जाई ॥
मयसुत मायाबी तेहि नाऊँ । आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ ॥
अर्द्ध राति पुर द्वार पुकारा । बाली रिपु बल सहइ न पारा ॥
धावा बालि देखि सो भागा । मैं पुनि गएँ बंधु सँग लागा ॥
गिरि बर गृहा पैठ सो जाई । तब वाली मोहि कहा बुभाई ॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा । नहि आवौं तब जानेसु मारा ॥
मास दिवस तहँ^२ रहेउँ खरारी । निसरी रुधिर धार तहँ भारी ॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई । सिला देइ तहँ चलेउँ पराई ॥
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साई^३ । दीन्हेउ मोहि राजु बरिआई ॥
बाली ताहि मारि गृह आवा । देखि मोहि जिअं भेद बढावा ॥
रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी । हरि लीन्हेसि सर्वसु अरु नारी ॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला । सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला ॥
इहाँ स्नाप बस आवत नाही । तदपि सभित रहौं मन माही ॥
सुनि सेवक दुख दीन दयाला । फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला ॥

दो०—सुनु सुग्रीव मारिहौ^४ बालिहि एकहि बान ।

ब्रह्म रुद्र सरनागत^५ गए न उबरिहि प्रान ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा । बालि महाबल अति रन धीरा ॥
दुदुभि अस्थि ताल देखराए । बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती । बाली बध की भइ^६ परतीती ॥
उपजा ज्ञान बचन तब बोला । नाथ कृपा मन भएउ अलोला ॥

^१ दोउ ।

^२ सत ।

^३ मैं मारिहौं ।

^५ सरनागतहुं ।

^६ बालि बधव इन्ह; बाली बध की ।

सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई ॥
 लै सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ॥
 तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जैसि जाइ निकट बल पावा ॥
 सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरन नारि समुभावा ॥
 सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा । ते द्वौ^१ बंधु तेज बल सींवा ॥
 कोसलेस सुत लछिमन रामा । कालहु जीति सकहि संग्रामा ॥

दो०—कहइ बालि^२सुनु भीरु^३प्रिय समदरसी रघुनाथ ।

जौ कदाचि मोहि मारहि^४तौ पुनि होउं सनाथ ॥

असि कहि चला महा अभिमानी । तू न समान सुग्रीवहि जानी ॥
 भिरे उभौ^५ वाली अति तर्जा । मुठिका मारि महा धुनि गर्जा ॥
 तब सुग्रीव विकल होइ भागा । मुष्टि प्रहार बज्र सम लगा ॥
 मै जो कहा रघुवीर कृपाला । बंधु न होइ मोर यह काला ॥
 एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ । तेहि भ्रम तें नहि मारेउं सोऊ ॥
 कर परसा सुग्रीव सरीरा । तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥
 मेली कंठ सुमन कै माला । पठवा पुनि बल देइ बिसाला ॥
 पुनि नाना विधि भई लराई । बिटप ओट देखहि रघुराई ॥

दो०—बहु छल बल सुग्रीव करि हियें हारा भय मानि ।

मारा बालि राम तब हृदय मोभ सर तानि ॥

परा विकल महि सर के लागें । पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे ॥
 पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा । सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा ॥
 राम बालि निज धाम पठावा । नगर लोग सब व्याकुल धावा ॥
 नाना विधि बिलाप कर तारा । छूटे केस न देह सँभारा ॥
 तारा विकल देखि रघुराया । दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया ॥
 तब सुग्रीवहि आयेसु दीन्हा । मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ॥

^१ दोउ । ^२ कहं बालि; कह बाली; कहा बाली ।

^३ मोहि ।

^४ मारिहैं; मारिह; मारिहें ।

^५ उभै ।

रामु कहा अनुजहि समुभाई । राजु देहु सुग्रीवहि जाई ॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा । चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥

दो०—लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज ।

राजु दीन्ह सुग्रीव कहूँ अंगद कहूँ जुबराज ॥

पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई । बहु प्रकार नृप नीति सिखाई ॥
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा । पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई । रहिहौ निकट सैल पर छाई ॥
अंगद सहित करहु तुम राजू । संतत हृदयँ धरेहु मम काजू ॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए । रामु प्रबरषन गिरि पर छाए ॥

दो०—प्रथमहि देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ ।

रामु कृपानिधि कछुक दिन बास करहिंगे आइ ॥

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा । रामकाजु सुग्रीव विसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा । चारिहुँ विधि तेहि कहि समुभावा ॥
सुनि सुग्रीव परम भय माना । विषय मोर हरि लीन्हैउ ज्ञाना ॥
अब मारुतसुत दूत समूहा । पठवहुँ जहँ तहँ बानर जूहा ॥
कहेहु पाख महुँ आव न जोई । मोरें कर ताकर बध होई ॥
तब हनुमंत बोलाए दूता । सब कर करि सनमान बहूता ॥
भय अरु प्रीति नीति देखराई । चले सकल चरनन्हि सिरु नाई ॥
येहि अवसर लछिमनु पुर आए । क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए ॥

दो०—धनुष चढ़ाई कहा तब जारि करौ पुर छार ।

ब्याकुल नगर देखि तब आएउ वारिकुमार ॥

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही । लछिमनु अभय बाँह तेहि दीन्ही ॥
क्रोधवंत लछिमनु सुनि काना । कह कपीस अति भय अकुलाना ॥
सुनु हनुमंत संग लै तारा । करि बिनती समुभाउ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना । चरन बंदि प्रभु सुजसु बखाना ॥
करि बिनती मंदिर लै आए । चरन पखारि पलंग बैठाए ॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा । गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं । मुनि मन मोह^१ करइ छन माही ॥
पवन तनय सब कथा सुनाई । जेहि बिधि गए दूत समुदाई ॥

दो०—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ ।

रामानुज आगे करि आए जहँ रघुनाथ ॥

बानर कटक उमा मै देखा । सो मूरख जो करन चह^२ लेखा ॥
अस कपि एक न सेना माही । राम कुसल जेहि पूँछा नाही ॥
ठाढ़े जहँ तहँ आयेसु पाई । कह सुग्रीव सबहि समुभाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा । बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥
जनकसुता कहँ खोजहु जाई । मास दिवस महँ आएहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए । आवइ वनिहि सो मोहि मराए ॥

दो०—बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत ।

तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत ॥

सुनहु नील अंगद हनुमाना । जामवंत मतिधीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू । सीता सुधि पूँछेहु सब काहू ॥
मन क्रम बचन सो जतनु^३ बिचारेहु । रामचंद्र कर काजु सँवारेहु ॥
आयेसु माँगि चरन सिरु नाई । चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥
पाछे पवन तनय सिरु नावा । जानि काजु प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी ॥
बहु प्रकार सीतहि समुभाएहु । कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु ॥
हनुमत जनम सुफल करि माना । चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना ॥

दो०—चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह ।

राम काज लय लीन मन बिसरा तन कर छोह ॥

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा । प्राण लेहि एक एक चपेटा ॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहि । कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहि ॥

^१ छोभ ।

^२ किय चह ; करि चहँ ।

^३ सुजतन ।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने । मिलइ न जल घन^१ गहन भुलाने ॥
 मन हनुमान कीन्ह अनुमाना । मरन चहत सब विनु जलपाना ॥
 चढ़ि गिरि सिखर चहुँ दिसि देखा । भूमि विवर एक कौतुक पेखा ॥
 चक्रवाक बक हंस उड़ाही । बहुतक खग प्रबिसहि तेहि माही ॥
 गिरि तें उतरि पवनसुत आवा । सब कहुँ लेइ सोइ विवर देखावा ॥
 आगे कै हनुमंतहि लीन्हा । पैठे विवर बिलंबु न कीन्हा ॥

दो०—दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कंज ।

मंदिर एक रुचिर तहुँ बैठि नारि तपपुज ॥

दूरि तें ताहि सबन्हि सिरु नावा । पूछे निज वृत्तांत सुनावा ॥
 तेहि तब कहा करहु जल पाना । खाहु सुरस सुदर फल नाना ॥
 मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए । तामु निकट पुनि सब चलि आए ॥
 तेहि सब आपनि कथा सुमाई । में अब जाव जहाँ रघुराई ॥
 मूँदहु नयन विवर तजि जाहू । पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥
 नयन मूँदि पुनि देखहि बीरा । ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा ॥
 सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा । जाइ कमल पद नाएसि माथा ॥
 नाना भाँति विनय तेहि कीन्ही । अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ॥

दो०—बदरीवन कहुँ सो गई प्रभु आज्ञा धरि सीस ।

उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस ॥

इहाँ विचारहि कपि मन माहीं । बीती अवधि काजु कछु नाहीं ॥
 कह अंगद लोचन भरि बारी । दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी ॥
 इहाँ न सुधि सीता कै पाई । उहाँ गए मारिहि कपिराई ॥
 अंगद वचन सुनत कपि बीरा । बोलि न सकहि नयन बह नीरा ॥
 छन एक सोच मगन होइ रहे । पुनि अस वचन कहत सब भए ॥
 हम सीता कै सोध बिहीना । नहि जइहि जुवराज प्रवीना ॥
 अस कहि लवन सिंधु तट जाई । बैठे कपि सब दर्भ डसाई ॥
 जामवंत अंगद दुख देखी । कही कथा उपदेस विसेषी ॥

येहि विधि कथा कहहि बहु भाँती । गिरि कंदरा सुनी^१ संपाती ॥
बाहेर^२ होइ देखे^३ बहु कीसा । मोहि अहार दीन्ह जगदीसा ॥
डरपे गीध बचन सुनि काना । अब भा मरनु सत्य हम जाना ॥
कह अंगद बिचारि मन माही । धन्य जटायू सम कोउ नाही ॥
सुनि खग हरष सोक जुत बानी । आवा निकट कपिन्ह भय मानी ॥
तिन्हहि अभय करि पूँछेसि जाई । कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई ॥

दो०—मोहि लै जाहु सिंधु तट देउं तिलांजलि ताहि ।

वचन सहाय करबि मै पैहहु खोजहु जाहि ॥

अनुज क्रिया करि सागर तीरा । कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा ॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई । गगन गए रवि निकट उड़ाई ॥
तेज न सहि सक सो फिर आवा । मै अभिमानी रवि निअरावा ॥
जरे पंख अति तेज अपारा । परेउं भूमि करि घोर चिकारा ॥
मुनि एक नाम चंद्रमा ओही । लागी दया देखि करि^४ मोही ॥
बहु प्रकार तेहि ज्ञान सुनावा । देह जनित अभिमान छड़ावा ॥
त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही । तासु नारि निसिचरपति हरिही ॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता । तिन्हहि मिले तैं होब पुनीता ॥
जमिहहि पंख करसि जनि चिंता^५ । तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता ॥
मुनि कै गिरा सत्य भइ आजू । सुनि मम वचन करहु प्रभु काजू ॥
गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका । तहँ रह रावन सहज असंका ।
तहँ असोक उपवन जहँ रहई । सीता बैठि सोच रत अहई ॥

दो०—मैं देखौ तुम्ह नाही^६ गीधहि दृष्टि अपार ।

बूढ़ भएउं त करतेउं कछुक सहाय तुम्हार ॥

जो नाघइ सत योजन सागर । करइ सो राम काज मति आगर ॥
अस कहि उमा^७ गीध जब गएऊ । तिन्ह के मन अति बिसमै भएऊ ॥
निज निज बल सब काहु भाषा । पार जाइ कर^८ संसय राखा ॥

^१ सुना । ^२ बाहर; बाहिर; बाहेरि । ^३ देखि । ^४ गति । ^५ चिंता ।

^६ नाहिन । ^७ गरुड़ । ^८ कै ।

जरठ भएउँ अब कहइ रिछेसा । नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा ॥
 अंगद कहइ जाउँ मै पारा । जिअँ संसय कछु फिरती बारा ॥
 कहइ रिछेस सुनहु^१ हनुमाना । का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
 कवन सो काजु कठिन जग माही । जो नहिं होइ तात तुम्ह पाही ॥
 राम काजु लागि तव अवतारा । सुनतहिं भएउ पर्वताकारा ॥
 सिंघनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं नाघौ जलनिधि खारा ॥
 जामवंत मै पूछौ तोही । उचित सिखावन दीजहु^२ मोही ॥
 एतना करहु तात तुम्ह जाई । सीतहिं देखि कहहु सुधि आई ॥
 तब निज भुजबल राजिवनयना । कौतुक लागि संग कपि सेना ॥

छं०—कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहिं आनिहै ।

त्रैलोक पावन सुजस सुर सुर मुनि नारदादि बखानिहै ॥

जो सुनत गावत कहत समुभक्त परम पद नर पावई ।

रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

जामवंत के बचन सुहाए । सुनि हनुमंत हृदयँ अति भाए ॥
 तब लागि मोहिं परिखहु तुम्ह भाई । सहिं दुख कंद मूल फल खाई ॥
 जब लागि आवौ सीतहिं देखी । होइहिं^३ काजु मोहिं हरष बिसेषी ॥
 अस कहि नाइ सबन्हि कहूँ माथा । चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा ॥
 सिंधु तीर एक भूधर सुदर । कौतुक कृदि चढ़ेउ ता ऊपर ॥
 जेहिं^४ गिरि चरन देइ हनुमंता । चलेउ^५ सो गा पाताल तुरंता ॥
 जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । येही^६ भाँति चला हनुमाना ॥
 जलनिधि रघुपति दूत बिचारी । तैं मैनाक होहिं समहारी ॥

दो०—हनुमान तेहिं परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।

राम काजु कीन्हे बिनु मोहिं कहाँ बिस्राम ॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा । जानइ कहूँ बल बुद्धि त्रिसेषा ॥
 सुरसा नाम अहिन्ह कै माता । पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता ॥

^१ रीछपति सुनु; रिछेस सुनहु ।

^२ दीजें; दीजिअ ।

^३ होइ ।

^४ जे गिरि चरन दीन्ह ।

^५ चलि ।

^६ तेही; योही; ताही ।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनत बचन कह पवनकुमारा ॥
 राम काजु करि फिरि मैं आवौ । सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावौ ॥
 तब तुअ वदन पड़िहौं आई । सत्य कहौं मोहि जान दे माई ॥
 कवनेहु जतन देइ नहि जाना । ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥
 जस जस सुरसा बदन बड़ावा । तासु दून कपि रूप देखावा ॥
 सत जोजन तेहि आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥
 वदन पड़िठि पुनि बाहेर आवा । मांगा बिदा ताहि सिरु नावा ॥
 मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ॥

दो०—राम काज सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान ।

आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान ॥

निसिचर एक सिधु मुहुं रहई । करि माया नभ के खग गहई ॥
 जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं । जल विलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥
 गहई छाँह सक सो न उड़ाई । येहि विधि सदा गगनचर खाई ॥
 सोइ^१ छल हनुमान कहैं कीन्हा । तासु कपटु कपि तुरतहि चीन्हा ॥
 ताहि मारि मारुतसुत बीरा । बारिधि पार गएउ मति धीरा ॥
 सैल बिसाल देखि एक आगें । तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे ॥
 गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी ॥
 अति उत्तंग जलनिधि चहुँ पासा । कनककोट कर परम प्रकासा ॥

दो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार ।

अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पड़सार ॥

मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
 नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥
 जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
 मुठिका एक महाकपि हनी । रुधिर बमत^२ धरनी ढनमनी ॥
 अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥
 मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा । देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥

गएउ दसानन मंदिर माही । अति बिचित्र कहि जात सो नाही ॥
 सयन किए देखा कपि तेही । मंदिर महुँ न दीखि^१ बैदेही ॥
 भवन एक पुनि दीख सोहावा । हरिमंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥
 मन महुँ तरक करें कपि लागा^२ । तेहीं समय बिभीषनु जागा ॥
 विप्र रूप धरि बचन सुनाए । सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ॥

दो०—तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम ।

सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम ॥

पुनि^३ सब कथा बिभीषन कही । जेहि विधि जनकसुता तहँ रही ॥
 तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता । देखी^४ चहौ जानकी माता ॥
 जुगुति बिभीषन सकल सुनाई । चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
 करि सोइ रूप गएउ पुनि तहवाँ । बन असोक सीता रह जहवाँ ॥
 देखि मनहिं महुँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहि बीति जात निसि जामा ॥
 कृततनु सीस जटा एक बेनी । जपति हृदयँ रघुपति गुन खेनी ॥

दो०—निज पद नयन दिए मन राम चरन^५ महुँ लीन ।

परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥

तह पल्लव महुँ रहा लुकाई । करइ बिचार करौं का भाई ॥
 तेहि अवसर रावनु तहँ आवा । संग नारि बहु किए बनावा ॥
 बहु बिधि खल सीतहि समुभावा । साम दान^६ भय भेद देखावा ॥
 कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ॥
 तब अनुचरी करौ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ॥
 तून धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥
 सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा । कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥
 सठ सूने हरि आनेहि मोही । अधम निलज्ज लाज नहि तोही ॥

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम रामहिं भानु समान ।

परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन ॥

^१ दीख । ^२ क्रमशः लागे, जागे ।

^३ सुनि ।

^४ देखा ।

^५ कमल ,

पद; चरन लव ।

^६ दाम ।

सीता तैं मम कृत अपमाना । कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना ॥
 नाहि त सपदि मानु मम बानी । सुमुखि होति न त जीवन हानी ॥
 स्याम सरोज दाम सम सुदर । प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर ॥
 सो भुज कंठ कि तव असि घोरा । सुनु सठ अस प्रवान पन^१ मोरा ॥
 सीतल निसि तव असि^२ वर धारा । कह सीता हरु मम दुख भारा ॥
 सुनत बचन पुनि मारन धावा । मयतनया कहि नीति बुझावा ॥
 कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई । सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई ॥
 मास दिवस महुँ कहा न माना । तौ मै मारबि काढ़ि कृपाना ॥

दो०—भवन गएउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बंद ।

सीतहि त्रास देखावहि धरहि रूप बहु मंद ॥

त्रिजटा नाम राक्षसी एका । राम चरन रति निपुन बिबेका ॥
 सबन्हौं बोलि सुनाएसि सपना । सीतहि सेइ करहु हित अपना ॥
 सपनें बानर लंका जारी । जातुधान सेना सब मारी ॥
 खर आरूढ़ नगन दससीसा । मुडित सिर खंडित भुज बीसा ॥
 येहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई । लंका मनहुँ बिभीषन पाई ॥
 नगर फिरी रघुबीर दोहाई । तब प्रभु सीता^३ बोलि पठाई ॥
 येह सपना मै कहौं पुकारी । होइहि सत्य गएँ दिन चारी ॥
 तासु बचन सुनि ते सब डरीं । जनकसुता के चरनन्हि परीं ॥

दो०—जहँ तहँ गई सकल तब सीता कर मन सोच ।

मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच ॥

त्रिजटा सन बोलैं कर जोरी । मातु बिपति संगिनि तई मोरी ॥
 तजौं देह कर बेगि उपाई । दुसह बिरहु अब नहि सहि जाई ॥
 आनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लगाई ॥
 सत्य करहि मम प्रीति सयानी । सुनइ को स्रवन सूल सम बानी ॥
 निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी । अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥
 कह सीता बिधि भा प्रतिकूला । मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥

^१ मन ।

^२ निसित; बहसि ।

^३ सीतहि ।

देखिअत प्रगट गगन अंगारा । अवनि न आवत एकौ तारा ॥
 पावकमय ससि स्रवत न आगी । मानहुँ मोहि जानि हतभागी ॥
 सुनहि बिनय मम बिटप असोका । सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥
 नूतन किसलय अनल समाना । देहि अग्नि तन^१ करहि निदाना ॥

सो०—कपि करि हृदय विचार दीन्ह मुद्रिका डारि तब ।

जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुदर ॥
 चकित चितव मुदरी पहिचानी । हरष विषाद हृदय अकुलानी ॥
 जीति को सकइ अजय रघुराई । माया तें असि रचि नहि जाई ॥
 सीता मन विचार कर नाना । मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥
 लागी सुनै स्रवन मन लाई । आदिहुँ तें सब कथा सुनाई ॥
 स्रवनामृत जेहि कथा सुहाई । कही^२ सो प्रगट होति किन भाई ॥
 तब हनुमंत निकट चलि गएऊ । पिरि बैठी मन विसमय भएऊ ॥
 राम दूत मै मातु जानकी । सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
 येह मुद्रिका मातु मै आनी । दीन्ह राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥
 नर बानरहि संग कहु कैसें । कही कथा भइ संगति जैसें ॥

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास ।

जाना मन क्रम बचन येह कृपासिंधु कर दास ॥

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी । सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥
 बूझत बिरह जलधि हनुमाना । भएहु तात मो कहँ जलजाना ॥
 अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी । अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
 कोमल चित कृपालु रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥
 बचनु न आव नयन भरे^३ बारी । अहह नाथहाँ निपट बिसारी ॥
 देखि परम बिरहाकुल सीता । बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥
 मातु कुसल प्रभु अनुज समेता । तब दुख दुखी सु कृपानिकेना ॥
 जनि जननी मानहु जिअँ ऊना । तुम्ह तें प्रेम राम कें दूना ॥

^१ जनि ।

^२ कहि ।

^३ भरि; बह ।

दो०--रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर ।

अस कहि कपि गदगद भएउ भरे बिलोचन नीर ॥

कहेउ राम बियोग तब सीता । मोकहुँ सकल भए बिपरीता ॥
कहेहु तें कछु दुख घटि होई । काहि कहौं येह जान न कोई ॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाही । जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही । मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही ॥
कह कपि हृदयँ धीर धरु माता । सुमिरु राम सेवक सुखदाता ॥

दो०--निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु ।

जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु ॥

जौ रघुबीर होति सुधि पाई । करते नहि बिलंबु रघुराई ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहि रघुबीरा ॥
निसिचर मारि तोहि लै जइहि । तिहुँ पुर नारदादि जसु गइहि ॥
है सुत कपि सब तुम्हहि समाना । जातुधान अति भट बलवाना ॥
मोरें हृदयँ परम सदेहा । सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा ॥
सीता मन भरोस तब भएऊ । पुनि लघु रूप पवनसुत लएऊ ॥
आसिष दीन्ह राम प्रिय जाना । होहु तात बल सील निधाना ॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना । निर्भर प्रेम मगन^१ हनुमाना ॥
बार बार नाएसि पद सीसा । बोला बचन जोरि कर कीसा ॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा । लागि देखि सुदर फल रूखा ॥
सुनु सुत करहि बिपिन रखवारी । परम सुभट^१ रजनीचर धारी ॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं । जौ तुम्ह सुख मानहु मन माहीं ॥

दो०--देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु ।

रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु ॥

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा । फल खाएसि तरु तौरें लागा ॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ॥

सुनि रावन पठए भट नाना । तिन्हहि देखि गर्जेउ हनुमाना ॥
 सब रजनीचर कपि संघारे । गए पुकारत कछु अधमारे ॥
 पुनि पठएउ तेहि अक्ष कुमारा । चला संग लै सुभट अपारा ॥
 आवत देखि बिटप गहि तर्जा । ताहि निपाति महा धुनि गर्जा ॥
 सुनि सुत बध लंकेस रिसाना । पठएसि मेघनाद बलवाना ॥
 मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही । देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥
 रहे महा भट ताकें संगी । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगी ॥
 तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा । भिरे जुगल मानहुँ गजराजा ॥
 मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई । ताहे एक छन मुरुछा आई ॥
 ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा । परतिहुँ वार कटकु संघारा ॥
 तेहि देखा कपि मुरुछित भएऊ । नागपास बाँधेसि लै गएऊ ॥
 कपि बंधन सुनि निसिचर धाए । कौतुक लागि सभा सब आए ॥

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन बिहँसा कहि दुर्बाद ।

सुत बध सुरति कीन्ह पुनि उपजा हृदयँ बिषाद ॥

कह लंकेस कवन तई कीसा । केहि कें बल घालेसि बन खीसा ॥
 कीधौ श्रवन सुने नहि मोही । देखौ अति असंक सठ तोही ॥
 मारे^१ निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा ॥
 सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल बिरचित माया ॥
 हर कोदंड कठिन जेहि भंजा । तोहि समेत नृप दल मद गंजा ॥
 खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली । बधे सकल अतुलित बलसाली ॥

दो०—जा कें बल लवलेस तें जितेहु चराचर भारि ।

तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥

खाएउं फल प्रभु लागी भूखा । कपि सुभाव तें तोरेइँ रूखा ॥
 जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारें । तेहिं पर बाँधेउ तनयँ तुम्हारे ॥
 मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा । कीन्ह चहाँ निज प्रभु कर काजा ॥
 ता सों बयरु कवहुँ नहि कीजै । मोरें कहें जानकी दीजै ॥

राम चरन पंकज उर धरहू । लंका अचल राजु तुम्ह करहू ॥
रिपि पुलस्ति जसु बिमल मयंका । तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥

दो०—मोह मूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान ।

भजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान ॥

बोला बिहँसि महा अभिमानी । मिला हमहिं कपि गुर वड़ ज्ञानी ॥
मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ॥
उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोहिं प्रगट मै जाना ॥
सुनि कपि बचन बहुत गिनिगाना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाए । सचिवन्ह सहित विभीषन आए ॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता । नीति विरोध न मारिअ दूता ॥
आन दंड कछु करिअ गोसाईं । सबहीं कहा मंत्र भल भाई ॥
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर । अंग भंग करि पठइअ बंदर ॥

दो०—कपि कें ममता पँछ पर सबहिं कह्यौ^१ समुभाइ ।

तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥

पूँछहीन बानर तहँ^२ जाइहि । तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाइ । देखौं में तिन्ह कै प्रभुताई ॥
जातुधान सुनि रावन बचना । लागे रचै मूढ़ सोइ रचना ॥
कौतुक कहँ आए पुरबासी । मारहि चरन करहि बहु हाँसी ॥
पावक जरत देखि हनुमंता । भएउ परम लघु रूप तुरंता ॥
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी । भईं सभीत निसाचर नारी ॥

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास ।

अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥

देह बिसाल परम हरुआई । मंदिर तें मंदिर चढ धाई ॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला । झपट^३ लपट बहु कोटि कराला ॥
तात मानु हा सुनिअ पुकारा । येहि अवसर को हमहि उबारा ॥

^१ तोर ।

^२ कहा; कहौं ।

^३ जब ।

^४ झपट ।

हम जो कहा येह कपि नहिं होई । बानर रूप धरें सुर कोई ॥
जारा नगर निमिष एक माहीं । एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मभारी ॥

दो०—पूँछ बुझाइ खोइ स्रम धरि लघु रूप बहोरि ।

जनकसुता कें आगें ठाढ़ भएउ कर जोरि ॥

मातु मोहि दीजै किछु चीन्हा । जैसं रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूडामनि उतारि तब दएऊ । हरष समेत पवनसुत लएऊ ॥
कहेउ तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरन कामा ॥
दीन दयाल विरिदु^१ संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥
तात सकसुत कथा सुनाएहु । बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महँ नाथु न आवा । तौ पुनि मोहि जिअत नहि पावा^२ ॥
कहु कपि केहि बिधि राखौ प्राणा । तुम्हहँ तात कहत अब जाना ॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती । पुनि मो कहँ सो दिनु सो राती ॥

दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि बहु विधि धीरजु दीन्ह ।

चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहि कीन्ह ॥

नाथि सिंधु येहि पारहि आवा । सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा ॥
हरषे सब बिलोकि हनुमाना । नूतन जनम कपिन्ह तब जाना ॥
मिले सकल अति भए सुखारी । तलफत मीन पाव जनु बारी ॥
चले हरषे रघुनायक पासा । पूँछत कहत नवल इतिहासा ॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ । कपिन्ह सहित रघुपति पहि चलेऊ ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा । किऐं काजु मन हरष बिसेषा ॥

दो०—प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुनापुज ।

पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ॥

जामवंत कह सुनु रघुराया । जापर नाथ करहु तुम्ह दाय ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर । सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥

^१ बिरद; बिरद ।

^२ क्रमशः आवें, पावें ।

प्रभु की कृपा भएउ सबु काजू । जन्म हमार सुफल भा आजू ॥
नाथ पवनसूत कीन्हि जो करनी । सहसहु मुख न जाइ सो बरनी ॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाए । पुनि हनुमान हरषि हियें लागू ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी । रहति करति रच्छा स्वप्रान की ॥

दो०—नाम पाहरू राति दिनु^१ ध्यान तुम्हार कपाट ।

लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही । रघुपति हृदयें लाइ सोइ लीन्ही ॥
नाथ जुगल लोचन भरि वारी । वचन कहे कछु जनककुमारी ॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना । दीनबंधु प्रनतारति हरना ॥
मन त्रम बचन चरन अनुरागी । केहि अपराध नाथ हौ त्यागी ॥
अवगुन एक मोर मै माना । बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना ॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा । निसरत प्रान करहिं हठि बाधा ॥
बिरह अगिनि तन् तूल समीरा । स्वास जरइ छन माहि सरीरा ॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी । जरइ न पाव देह बिरहागी ॥
सीता कै अति विपति बिसाला । बिनहि कहे भलि दीनदयाला ॥

दो०—निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति ।

बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति ॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुखअयना । भरि आए जल राजिव नयना ॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयें लगावा । कर गहि परम निकट बैठवा ॥
कहु कपि रावन पालित लंका । केहि बिधि दहेहु दुर्ग अति बंका ॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना । बोला बचन विगत अभिमाना ॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई । साखा ते साखा पर जाई ॥
नाँधि सिंध हाटकपुर जारा । निसिचर गन बधि बिपिन उजारा ॥
सो सब तव प्रताप रघुराई । नाथ न कछु^२ मोरि प्रभुताई ॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा । कहा चलइ कर करहु बनावा ॥
अब बिलंबु केहि कारन कीजै । तुरत कपिन्ह कहूँ आयेसु दीजै ॥

^१ दिवस निसि ।

^२ कछुक ।

दो०—कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ ।

नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ॥

प्रभु पद पंकज नावहि सीसा । गर्जहिं भालु महाबल कीसा ॥
देखी राम सकल कपि सेना । चितइ कृपा करि राजिव नयना ॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना । सगुन भए सुदर सुभ नाना ॥
चला कटकु को बरनइ पारा । गर्जहि बानर भालु अपारा ॥
नख आयुध गिरि पादप धारी । चले गगन महि इच्छाचारी ॥
कोहरि नाद भालु कपि करही । डगमगाहि दिग्गज चिक्करही ॥

दो०—येहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर ।

जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका । जब ते जारि गएउ कपि लंका ॥
निज निज गृहँ सब करहि बिचारा । नहि निसिचर कुल केर उवारा ॥
जासु दूत बल बरनि न जाई । तेहि आएँ पुर कवन भलाई ॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी । मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥
रहसि जोरि कर पति पद लागी । बोली बचन नीति रस पागी ॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें । हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें ॥

दो०—राम वान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक ।

जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक ॥

स्रवन सुनी सठ ताकरि बानी । विहँसा जगत विदित अभिमानी ॥
सभय सभाउ नारि कर साँचा । मंगल महुँ भय मन अति काँचा ॥
जौ आवै मर्कट कटकाई । जिअहि बिचारे निसिचर खाई ॥
कंपहि लोकप जाकी त्रासा । तासु नारि सभीत वड़ि हासा ॥
बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई । सिधु पार सेना सब आई ॥
अवसर जानि विभीषनु आवा । भ्राता चरन सीसु तेहि नावा ॥
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन । बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौ कृपाल पूछहु गोहिं बाता । मति अनुरूप कहाँ हित ताता ॥
जो आपन चाहइ कल्याना । सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो पर नारि लिलारु गोसाईं । तजौ चौथि के चंद कि नाई ॥

दो०—वार वार पद लागौं बिनय करौं दससीस ।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई येह वात ।
तुरत सो मै प्रभु सन कही पाइ सुअवसर तात ॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना । तासु वचन सुनि अति सुख माना ॥
तात अनुज तव नीति विभूषन । सो उर धरहु जो कहत विभीषन ॥
रिपु उत्तरकष कहन सठ दोऊ । दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ ॥
मान्यवंत गृह गएउ ब्रहोरी । कहइ विभीषनु पुनि कर जोरी ॥
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं । नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना । जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

दो०—तात चरन गहि मागौं राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु^१ राम कहँ अहित न होइ तुम्हार ॥

सुनत दसानन उठा रिसाई । खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥
जिअमि सदा सठ मोर जिआवा । रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जग माही । भुजवल जेहि जीता मैं नाही ॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हैसि चरन प्रहारा । अनुज गहे पद वारहि वारा ॥
सचिव संग लै नभ पथ गएऊ । सबहि सुनाइ कहत अस भएऊ ॥

दो०—रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि ।
मै रघुबीर सरन अव जाउँ देहु जनि खोरि ॥

कपिन्ह विभीषनु आवत देखा । जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा ॥
ताहि राखि कपीस पहि आए । समाचार सब ताहि सुनाए ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । आवा मिलन दसानन भाई ॥
जानि न जाइ निसाचर माया । कामरूप केहि कारन आया ॥
भेद हमार लेन सठ आवा । राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी । मम पन सरनागत भयहारी ॥
 भेद लेन पठवा दससीसा । तवहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥
 जग महुँ सखा निसाचर जेते । लछिमनु हनई^१ निमिष महुँ तेते ॥
 जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहौ ताहि प्रान की नाई ॥

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपा निकेत ।

जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत ॥

सादर तेहि आगें करि दानर । चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
 दूरिहि तें देखे द्वौ भ्राता । नयनानंद दान के दाता ॥
 बहुरि राम छविधाम विलोकी । रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी ॥
 नाथ दसानन कर मै भ्राता । निसिचर वंस जन्म सुरवाता ॥
 सहज पाप प्रिय तामस देहा । जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥

दो०—स्रवन सुजसु सुनि आएउ प्रभु भंजन भव भीर ।

त्राहि त्राहि आरतिहरन सरनसुखद रघुबीर ॥

अस कहि करत दंडवत देखा । तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
 अनुज सहित मिलि द्विग बैठारी । बोले वचन भगत भयहारी ॥
 कहु लंकेस सहित परिवारा । कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
 खल मंडली बसहु दिनु राती । सखा धर्म निबहड केहि भाँती ॥
 सुनु लंकेस सकल गुन तोरें । ता तें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें ॥
 सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी । नहि अघात स्रवनामृत जानी ॥
 सुनहु देव सचराचर स्वामी । प्रनतपाल उर अंतरजामी ॥
 उर कछु प्रथम बासना रही । प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥
 अब कृपाल निज भगति पावनी । देहु सदा सिव मन भावनी ॥
 एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा । माँगा तुरत सिंधुकर नीरा ॥
 जदपि सखा तव इच्छा नाही । मोर दरसु अमोघ जग माहीं ॥
 अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ॥

दो०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड ।

जरत बिभीषन राखेउ^१ दीन्हेउ राजु अखंड ॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिऐं दस माथ ।

सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

बोले वचन नीति प्रतिपालक । कारन मनुज दनुज कुल घालक ॥

सुनु कपीस लंकापति वीरा । केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा ॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक । कोट सिधु सोषक तव सायक ॥

जद्यपि तदपि नीति असि गाई । विनय करिअ सागर सन जाई ॥

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई । करिअ दैव जौ होइ सहाई ॥

मंत्र न येह लछिमन मन भावा । राम बचन सुनि अति दुख पावा ॥

नाथ दैव कर कवन भरोसा । सोखिअ सिधु करिअ मन रोसा ॥

कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ॥

सुनत बिहँसि बोले रघुवीरा । ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ॥

अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई । सिधु समीप गए रघुराई ॥

प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई । बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ॥

जबहि बिभीषन प्रभु पहि आए । पाछे रावन दूत पठाए ॥

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह ।

प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह ॥

कहत राम जसु लंका आए । रावन चरन सीस तिन्ह नाए ॥

बिहँसि दसानन पूँछी बाता । कहसि न सुक आपनि कुसलाता ॥

पुनि कहु खबरि^२ बिभीषन केरी । जाहि^३ मृत्यु आई अति नेरी ॥

पुनि कहु भालु कीस कटकाई । कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥

कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी । जिन्ह कें हृदय त्रास अति मोरी ॥

नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसैं । मानहु कहा क्रोध तजि तैसैं ॥

मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहिं राम तिलक तेहि सारा ॥

रावन दूत हमहि सुनि काना । कपिन्ह बाँधि दीन्हें^४ दुख नाना ॥

^१ राखा; राखे ।

^२ कुसल ।

^३ जासु ।

^४ दीन्हे; दीन्हेउ ।

स्रवन नासिका काटें लागे । राम सपथ दीन्हें हम त्यागे ॥
 अस मैं सुना स्रवन दसकंधर । पदुम अठारह जूथप बंदर ॥
 परम क्रोध मीजहि सब हाथा । आयेसु पै न देहि रघुनाथा ॥
 गर्जहि तर्जहि सहज असंका । मानहु ग्रसन चहत हहि लंका ॥

दो०—सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम ।

रावन काल^१ कोटि कहु जीति सकहि संग्राम ॥

रामानुज दीन्ही यह पाती । नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती ॥
 जनकसुता रघुनाथहि दीजै । एतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥
 जब तेहि कहा देन बैदेही । चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही ॥
 नाइ चरन सिर चला सो तहाँ । कृपासिधु रघुनायक जहाँ ॥
 करि प्रनामु निज कथा सुनाई । राम कृपाँ आपनि गति पाई ॥
 रिषि अगस्ति की स्नाप^२ भवानी । राखस भएउ रहा मुनि ज्ञानी ॥

दो०—बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति ।

बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ॥

लछिमन वान सरासन आनू । सोखौं वारिधि बिसिख कृसान् ॥
 अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा । येह मत लछिमन कें मन भावा ॥
 संधानेउ प्रभु बिसिख कराला । उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥
 कनक थार भरि मनि गन नाना । विप्र रूप आए^३ तजि माना ॥
 सभय सिधु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
 प्रभु प्रताप मै जाव सुखाई । उतरिहि कटक न मोरि बड़ाई ॥

दो०—सुनत^४ बिनीति बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ ।

जेहि बिधि उतरइ कपि कटक तात सो कहहु उपाइ ॥

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई । लरिकाई रिषि आसिष पाई ॥
 तिन्ह कें परस किए गिरि भारे । तरिहहि जलधि प्रताप तुम्हारे ॥
 मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई । करिहौं बल अनुमान सहाई ॥

येहि विधिनाथ पयोधि बँधाइअ । जेहिं येह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ ॥
येहि सर मम उत्तर तट वासी । हतहु नाथ खल नर अधरासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा । तुरतहि हरी राम रनधीरा ॥
देखि राम बल पौष्प भारी । हरषि पयोनिधि भएउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा । चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥

सो०—सिंधु वचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ ।

अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरइ कटकु ॥

जामवंत बोले दोउ भाई । नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥
बोलि लिए कपि निकर बहोरी । सकल सुनहु विनती एक मोरी ॥
धावहु मरकट विकट बरूथा । आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ॥
सैल बिसाल आनि कपि देहीं । कंदुक इव नल नील ते लेहीं ॥
देखि सेतु अति सुंदर रचना । बिहँसि कृपानिधि बोले वचना ॥
करिहाँ इहाँ संभु थापना । मोरें हृदय परम कल्पना ॥
सुनि कपीस बहु दूत पठाए । मुनिबर सकल बोलि लै आए ॥
लिग थापि विधिवत करि पूजा । सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥
बाँधेउ सेतु नील नल नागर । रामकृपाँ जसु भएउ उजागर ॥
बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा । देखि कृपानिधि कें मन भावा ॥
चली सेन कछु वरनि न जाई । गरजहि मर्कट भट समुदाई ॥
सेतुबंध दिग चढ़ि रघुराई । चितव कृपाल सिंधु बहुताई ॥

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहि ।

अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहि ॥

सेन सहित उतरे रघुबीरा । कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥
सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा । सकल कपिन्ह कहँ आयेसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए । सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए ।
खाहि मधुर फल बिटप हलावहि । लंका सनमुख सिखर चलावहि ॥

^१ कछु ।

^२ अस्थपना ।

^३ प्र० : बांधा । द्वि० : प्र० । तृ० : बाँधेउ । च० : तृ० ।

जहँ कहँ फिरत निसाचर पावहिं । घेरि सकल बहु नाच नचावहिं ॥
सुनत स्रवन बारिधि बंधाना । दसमुख बोलि उठा अकुलाना ॥

दो०—बाँध्यो^१वननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस ।

सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस ॥

मंदोदरी सुन्यो प्रभु आयो । कौतुकीं पाथोधि बँधायो ॥
कर गहि पतिहि भवन निज आनी । बोली परम मनोहर वानी ॥
चरन नाड सिरु अंचल रोपा । सुनहु वचन पिय परिहरि कोपा ॥
नाथ बयर कीजै ताही सों । बुधि बल सकिअ जीति जाही सों ॥
चाहिअ करन सो सबु करि बीते । तुम्ह सुर असुर चराचर जीते ॥
संत कहहि असि नीति दसानन । चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥
जौ पिअ मानहु मोर सिखावन । सुजसु होइ तिहु पुर अति पावन ॥
तब रावन मयसुता उठाई । कहइ लाग खल निज प्रभुताई ॥
नाना विधि तेहि कहेसि बुभाई । सभा वहोरि बैठ सो जाई ॥
सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि^२ बूझा । करब कवन विधि रिपु सै जूझा ॥
कहहि सचिव सुनु निसिचरनाहा । बार बार प्रभु पूँछहु^३ काहा ॥
कहहु कवन भय करिअ विचारा । नर कपि भालु अहार हमारा ॥

दो०—सब के बचन स्रवन^४ सुनि कह प्रहस्त कर जोरि ।

नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥

दो०—नारि पाइ फिरि जाहि जौ तौ न बड़ाइअ रारि ।

नाहि त सनमुख समर महि तात करिअ हठि मारि ॥

सुत सन कह दसकंठ रिसाई । असि मति सठ केहि तोहि सिखाई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा । चला भवन कहि बचन कठोरा ॥
संध्या समय जानि दससीसा । भवन चलेउ निरखत भुज बीसा ॥
लंका सिखर उपर आगारा । अति बिचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठ जाइ तेहि मंदिर रावन । लागे किन्नर गुन गन^५ गावन ॥
बाजहिं ताल पखाउज बीना । नृत्य करहि अपछरा प्रबीना ॥

^१ बांधे ।

^२ सन ।

^३ बूझह ।

^४ बचन सबहि के ।

^५ गंधर्व ।

दो०—सुना सीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास ।

परम प्रबल रिपु सीस पर तदपि न कछु मन त्रास^१ ॥

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा । उतरे सेन सहित अति भीरा ॥
सैल सृंग एक सुंदर^२ देखी । अति उत्तंग^३ सम सुभ्र बिसेषी ॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए । लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
तेहि^४ पर रुचिर मृदुल मृगछाला । तेहि आसन आसीन कृपाला ॥
लंका सिखर उपर^५ आगारा । तहँ दसकंधर देख अखारा ॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना । चाप चढ़ाइ बान संधाना ॥

दो०—छत्र मुकुट ताटक तब हते एक ही बान ।

सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ॥

सोचहिं सब निज हृदय मभारी । असगुन भएउ भयंकर भारी ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ । जब तें स्रवनपूर महि खसेऊ ॥
इहाँ प्रात जागे रघुराई । पूछा मत सब सचिव बोलाई ॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई । जामवंत कह पद सिरु नाई ॥
मंत्र कहौं निज मति अनुसार । दूत पठाइअ बालिकुमारा ॥
नीक मंत्र सब के मन माना । अंगद सन कह कृपानिधाना ॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा । लंका जाहु तात मम कामा ॥
काजु हमार तासु हित होई । रिपु सन^६ करेहु बतकही सोई ॥

सो०—प्रभु आज्ञा धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ ।

सोइ गुनसागर ईस राम कृपा जापर करहु ॥

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई । अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ॥
पुर पैठत रावन कर बेटा । खेलत रहा सो होइ गइ^७ भेंटा ॥
बातहि बात करष बढ़ि आई । जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई ॥

^१ तद्यपि सोच न त्रास; तदपि सोच नहि त्रास; तदपि न कछु तेहि त्रास;
तदपि न कछु मन त्रास; तदपि हृदय नहि त्रास ।

^२ प्र० : सिखर एक उत्तंग अति । ^३ परम रम्य । ^४ ता । ^५ रुचिर ।

^६ सै । ^७ होइ गै ।

तेहि अंगद कहूँ लात उठाई। गहि पद पटकेहु भूमि भँवाई ॥
 निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहि पुकारी ॥
 भएउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी ॥
 अब धौ काह करिहि करतारा। अति सभौत सब करहि बिचारा ॥
 बिनु पूँछे मगु देहि देखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई ॥

दो०—गएउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।

सिध ठवनि इत उत चितव धीर बीर बलपुंज ॥

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा ॥
 सुनत बिहसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा ॥
 आयेसु पाइ दूत बहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए ॥
 अंगद दीख दसानन बैसा^१। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा^२ ॥
 गएउ सभा मन नेंकु न मुरा। वालितनय अतिबल बाँकुरा ॥
 उठेउ सभासद कपि कहूँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी ॥

दो०—जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।

राम प्रताप सँभारि उर^३ बैठ सभा सिरु नाइ ॥

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर ॥
 मम जनकहि तोहि रही मिताई। तब हित कारन आएउं भाई ॥
 उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ॥
 बर पाएहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सुर^४ राजा ॥
 नृप अभिमान मोह बस किंवा। हरि आनेहु सीता जगदंबा ॥
 अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ॥
 दसन गहहु तुन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी ॥
 सादर जनकसुता कर आगे। येहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे ॥

दो०—प्रनतपाल रघुवंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।

आरत गिरा सुनत प्रभु^५अभय करैगो^६ तोहि ॥

^१ क्रमशः बैसे; जैसे।

^२ सुमिरि मन।

^३ सब।

^४ सुनतीहि आरत गिरा; सुनतीहि आरत बचन।

^५ करहिगे।

रे कपिपोत बोलु^१ संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
 कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिए मितार्ई ॥
 अंगद नाम वालि कर बेटा। ता सो कबहुँ भई ही^२ भेटा ॥
 अंगद बचन सुनत सकुचाना। हां वाली^३ बानर मै जाना ॥
 अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
 गर्भ न गएउ^४ व्यर्थ^५ तुम्ह जाएहु। निज मुख तापस दूत कहाएहु ॥
 अब कहु कुसल बालि कहैं अहई। विहँसि बचन तब अंगद कहई ॥
 दिन दस गए बालि पहि जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई ॥

दो०—हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस।

अंधौ बधिर^६ न अस कहहि^७ नयन कान तब बीस ॥

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसाननु नयन तरेरी ॥
 खल तव कटिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मे^८ जानत अहऊँ ॥
 कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी ॥
 देखी^९ नयन दूत रखवारी। बूढ़ि न मरहु धर्मव्रत धारी ॥
 कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी ॥
 धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु महुँ^{१०} बड़ भागी ॥

दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।

लोकपाल बल विपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु ॥

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
 तव प्रभु नारिबिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
 तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
 जामवंत मंत्री अति बूढा^{११}। सो कि होइ अब समर अरूढा ॥
 सिल्पिकर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला ॥
 आवा प्रथम नगर जेहि जारा। सुनि हँसि बोलेउ^{१२} बालिकुमारा ॥

^१ न बोलु। ^२ रही; हो; हुये। ^३ रहा बालि। ^४ गएह।

^५ बूथा। ^६ बहिर; बहिरौ। ^७ कहइ। ^८ मैं; सब।

^९ देखे; देखिउं। ^{१०} हमहुँ। ^{११} मूढा। ^{१२} सुनत बचन कह।

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा । साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
 रावन नगर अल्प कपि दहई । को अस भूँठ सुनै^१ को कहई ॥
 जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
 चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

दो०—अब जानेउँ पुर दहेउ कपि^२बिनु प्रभु आयेसु पाइ ।
 फिरि न गएउ निज नाथ^३पहिं तेहि भय रहा लुकाइ ॥
 सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
 कोउ न हमरे कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥
 हँसि बोलेउ दसमौलि तव कपि कर बड़ गुन एक ।
 जो प्रतिपालै तासु हित करै उपाय अनेक ॥

मैं गुन गाहक परम सुजाना । तव कटु रटनि करौं नहिं काना ॥
 कह कपि तव गुन गाहकताई । सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
 वन बिधंसि सुत बधि पुर जारा । तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा ॥
 सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई । दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई ॥
 देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा । तुम्हरे लज न रोष न माखा ॥
 जाँ असि मति पितु खाएहि कीसा । कहि अस बचन हँसा दससीसा ॥
 पितहि खाइ खांतेउँ पुनि तोही । अबहीं समुभि परा कछु मोही ॥
 कहु^४ रावन रावन जग केते । मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते^५ ॥
 बलिहि जितन एकु गएउ पाताला । राखा^६ बाँधि सिसुन्ह हयसाला ॥
 खेलहि बालक मारहि जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥
 एकु बहोरि सहसभुज देखा । धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा ॥
 कौतुक लागि भवन लै आवा । सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ॥

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख ।
 इन्ह^७ महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ॥

^१ सुनि अस बचन सत्य; को अस भूँठ सुनै । ^२ सत्य नगर कपि जारेउ ।
^३ सुग्रीव । ^४ सुनु । ^५ तेते । ^६ राखेउ । ^७ तिन्ह ।

सुनु सठ सोइ रावनु बलसीला । हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई । पूजेउ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥
सिर सरोज निज करन्ह उतारी । पूजेउ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज बिक्रम जानहि दिगपाला । सठ अजहूँ जिन्हकें उर साला ॥
जानहि दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरौ जाइ बरिआई ॥
जिन्ह^१ के दसन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी । चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ॥
सोइ रावनु जग विदित प्रतापी । सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी ॥

दो०—तेहि रावन कहूँ लघु कहसि नर कर करसि बखान ।

रे कपि बरबर खर्ब खल अव जाना तव ज्ञान^२ ॥

सुनि अंगद सकोप कह वानी । बोलु सँभारि अधम अभिमानी ॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा । दहन अनल सम जासु कुठारा ॥
जासु परसु सागर खर धारा । बूड़े नृप अगनित बहु बारा ॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा । सो नर क्यों दससीस^३ अभागा ॥
सुनु रावन परिहरि चतुराई । भजसि न कृपासिंधु रघुराई ॥
सुनत बचन रावन परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ॥
सठ साखामृग जोरि सहाई । बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई ॥
नाघहि खग अनेक बारीसा । सूर न होहि ते सुनु जड़^४ कीसा ॥
जौ पै समर सुभट तव नाथा । पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा ॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा । रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा ॥

दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस ।

हुने अनल महुँ बार बहु हरषित साखि गिरीस^५ ॥

कह अंगद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ । निज मुख निज गुन कहसि न काऊ ॥
सिर अरु सैल कथा चित रही । ता तें बार बीस तें कही ॥

^१ तिन्ह ।

^२ अब जाना तब जान; तब न जान अब जान ।

^३ दसकंठ ।

^४ सठ ।

^५ अति हरष बहु बार साखि गौरीस ।

सो भुज बल राखेउ उर घाली । जीतेहु सहसबाहु बलि बाली ॥
 सुनु मतिमंद देहि अब पूरा । काटें सीस कि होइअ सूर ॥
 बाजीगर^१ कहूँ कहिअ न बीरा । काटइ निज कर सकल सरीरा ॥

दो०—जरहि पतंग बिमोह^२ बस भार बहहि खरवृंद ।

ते नहि सूर सराहिअहि^३ समुभि देखु मतिमंद ॥

अब जनि बतबद्धाव खल करही । सुनु मम वचन मान परिहरही ॥
 दसमुख मै न वसीठीं आएउँ । अम बिचारि रघुबीर पठाएउँ ॥
 वार वार इमि^४ कहइ कृपाला । नहि गजारि जसु वधे सुकाला ॥
 मन महुँ समुभि वचन प्रभु केरे । सहेउँ कठोर वचन सठ तेरे ॥
 नाहि त करि मुखभंजन तोरा । लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ॥
 जानेउँ तव बलु अधम सुरारी । सुनें हरि आनिहि^५ पर नारी ॥
 तै निसिचर पति गर्व बहता । मै रघुपति सेवक कर दूता ॥
 जौ न राम अपमानहि डरऊँ । तोहि देखत अस कौतुक करऊँ ॥

दो०—तोहि पटक महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ ।

मदोदरी^६ समेत सठ जनकसुतहि^७ लै जाउँ ॥

जौ अस करौं तदपि न बड़ाई । मुएहि बधे कछु नहि^८ मनुसाई ॥
 सुनि सकोप कह निसिचरनाथा । अधर दसन दसि मीजत हाथा ॥
 रे कपि पोत^९ मरन अब चहसी । छोटें वदन वात बड़ि कहसी ॥
 कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाके । बल प्रताप बुधि तेज न ताकें ॥
 जब तेहि कीन्हि^{१०} राम कइ निदा । क्रोधवन्त अति भएउ कपिंदा ॥
 कटकटान कपिकुजर भारी । दुहु भुजदंड तमकि महि मारी ॥
 डोलत धरनि सभासद खसे । चले भाजि भय मारुत ग्रसे ॥
 गिरत दसानन उठा सँभारी^{११} । भूल परे मुकुट षट्चारी^{१२} ॥
 कछु तेहि लै^{१३} निज मिरन्हि सँवारे । कछु अंगद प्रभु पास पबारे ॥

^१ इंद्रजालि ।

^२ मोह ।

^३ कहावहि ।

^४ अस ।

^५ आनेहि ।

^६ तव जुवयतन्ह ।

^७ जनक सुता ।

^८ न कछु ।

^९ अधम ।

^{१०} कीन्ह ।

^{११} क्रमशः संभारि उठा दसकंधर, अति सुंदर ।

^{१२} बहु कर ।

आवत मुकुट देखि कपि भागे । दिनहीं लूक परन बिधि लागे ॥
कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहूँ । लूक न असनि केतु नहिँ राहूँ ॥
ये किरिट दसकंधर करे । आवत बालितनय के प्रेरे ॥

दो०—कूदि^१ पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास ।

कौतुक देखहिँ भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास ॥

उहाँ कहत दसकंध रिसाई । धरि मारहु कपि भाजिन जाई^२ ॥
येहिँ बिधि^३ बेगि सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु ॥
महिँ अकीस करि फेरि दोहाई^४ । जित धरहु तापस द्वौ भाई ॥
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा । गाल बजावत तोहिँ न लाजा ॥
या को फलु पावहिँगो आगे । बानर भालु चपेटन्हिँ लागे ॥
राम मनुज बोलत असि बानी । गिरहिँ न तव रसना अभिमानी ॥
गिरिहहिँ रसना संसय नाहीँ । सिरन्हिँ समेत समर महिँ माहीं ॥

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिँ एक सर ।

बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥

मैं तव दसन तोरिबे लायक । आयेसु मोहिँ न दीन्ह रघुनायक ॥
अस रिस होति दसौँ मुख तोरौँ । लंका गहिँ समुद्र महँ बोरौँ ॥
गूलरि फल समान तव^५ लंका । बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका ॥
मैं बानर फल खात न बारा । आयेसु दीन्ह न राम उदारा ॥
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई । मूढ़ सिखिहिँ कहँ बहुत भुठाई ॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा ॥
साँचेहुँ मैं लबार भुजबीहा । जौँ न उपारिउँ तव दस जीहा ॥
राम प्रताप सुमरि^६ कपि कोपा । सभा माँझ पन करि पद रोपा ॥
जौँ मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिँ रामु सीता मैं हारी ॥

^१ तरकि ।

^२ उहाँ सकोप दसानन सब सनकहत रिसाइ ।

धरहु कपिहिँ धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ ॥

^३ बिधि ।

^४ मर्कटहीन करहु महिँ जाई । द्वि० :

^५ यह ।

^६ समुझि राम प्रताप ।

सुनहु सुभट सब कह दससीसा । पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥
 इंद्रजीत आदिक बलवाना । हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ॥
 भपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई ॥

दो०—भूमि न छाड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग ।

कोटि बिघ्न तें संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥

कपि बलु देखि सकल हियें हारे । उठा आपु जुबराज प्रचारे^१ ॥
 गहत चरन कह बालिकुमारा । मम पद गहे न तोर उवारा ॥
 गहसि न राम चरन सठ जाई । सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥
 भएउ तेज हत श्री सब गई । मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ॥
 सिंघासन बैठेउ सिर नाई । मानहुँ संपति सकल गँवाई ॥
 पुनि कपि कही नीति बिधि नाना । मान न ताहि कालु निअराना ॥
 रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो । येह कहि चल्यो बालि नृप जायो ॥
 हतौ न खेत खेलाइ खेलाई । तोहि अबहिं का करौ बड़ाई ॥
 प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा । सो सुनि रावनु भएउ दुखारा ॥
 जानुधान अंगद पन देखी । भय व्याकुल सब भए बिसेषी ॥

दो०—रिपु बल धरषि^२हरिष कपि बालितनय बलपुंज ।

सजल सुलोचन पुलक तनु^३ गहे राम पद कंज ॥

साँभ जानि दसमौलि तब^४ भवन गएउ बिलखाइ ।

मंदोदरी निसाचरहिं^५ बहुरि कहा समुभाइ ॥

कंत समुक्ति मन तजहु कुमतिहीं । सोह न समर तुम्हहि रघुपतिहीं ॥
 रामानुज लघु रेख खँचाई । सोउ नहिं नाँघेहु असि मनुसाई ॥
 पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा । जा के दूत केर अस^६ कामा ॥
 अब पति मृषा गाल जनि मारहु । मोर कहा कछु हृदय बिचारहु ॥
 जनक सभा अगनित महिपाला^७ । रहे तुम्हौं बल बिपुल^८ बिसाला ॥
 भंजि धनुष जानकी बिआही । तब संग्राम जितेहु किन ताही ॥

^१ कपि के परचारे ।

^२ धरषित; दरपित ।

^३ पुलक सरीर नयन जल ।

^४ दसकंधर ।

^५ रावनहि; तब रावनहि ।

^६ येह ।

^७ भूपाला ।

^८ अतुल; गर्ब ।

दो०—बधि बिराध खरदूषनहि लीला हृत्यो कबंध ।

बालि एक सर मार्यो तेहि जानहु दसकंध ॥

नारि बचन सुनि बिसिख समाना । सभा गएउ उठि होत बिहाना ॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली । अति अभिमान त्रास सब भूली ॥
इहाँ राम अंगदहि बोलावा । आइ चरन पंकज सिर नावा ॥
रिपु के समाचार जब पाए । राम सचिव सब निकट बोलाए ॥
लंका बाँके चारि दुआरा । केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा । चारि अनी कपि कटक बनावा ॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे । जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
हरषित राम चरन सिर नावहि । गहि गिरि सिखर बीर सब धावहि ॥
जानत परम दुर्ग अति लंका । प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी । मुखहि निसान बजावहि भेरी ॥

दो०—जयति राम भ्राता सहित जय कपीस सुग्रीव ।

गरजहि केहरिनाद कपि भालु महा बलसीव ॥

लंका भएउ कोलाहल भारी । सुना^१ दसानन अति अहंकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ठिठाई । बिहँसि निसाचर सेन बोलाई ॥
आए कीस काल के प्रेरे । छुधावंत रजनीचर^२ मेरे ॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा । गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा ॥
सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू । धरि धरि भालु कीस सब खाहू ॥
चले निसाचर आयेसु माँगी । गहि कर भिंडिपाल वर साँगी ॥

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बलबीर ।

कोटि कंगूरन्ह चढ़ि गए कोटि कोटि रन धीर ॥

कोट कंगूरन्ह सोहहि कैसे । मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे ॥
बाजहि ढोल निसान जुभाऊ । सुनि धुनि होइ भटन्ह मन चाऊ ॥
बाजहि भेरि नफीर अपारा । सुनि कादर उर जाहि दरारा ॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह कै ठट्टा । अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा ॥

^१ जय लछिमन ।

^२ सिंघनाद ।

^३ सुनेउ ।

^४ सब निसिचर ।

उत रावन इत राम दोहाई । जयति जयति जय परी लराई ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहि । कूदि धरहि कपि फेरि चलावहि ॥

दो०—एक एक गहि रजनिचर^१ पुनि कपि चले पराई ।

ऊपर आपुनु हेठ भट गिरहि धरनि पर आइ ॥

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा । मर्दहि निसिचर निकर^२ बरूथा ॥
चढे दुर्ग पुनि तहँ जहँ बानर । जय रघुबीर प्रताप दिवाकर ॥
चले निसाचर^३ निकर पराई । प्रबल पवन जिमि घन समुदाई ॥
निज दल बिचल सुना^४ जव काना । फेरि सुभट लंकेस रिसाना ॥
जो रन बिमुख फिरा मै जाना^५ । तेहि मारिहौ^६ कराल कृपाना ॥
सर्वसु खाइ भोग करि नाना । समरभूमि भए बल्लभ^७ प्राना ॥
उग्र बचन सुनि सकल डेराने^८ । फिरे क्रोध करि बीर^९ लजाने ॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा । तव तिन्ह तजा प्रान कर लोभा ॥

दो०—बहु आयुधधर सुभट सब भिरहि पचारि पचारि ।

व्याकुल कीन्ह^{१०} भालु कपि परिघ प्रचंडनिह^{११} मारि ॥

भय आतुर कपि भागन लागे । जद्यपि उमा जीतिहिहि आगे ॥
निज दल बिचल^{१२} सुना^{१३} हनुमाना । पच्छिम द्वार रहा बलवाना ॥
मेघनाद तहँ करइ लराई । टूट न द्वार परम कठिनाई ॥
पवनतनय मन भा अति क्रोधा । गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा ॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा । गहि गिरि मेघनाद कहँ धावा ॥
भंजेउ रथ सारथी निपाता । ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता ॥

दो०—अंगद सुनेउ कि^{१४} पवनसुत गढ़ पर गएउ अकेल ।

समर^{१५} बाँकुरा बालिसुत तरकि चढेउ कपि खेल ॥

^१ निसिचर गहि । ^२ सुभट । ^३ तमीचर । ^४ सुनी; सुना ।

^५ तेहि । ^६ सुना मै काना । ^७ सो मै हतब । ^८ दुलभ; दुल्लभ ।

^९ सकाने । ^{१०} चले क्रोध करि सुभट । ^{११} प्र० : व्याकुल किए;

कीन्हें व्याकुल । ^{१२} त्रिसूलनिह । ^{१३} बिकल । ^{१४} सुनी ।

^{१५} सुने कि; सुनेउ कि । ^{१६} रन ।

जुद्ध बिरुद्ध कुद्ध द्वौ बंदर^१ । राम प्रताप सुमिरि उर अंतर ॥
 रावन भवन चढ़े तब^२ धाई । करहि^३ कोसलाधीस दोहाई ॥
 कलस सहित गहि भवनु डहावा । देखि निसाचरपति भय पावा ॥
 नारिबृंद कर पीटहि छाती । अब दुइ कपि आए उतपाती ॥
 कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहि । रामचंद्र कर सुजसु सुनावहि ॥
 पुनि कर गहि कंचन के खंभा । कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा ॥
 कूदि परे^४ रिपु कटक मँभारी । लागे मर्दइ भुज बल भारी ॥
 काहुहि लात चपेटन्हि केहू । भजहु न रामहि सो फलु लेहू ॥

दो०—भुजवल रिपु दल दलमलि^५ देखि दिवस कर अंत ।

कूदे जुगल प्रयास विनु^६ आए जहँ भगवंत ॥
 प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए । देखि सुभट रघुपति मन भाए ॥
 रामकृपा करि जुगल निहारे । भए विगतस्त्रम परम सुखारे ॥
 गए जानि अंगद हनुमाना । फिरे भालु मर्कट भट नाना ॥
 जातुधान प्रदोष बल पाई । धाए करि दससीस दोहाई ॥
 निमिचर अनी देखि कपि फिरे । जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे ॥
 द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी । लरत^७ सुभट नहि मानहि^८ हारी ॥
 वीर तमीचर सब अति कारे^९ । नाना वरन वलीमुख भारे ॥
 सबल जुगल दल समवल जोधा । कौनुक करत लरत करि क्रोधा ॥
 अनिप अकंपन अरु अतिकाया । विचलित सेन कीन्ह इन माया ॥
 भएउ निमिष महँ अति अंधियारा । वृष्टि होइ रुधिरापल छारा ॥

दो०—देखि निविड़ तम दसहुँ दिसि कपि दल भएउ खँभार ।

एकहि एकु न देखइ^{१०} जहँ तहँ करहि पुकार ॥
 येह सब मरम राम विभु जाना^{११} । लिए बोलि अंगद हनुमाना ॥
 समाचार सब कहि समुभाए । सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥

^१ बानर । ^२ द्वौ । ^३ सों मर्दहि; सन मर्दहि; सन मर्दिकरि
 गहि; रजनिचर । ^४ बलमले; दलमलेउ । ^५ बिगतस्त्रम । ^६ लरहि ।

^७ मानत । ^८ महावीर निसिचर; बीरनिसचार सब । ^९ देख तब ।

^{१०} सकल मरम रघुनायक ।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा । पावक सायक सपदि चलावा ॥
 भएउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं । ज्ञान उदय जिमि संसय^१ जाही ॥
 भालु बलीमुख पाइ प्रकासा । धाए हरषि^२ बिगत स्रम त्रासा ॥
 हनूमान ६ अंगद रन गाजे । हाँक सुनत रजनीचर भाजे ॥
 भागत भट पटकहिँ धरि धरनी । करहिँ भालु कपि अद्भुत करनी ॥
 गहि पद डारहि सागर माहीं । मकर उरग भूष धरि धरि खाही ॥

दो०—कछु घायल कछु रन परे^३ कछु गढ़ चढ़े पराइ ।

गर्जहिँ मर्कट भालु भट^४ रिपु दल बल बिचलाइ ॥

निसा जानि कपि चारिउ अनी । आए जहाँ कोसलाधनी ॥
 उहाँ दसानन सचिव^५ हँकारे । सब सन कहेसि सुभट जे मारे ॥
 आधा कटकु कपिन्ह संहारा । कहहु बेगि का करिअ विचारा ॥
 माल्यवंत अति जरठ निसाचर । रावन मातु पिता मंत्री बर ॥
 बोला वचन नीति अति पावन । सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥
 जब तें तुम्ह सीता हरि आनी । असगुन होहि न जाहि बखानी ॥
 परिहरि बयछ देहु बैदेही । भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
 ताके वचन बान सम लागे । करिआ मुह^६ करि जाहि अभागे ॥
 सो उठि गएउ कहत दुर्बादा । तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
 कौतुक प्रात देखिअहु मोरा । करिहौं बहुत कहौं का थोरा ॥
 सुनि सुत वचन भरोसा आवा । प्रीत समेत अंक बैठावा ॥
 करत विचार भएउ भिनुसारा । लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ॥

दो०—मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ु पुनि छँका आइ ।

उतरि बीरबर दुर्ग तें^७ सन्मुख चलेउ बजाइ ॥

कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता । धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
 कहँ नल नील दुविद सुग्रीवा । अंगद हनूमंत बलसींवा ॥
 कहाँ विभीषनु भ्राता द्रोही । आजु सठहिँ हठि मारौं ओही ॥

^१ दुख; सुख । ^२ कोपि । ^३ मारे कछु घायल । ^४ भालु बली मुख ।

^५ सुभट । ^६ मुख । ^७ उतरयो बीर दुर्ग ते; उतरि दुर्ग तें बीरबर । ^८ सबहि ।

अस कहि कठिन बान संधाने । अतिसय कोप^१ स्रवन लगि ताने ॥
सर समूह सो छाँड़ै लागा । जनु सपक्ष धार्वहि बहु नागा ॥
जहँ तहँ परत देखिअहि बानर । सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर ॥
भागे भय व्याकुल कपि रिच्छा^२ । बिसरी सबहि जुद्ध कै इच्छा ॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हैसि जेहि न प्रान अवसेषा ॥

दो०—मारेसि दस दस बिसिख सब^३ परे भूमि कपि बीर ।

सिघनाद गर्जत भएउ मेघनाद रन धीर^४ ॥

देखि पवनसुत कटक बिहाला । क्रोधवंत जनु धाएउ काला ॥
महा महीधर तमकि उपारा^५ । अति रिस मेघनाद पर डारा ॥
आवत देखि गएउ नभ सोई । रथ सारथी तुरग सब खोई ॥
बार बार पचार हनुमाना । निकट न आव मरमु सो जाना ॥
राम समीप^६ गएउ घननादा । नाना भाँति कहेसि दुर्बादा ॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे । कौतुक हीं प्रभु काटि निबारे ॥
देखि प्रताप^७ मूढ खिसिआना । करै लाग माया बिधि नाना ॥
बरषि धूरि कीन्हैसि अँधिआरा । सूझ न आपन हाथु पसारा ॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने । भए सभीत सकल कपि जाने ॥
एक बान काटी सब माया । जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया ॥

दो०—आयेसु माँगेउ^८ राम पहि अंगदादि कपि साथ ।

लछिमन चले सकोप अति^९ बान सरासन हाथ ॥

इहाँ दसानन सुभट पठाए । नाना सस्त्र अस्त्र गहि धाए ॥
भूधर नख विटपायुध धारी । धाए कपि जय राम पुकारी ॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी । इत उत जय इच्छा नहिं थोरी ॥
मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं । कपि जयसील मारि पुनि डाटहि ॥
मारु मारु धरु मरु धरु मारु । सीस तोरि गहि भुजा उपारु ॥
असि रव पूरि रही नव खंडा । धार्वहि जहँ तहँ रुंड प्रचंडा ॥

^१ क्रोध । ^२ जहँ तहँ भागि चले । ^३ दस दस सर सब मारेसि ।

^४ करि गर्जा मेघनाद बलबीर । ^५ महासैल एक तुरत उपारा ।

^६ रघुपति निकट । ^७ प्रभाउ । ^८ मांगि; मांगी । ^९ क्रुद्ध होइ ।

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ ।

जिमि^१ अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह^२ छाड़ि ॥

घायल बीर विराजहि कैसे । कुसुमित किसुक के तरु जैमे ॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा । भिरहि परसपर करि अति क्रोधा ॥
एकहि एक सकइ नहि जीती । निमिचर छलबल करइ अनीती ॥
क्रोधवंत तब भएउ अनंता । भंजेउ रथ सारथी तुरंता ॥
नाना विधि प्रहार कर सेपा । राक्षस भएउ प्रान अवसेपा ॥
रावनसुत निज मन अनुमाना । सकट भएउ हरिहि मम प्राना ॥
बीरघातिनी छाडिसि साँगी । तेजपूज लछिमन उर लागी ॥
मुरछा भई सक्ति कें लागें । तब चलि गएउ निकट भय त्यागें ॥

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ ।

जगदाधार अनंत^३ किमि उठइ चले खिसिआइ ॥

यह कौतूहल जानइ सोई । जा पर कृपा राम कै होई ॥
संध्या भइ फिरि द्वौ बाहिनी । लगे सँभारन निज निज अनी ॥
व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर । लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लै आएउ हनुमाना । अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ॥
जामवंत कह बैद सुषेना । लंका रह को पठइअ लेना ॥
धरि लघु रूप गएउ हनुमंता । आनेउ भवन समेत तुरंता ॥

दो०—रघुपति चरन मरोज^४ सिर नाएउ आइ सुषेन ।

कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ॥

राम चरन सरसिज उर राखी । चला प्रभंजनसुत बल भाषी ॥
उहाँ दूत एक मरमु जनावा । रावनु कालनेमि गृह आवा ॥
दसमुख कहा मरमु तेहि सुना । पुनि पुनि कालनेमि सिर धुना ॥
देखत तुम्हहि नगर जेहि जारा । तासु पंथ को रोकनिहारा^५ ॥
अस कहि चला रचिसि मग माया । सर मंदिर बर बाग बनाया ॥
मारुतसुत देखा सुभ आखम । मुनिहि बूझि जलु पिऔं जाइ स्रम ॥

^१ जनु ।

^२ रहयो ।

^३ मेघ ।

^४ राम पदार्थबंद ।

^५ रोकन पारा ।

दो०—सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान ।

मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान ॥

मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । मानहु सत्य वचन कपि^१ मोरा ॥
अस कहि गई अपछरा जबही । निसिचर निकट गएउ सो^२ तबहीं ॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेह । पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देह ॥
सिर लंगूर लपेटि पछारा । निज तनु प्रगटेसि मरतीं बारा ॥
देखा सैल न औषध चीन्हा । महसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि दिसि नभ धावत भएऊ । अवधपुरी ऊपर कपि गएऊ ॥

दो०—देखा भरत विसाल अति निसिचर मन अनुमानि ।

बिनु फर सर तकि^३ मारेउ चाप स्रवन लगि तानि ॥

परेउ मुरुछि महि लागत सायक । सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय वचन भरतु उठि^४ धाए । कपि समीप अति आतुर आए ॥
विकल बिलोकि कीस उर लावा । जागत नहि बटु भाँति जगावा ॥
मुख मलीन मन भए दुखागी । कहत वचन लोचन भरि वारी ॥
जेहि विधि राम विमुख मोहि कीन्हा । तेहि पुनि येह दारुन दुख दीन्हा ॥
जौ मोरें मन वच अरु काया । प्रीति राम पद कमल अमाया ॥
तौ कपि होउ विगत स्रम सूला । जौ मोपर रघुपति अनुकूला ॥
सुनत वचन उठि बैठ कपीसा । कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल ।

प्रीति न हृदयें समाइ सुमिरि राम रघु कुल तिलक ॥

तात कुसल कहु सुखनिधान की । सहित अनुज अरु मातु जानकी ॥
कपि सब चरित समास^५ बखाने । भए दुखी मन महँ पछिताने ॥
अहह दैव मै कत जग जाएउँ । प्रभु के एकहु काज न आएउँ ॥
जानि कुअवसर मन धरि धीरा । पुनि कपिसन बोले बलबीरा ॥
तात गहरु होइहि तोहि जाता । काजु नसाइहि होत प्रभाता ॥

^१ प्रभु ।

^२ कपि ।

^३ सायक ।

^४ तब ।

^५ संछेप; समस्त ।

चढ़ मम सायक सैल समेता । पठवउँ तोहि जहँ कृपानिकेता ॥
 सुनि कपि मन उपजा अभिमाना । मोरें भार चलिहि किमि बाना ॥
 राम प्रभाव बिचारि बहोरी । बंदि चरन कह कपि कर जोरी ॥
 तव प्रताप उर राखि गोसाईं^१ । जैहौं राम बान की नाईं^२ ॥
 भरत हरषि तव आयेसु दएऊ । पद सिर नाइ चलत कपि भएऊ ॥

दो०—भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार ।

जात सराहत मनहि मन^३ पुनि पुनि पवनकुमार ॥

उहाँ रामु लछिमनहि निहारी । बोले वचन मनुज अनुसारी ॥
 अर्धराति गइ कपि नहि आएउ । राम उठाइ अनुज उर लाएउ ॥
 सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ । बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ ॥
 मम हित लागि तजेहु पितु माता । सहेहु विपिन हिम आतप वाता ॥
 सो अनुरागु कहाँ अब भाई । उठहु न सुनि मम वच बिकलाई ॥
 जौ जनतेउँ बन बंधु बिछोह । पिता वचन मनतेउँ नहि ओह ॥
 जैहौं अवध कवन मुँह^४ लाई । नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥
 निज जननी के एक कुमारा । तात तासु तुम्ह प्रान अधारा ॥
 सौपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी । सब विधि सुखद परम हित जानी ॥
 उतरु काह दैहौं तिहि जाई । उठि किन मोहि सिखावहु भाई ॥

सो०—प्रभु बिलाप^५ सुनि कान बिकल भएवानर निकर ।

आइ गएउ हनुमान जिमि करुना मई बीर रस ॥

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना । अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना ॥
 तुरत बैद तब कीन्हि उपाई । उठि बैठे लछिमनु हरषाई ॥
 हृदयें लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता । हरषे सकल भालु कपि ब्राता ॥
 कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा । जेहि विधि तबहि ताहि लै आवा ॥
 येह वृत्तांत दसानन सुनेऊ । अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ॥

^१ तब प्रताप उर राखि प्रभु जैहौं नाथ तुरंत ।

अस कहि आयेसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत ॥

^२ मन मई जात सराहत ।

^३ मुख ।

^५ प्रलाप ।

ब्याकुल कुंभकरन पहिं गएऊँ^१ । करि बहु जतन जगावत भएऊ ॥
जागा निसिचर देखिअ कैसा । मानहु काल देह धरि बैसा ॥
कुंभकरन बूझा कहुँ भाई । काहें तव मुख रहे सुखाई ॥
कथा कही सब तेहि अभिमानी । जेहि प्रकार सीता हरि आनी ॥
तात कपिन्ह निसिचर सब मारे । महा महा जोधा संधारे ॥

दो०—सुनि दसकंधर बचन तव कुंभकरन बिलखान ।

जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान ॥

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा । अब मोहि आइ जगाएहि काहा ॥
महिष खाइ करि मदिरा पाना । गर्जा वज्राघात समाना ॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा । चला दुर्ग तजि सेन न संग्गा ॥
देखि विभीषण आगें गएऊँ^२ । पद गहि नामु कहत निज भएऊँ^३ ॥
अनुज उठाइ हृदयें तेहिलावाँ^४ । रघुपति भगत जानि मन भावाँ^५ ॥
तात लात रावन मोहिं मारा । कहत परम हित मंत्र बिचारा ॥
सुनु सुत भएउ कालबस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ॥
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन । भएहु तात निसिचर कुल भूषन ॥

दो०—बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर ।

जाहु न निज पर सूझ मोहि भएउँ कालबस बीर ॥

बंधु बचन सुनि चला^६ विभीषन । आएउ जहँ त्रैलोक बिभूषन ॥
नाथ भूधराकार सरीरा । कुंभकरन आवत रनधीरा ॥
एतना कपिन्ह सुना जब काना । किलकिलाइ धाए बलवाना ॥
लिए उपारि^७ बिटप अरु भूधर । कटकटाइ डारहिं ता ऊपर ॥
कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा । करहिं भालु कपि एक एक^८ बारा ॥
मुरै^९ न मन तन टरै^{१०} न टारा^{११} । जिमि गज अर्क फलन्हिको मारा^{१२} ॥
तव मारुत सुत मुठिका हनेऊँ^{१३} । परेउ^{१४} धरनि ब्याकुल सिर धुनेऊँ^{१५} ॥

^१ क्रमशः आवा, बिबिध जतन करि ताहि जगावा ।

^२ सुनु ।

^३ क्रमशः आएउ, परेउ चरम निज नाम सुनाएउ ।

^४ क्रमशः लायो, भायो ।

^५ फिरा ।

^६ उठाइ ।

^७ एकाहिं ।

^८ क्रमशः मुरघो, टरघो,

मारघो तू० : मुरै, टारै, टारै, मारे ।

^९ क्रमशः हन्यो, परघो, धुन्यो ।

पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता । घुमिंत भूतल परउ तुरंता ॥
पुनि नल नीलहि अवनि पछारिसि । जहँ तहँ पटिक पटिक भट डारिसि ॥
चली बलीमुख सेन पराई । अति भय त्रसित न कोउ समुहाई ॥

दो०—अंगदादि कपि धायबस^१ करि समेत सुग्रीव ।

काँख दावि कपिराज कहँ चला अमित बलसीव ॥

मुरछा गइ मारुतसुत जागा । सुग्रीवहि तब खोजन लागा ॥
कपिराजहु^२ कै मुरछा वीती । निबुकि गएउ तेहि मृतक प्रतीती ॥
काटेसि दसन नासिका काना । गर्जि अकास चलेउ तेहि जाना ॥
गहेसि चरन गहि धरनि^३ पछारा । अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आएउ प्रभु पहि बलवाना । जयति जयति जय कृपानिधाना^४ ॥
नाक कान काटे सोइ^५ जानी । फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ॥
सहज भीम पुनि विनु सुति नासा । देखत कपि दल उपजी त्रासा ॥

दो०—जय जय जय रघुवंसमनि धाए कपि दै हूह ।

एकहि बार जो तासु^६ पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ॥

कुंभकरन रन रंग विरुद्धा । सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा ॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई । जनु टीडी गिरि गुहाँ समाई ॥
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा । कोटिन्ह मींजि मिलब महि गर्दा ॥
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा । निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ॥
रन मद मत्त निसाचर दर्पा । बिस्व ग्रसिहि जनु येहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब^७ फिरहिं न फेरे । सूझ न नयन सुनिहि नहि टेरे ॥
कुंभकरन कपि फौज बिडारी^८ । सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई । रिपु अनीक नाना विधि आई ॥

दो०—सुनु सौमित्र कपीस तुम्ह सकल^९ सँभारेहु सेन ।

मे देखीं खल बल दलहि बोले राजिवनयन ॥

^१ मुरुछित ।

^२ सुग्रीवहु ।

^३ गहेउ चरन गहि भूमि पछारा ।

^४ जय जय कारुनिक भगवाना ।

^५ जिअ; सो ।

^६ जो ताहि; ते तासु ।

^७ रन ।

^८ बितारी; बिडारी ।

^९ सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज ।

कर सारंग बिसिख^१ कटि भाथा । मृगपति^२ ठवनि^३ चले रघुनाथा ॥
 प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टकोरा । रिपु दल बधिर भएउ सुनि सोरा ॥
 सत्यसंध छाड़े सर लच्छा । कालसर्प^४ जनु चले सपक्षा ॥
 अति जब चले निसित^५ नाराचा । लगे कटन भट बिकट पिसाचा ॥
 घुमि घुमि घायल महि परही । उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं ॥
 लागत वान जलद^६ जिमि गाजहि । बहुतक देखि कठिन सर भाजहि ॥

दो०—छन महुँ प्रभु के सायकन्ह काटे बिकट पिसाच ।

पुनि रघुपति के त्रोन^७ महुँ प्रबिसे सब नाराच ॥

कुंभकरन मन दीख बिचारी । हनी निमिष महुँ निसिचर^८ धारी ॥
 भएउ क्रुद्ध दासन बलबीरा^९ । कियो^{१०} मृगनायक नाद गँभीरा ॥
 कोपि महीधर लेइ उपारी । डारइ जहँ मरकट भट भारी ॥
 आवत देखि सैल प्रभु भारे । सरन्हि काटि रज सम करि डारे ॥
 पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक । छाड़े अति कराल बहु सायक ॥
 तन महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं । जनु दामिनि घन माँझ समाही ॥
 सोनित स्रवन सोह तन कारे । जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे ॥
 बिकल विलोकि भालु कपि धाए । बिहँसा जबहि निकट भट^{११} आए ॥

दो०—गर्जत धाएउ बेग अति^{१२} कोटि कोटि गहि कीस ।

महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस ॥

भागे भालु बलीमुख जूथा । बृक विलोकि जिमि मेष बरूथा ॥
 राम सेन निज पाछे घाली । चले सकोप महा बलसाली ॥
 खैचि धनुष सत सर संधाने । छूटे तीर सरीर समाने ॥
 लागत सर धावा रिस भरा । कुधर डगमगत डोलति धरा ॥
 लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी । रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी ॥
 धावा वाम बहु गिरि धारी । प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी ॥

^१ साजि कठिन ।

^२ अरि दल दलन ।

^३ जहं तहं चले बिपुल ।

^४ बनद, मेघ ।

^५ रघुबीर निषंग ।

^६ हति छन रंझ निसाचर ।

^७ भा अति क्रुद्धमहा ।

^८ करि ।

^९ कपि ।

^{१०} माहनाद करि गर्जा ।

काटे भुजा सोह खल कैसा । पक्षहीन मंदरगिरि जैसा ॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका । ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका ॥

दो०—करि चिक्कार घोर अति^१ धावा बदन पसारि ।

गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि ॥

विसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ । तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥
सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा^२ । कालत्रोन सजीव जनु आवा ॥
तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा । धर तें भिन्न तासु सिरु कीन्हा ॥
सो सिरु परेउ दसानन आगें । बिकल भएउ जिमि फनिमनि त्यागे ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥
दिन के अंत फिरीं द्वौ अनी । समर भई सुभटन्ह स्रम घनी ॥
बहु बिलाप दसकंधर करई । बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई ॥
मेघनाद तेहि अवसर आवा । कहि बहु कथा पिता समुभावा ॥
देखेहु कालि मोरि मनुसाई । अबहि बहुत का करौं बड़ाई ॥
येहि विधि जल्पत भएउ बिहाना । चहुँ दुआर लागे कपि नाना ॥

दो०—मेघनाद मायारचित^३ रथ चढ़ि गएउ अकास ।

गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि^४ भई कपि कटकहि त्रास ॥

रहे दसहुँ दिसि सायक छाई^५ । मानहुँ मघा मेघ भरि लाई ॥
धरु धरु मारु सुनिहि कपि^६ काना । जो मारै तेहि कोउ न जाना ॥
मारुतसुत अंगद नल नीला । कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन । सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सै^७ जूझइ लागा । सर छाड़इ होइ लागहि नागा ॥
ब्याल पासबस भए खरारी । स्वबंस अनंत एक अबिकारी ॥

दो०—खगपति^८ जासु नाम जपि मुनि काटहि भव पास ।

सो प्रभु आव कि बंध तर^९ व्यापक बिस्व निवास ॥

^१ करि चिक्कार अति घोरतर, करि चिक्कार क अति घोर रव ।

^२ सनमुख सो ।

^३ मायामय, माया रची ।

^४ अट्टहास करि ।

^५ दस बिसि रहे बान नभ छाई ।

^६ सुनिअ धुनि ।

^७ सन ।

^८ गिरिजा ।

^९ जाकर ।

^{१०} सोकि बंधतर आवै ।

व्याकुल कटकु कीन्ह घननादा । पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा ॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा । सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा ॥
बूढ़ जानि सठ छाड़ेउ^१ तोहीं । लागेसि अधम^२ पचारइ मोही ॥
अस कहि तीव्र^३ त्रिसूल चलायो । जामवंत कर गहि सोइ धायो ॥
मारेसि मेघनाद कै छाती । परा धरनि^४ धूमित सुरधाती ॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरावा^५ । महि पछारि निज बलु देखरावा ॥
वर प्रसाद सो मरइ न मारा । तब गहि पद लंका पर डारा ॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठावा^६ । राम समीप सपदि सो आवा^७ ॥

दो०—पन्नगारि खाए सकल छन महँ व्याल बरूथ ।

भए बिगत माया तुरत हरषे बानर जूथ^८ ॥

मेघनाद कै मुरुछा जागी । पितहि बिलोकि लाज अति लागी ॥
तुरत गएउ गिरि बर कंदरा । करौ अजय मख अस मन धरा ॥
सुनि रघुपति अतिसय सुखु माना । बोले अंगदादि कपि नाना ॥
लछिमन संग जाहु सब भाई । करहु विधंस जज्ञ कर जाई ॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही । देखि सभय सुर दुख अति मोही^९ ॥
जामवंत कपिराज^{१०} बिभीषन । सेन समेत रहेहु तीनिउं जन ॥
जौं तेहि आजु बधे विनु आवउँ । तौ रघुपति सेवक न कहावउँ ॥
जौं सत संकर करहि सहाई । तदपि हतौं रघुबीर दोहाई ॥

दो०—बंदि राम पद कमल जुग^{११} चलेउ तुरंत अनंत ।

अंगद नील मयंद नल संग सुभट^{१२} हनुमंत ॥

^१ पतित । ^२ तरल । ^३ भूमि । ^४ फिरायो; देखरायो । ^५ पठायो; आयो ।

^६ खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ ।

माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ ।

^७ कहीं कहीं इस अर्द्धाली के अनन्तर निम्नलिखित अर्द्धाली और हैं —

मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई । जेहि छीजै निसिचर सुनु भाई ॥

^८ सुग्रीव । ^९ रघुपति चरन नाइ सिर । ^{१०} रिषभ ।

जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥
 तब कीसन्ह कृत जज्ञ विधंसा^१ । जब न उठइ तब करहि प्रसंसा ॥
 तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई । लातन्हि हति हति चले पराई ॥
 लै त्रिसूल धावा कपि भागे । आए जहँ रामानुज आगे ॥
 कोपि मरुतसुत अंगद धाए । हति त्रिसूल उर धरनि गिराए ॥
 फिरे बीर रिपु मरइ न मारा । तब धावा करि घोर चिकारा ॥
 आवत देखि क्रुद्ध जनु काला । लछिमन छाड़े त्रिसिख कराला ॥
 देखेसि आवत पवि सम वाना । तुरत भएउ खल अंतरधाना ॥
 विविध वेष धरि करइ लराई । कवहुँक प्रगट कवहुँ दुरि जाई ॥
 देखि अजय रिपु डरपे कीसा । परम क्रुद्ध तब भएउ अहीसा ॥
 लछिमन मन अस मंत्र द्वावा । येहि पापिहि मै बहुत खेलावा^२ ॥
 छाड़ेउ वान माँझ उर लागा । मरती वार कपटु सबु त्यागा ॥

दो०—रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाड़ेसि प्रान ।

धन्य धन्य तब जननी^३ कह अंगद हनुमान ॥

बिनु प्रयास हनुमान उठावा^४ । लंका द्वार राखि तेहि^५ आवा ॥
 तासु मरन सुनि सुर गंधर्वा । चढ़ि विमान आए नभ सर्वा ॥
 बरषि सुमन ददुभी वजावहि । श्री रघुनाथ^६ विमल जसु गावहि ॥
 सुत बध सुना दसानन जबहीं । मुरुछित भएउ परेउ महि तबही ॥
 मंदोदरी रुदन कर भारी । उर ताडत बहु भाँति पुकारी ॥
 नगर लोग सब ब्याकुल सोचा । सकल कहहि दसकंधरु पोचा ॥

दो०—तब लंकेस अनेक बिधि^७ समुझाई सब नारि ।

नस्वर रूप प्रपंच^८ सब देखहु हृदय^९ बिचारि ॥

निसा सिरानि भएउ भिनुसाग । लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा ॥
 सुभट बोलाइ दसानन बोला । रन सन्मुख जाकर मन डोला ॥

^१ कीन्ह कपिन्ह सब ।

^२ अब बध उचित कपिन्ह भय पावा ।

^३ धन्य सक्र जित मातु तब ।

^४ क्रमशः उठायो, आयो ।

^५ पुनि ।

^६ रघुबीर ।

^७ दसकंठ बिबिध बिधि ।

^८ जगत ।

सो अबहीं बरु जाउ पराई । संजुग बिमुख भएँ न भलाई ॥
 निज भुज बल मै बयरु बड़ावा । देहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा ॥
 अस कहि मरुत बेग रथ साजा । बाजे सकल जुभाऊ बाजा ॥
 चलेउ निसाचर कटकु अपारा । चतुरंगिनी अनी बहु धारा ॥
 केहरि नाद बीर सब करहीं । निज निज बल पौरुष उच्चरहीं ॥
 कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा । मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ॥
 हौ मारिहौ भूप द्वौ भाई । अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ॥
 येह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई । धाए करि रघुबीर दोहाई ॥

दो०—दुहुँ दिसि जयजयकार करि निज निज जोरी जानि ।

भिरे बीर इत रघुपतिहि^१ उत रावनहि बखानि ॥

सुभट समर रस दुहुँ दिसि माते । कपि जयसील राम बल ताते ॥
 एक एक सन भिरहि पचारहि । एकन्ह एक मर्दि महि पारहि ॥
 मारहि काटहि धरहि पछारहि । सीस तोरि सीसन्ह सन मारहि ॥
 उदर बिदारहि भुजा उपारहि^२ । गहि पद अवनि पटक भट डारहि^३ ॥
 निसिचर भट महि गाड़हि भालू । ऊपर डारि^३ देहि बहु बालू ।
 बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे । देखिअत विपुल काल जनु क्रुद्धे ॥

दो०—निज दल बिचल बिलोकि तेहि^४ बीस भुजा दस चाप ।

चलेउ दसानन^५ कोपि तब फिरहु फिरहु करि दाप ॥

धाएउ परम क्रुद्ध दसकंधर । सन्मुख चले हूह दै बंदर ॥
 गहि कर पादप उपल पहारा । डारेन्ह तापर एकहि बारा ॥
 लागहि सैल वज्र तनु तासू । खंड खंड होइ फूटहि आसू ॥
 चला न अचल रहा रथ^६ रोपी । रन दुर्मद रावनु अति कोपी ॥
 इत उत भूपटि दपटि कपि जोधा । मर्दइ लाग भएउ अति क्रोधा ॥
 चले पराई भालु कपि नाना । त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना ॥

^१ राम हित; राम कहि ।

^२ उपाटहि; डाटहि ।

^३ डारि; डारि ।

^४ बिचलत देखिसि; बिकल बिलोकि तेहि ।

^५ रथ चढ़ि चलेउ दसानन ।

^६ महा ।

दो०—बिचलत देखि अनीक निज कटि^१ निषंग धनु हाथ ।

लछिमनु चले सरोष तब^२ नाइ राम पद माथ ॥

रे खल का मारसि कपि भालू । मोहि बिलोकु तोर मै कालू ॥
खोजत रहेउं तोहि मुत घाती । आजु निपाति जुड़ावौं छाती ॥
अस कहि छाँड़ेसि बान प्रचंडा । लछिमन किए सकल सत खंडा ॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे^३ । तिल प्रवान करि काटि निवारे ॥
पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा । स्यंदनु भंजि सारथी मारा ॥
सत सत सर मारे दस भाला । गिरि सुगन्ह जनु प्रबिसहिं व्याला ॥
सत सर पुनि मारा उर माहीं । परेउ अवनि^४ तल सुधि कछु नाहीं ॥
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी । छाँड़ेसि ब्रह्म दीन्हि जो सांगी ॥

छं०—सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही ।

पर्यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही ॥

ब्रह्मांड भवन^५ बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी

तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी ॥

दो०—देखत धाएउ^६ पवनसुत बोलत बचन कठोर ।

आवत तेहिं उर महें हतेउ^७ मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा^८ । उठा सँभारि बहुत रिस भरा ॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा । परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥
मुरुछा गइ बहोरि सो जागा । कपि बल बिपुल सराहन लागा ॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही । जौं तै जिअत उठेसि सुरद्रोही ॥
अस कहि लछिमन कहूँ कपि ल्यायो । देखि दसानन बिसमय पायो ॥
कह रघुबीर समुझु जिअें भ्राता । तुम्ह कृतांत भक्षक सुरत्राता ॥
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला । गई गगन सो सकति कराला ॥
धरि सर चाप चलत पुनि भए । रिपु समीप अति आतुर गए^९ ॥

^१निजदल बिकल देखि कटि कसि; निज दल बिकल बिलोकि तेहि कटि ।

^२क्रुद्ध होइ । ^३मारे । ^४धरनि । ^५भुवन । ^६देखि पवन सुत धाएउ ।

^७आवत कपिहि हन्यो तेहिं । ^८परा । ^९पुनि कोदंड बान गहि धाए ।

रिपु सन्मुख अति आतुर आए ॥

छं०—आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदनु सूत हति व्याकुल कियो ।
गिर्यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो ॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो ।
रघुबीरबंधु प्रतापपुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो ॥
दो०—उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जज्ञ ।

जय चाहत रघुपति विमुख^१ सठ हठवस अति अज्ञ ॥

इहाँ विभीषन सब सुधि पाई । सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ॥
नाथ करइ रावन एक जागा । सिद्ध भएँ नहि मरिहि अभागा ॥
पठवहु देव^२ बेगि भट बंदर । करहि बिधंस आव दसकंधर ॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए । हनुमदादि अंगद सब धाए ॥
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका । पैठे रावन भवन असंका ॥
जज्ञ करत जबहीं सो देखा । सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा ॥
रन तें निलज भाजि गृह आवा । इहाँ आइ बक ध्यानु लगावा ॥
अस कहि अंगद मारा^३ लाता । चितव न सठ स्वारथ मनु राता ॥

छं०—नहिं चितव जब कपि कोपि तब^४ गहि दसन्ह लातन्ह मारहीं ।
धरि केस नारि निकाति बाहेर तेउति दीन पुकारहीं ॥
तब उठेउ क्रुद्ध^५ कृतांत सम गहि चरन बानर डारई ।
येहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई ॥

दो०—मख बिधंसि कपि कुसल सब^६ आए, रघुपति पास ।

चलेउ लंकपति^७ क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन के आस ॥

चलत होहिं अति असुभ भयंकर । बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर ॥
चली तमीचर अनी अपारा । बहु गज रथ पदाति असवारा ॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसैं । सलभ समूह^८ अनल कहैं जैसैं ॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा । प्रलय काल के जनु घन घट्टा ॥

^१ राम विरोध विजय चह; बिजय चहत रघुपति विमुख ।

^२ नाथ; इत ।

^३ मारेउ ।

^४ करि कोप कपि ।

^५ कोपि ।

^६ जज्ञ बिधंसि कुसल कपि; जगि बिधंस करि कुसल सब ।

^७ निसाचर ।

रघुपति कोपि वान भरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई ॥
लागत वान बीर चिक्करहीं। घुमि घुमि जहँ तहँ महि परही ॥
स्रवहि सैल जनु निर्भर भारी^१। सोनित सरि कादर भयकारी ॥

दो०—बीर परहि जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।

कादर देखत डरहि तेहि^२ सुभटन्ह के मन चैन ॥

दो०—हृदय बिचारेउ दसबदन^३ भा निसिचर संघार।

मै अकेल कपि भालु बहु माया करउँ अपार ॥

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा अति उर छोभ बिसेखा ॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा ॥
तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। बिहँसि^४ चढ़े कोसलपुर भूपा ॥
रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी ॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी ॥
सो माया रघुबीरहि बाँची। सब काहू मानी करि साँची^५ ॥

छं०—बहु बालिसुत लछिमन कपीस बिलोकि मरकट अपडरे^६।

जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहि खरे ॥

निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।

माया हरी हरि निमिष महुँ हरषो सकल बानर^७ अनी ॥

दो०—बहुरि रामु सब तन चितइ बोले बचन गंभीर।

द्वंद जुद्ध देखहु सकल स्मिति भए अति बीर ॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। विप्र चरन पंकज सिरु नावा ॥
कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाड़ै सर ॥
अनल वान^८ छाड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा ॥
छाड़िसि तीव्र सक्ति खिसिआई। वान संग प्रभु फेरि चलाई^९ ॥
कोटिन्ह चक्र तिसूल पवारइ। विनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ ॥

^१ भारी। ^२ देखि डरहि तहँ; देखत अपडरहि। ^३ रावन हृदय बिचारा।

^४ हरष। ^५ लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची। ^६ बहु राम लछिमन

देखि मरकट भालु मन अति अपडरे। ^७ मरकट। ^८ पावक सर। ^९ पठाई।

निःफल होहिं रावन सर कैसें । खल कें सकल मनोरथ जैसें ॥
तब सत वान सारथी मारेसि । परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ॥
राम कृपा करि सूत उठावा । तब प्रभु परम क्रोध कहूँ पावा ॥

दो०—तानि सरासन^१ सवन लगि छाड़े बिसिख कराल ।

राम मार्गन गन चले लहलहात जनु ब्याल ॥

चले वान सपच्छ जनु उरगा । प्रथमहिं हृत्यो सारथी तुरगा ॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका । गर्जा अति अंतर बलु थाका ॥
तुरत आन रथ चढि खिसिआना । अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना ॥
तब रावन दस सूल चलावा । बाजि चारि महि मारि गिरावा ॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक । खैचि सरासन छाड़े सायक ॥
दस दस वान भाल दस मारे । निसरि गए चले रुधिर पनारे ॥
स्रवत रुधिर धाएउ बलवाना । प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना ॥
तीस तीर रघुवीर पवारे । भुजन्ह समेत सीस महि पारे ॥
काटत ही पुनि भए नवीने । राम बहोरि भुजा सिर छीने ॥
कटत भटिति पुनि नूतन भए । प्रभु बहु बार बाहु सिर हए ॥
पुनि पुनि प्रभु काटत भुजसीसा^२ । अति कौतुकी कोसलाधीसा ॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू । मानहुँ अमित केतु अरु राहू ॥

दो०—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार ।

सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार ॥

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी । बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ॥
गजेंउ मूढ़ महा अभिमानी । धाएउ दसौ सरासन तानी ॥
समर भूमि दसकंधर कोपेउ^३ । वरषि वान रघुपति रथ तोपेउ^३ ॥
दंड एक रथु देखि न परेऊ^४ । जनु निहार महँ दिनकर दुरेऊ^५ ॥
हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा । तब प्रभु कोपि कार्मुक लीन्हा ॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे । ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ॥

^१ तानेउ चाप । ^२ बीसा । ^३ कोप्यो; तोप्यो । ^४ परा; दिन मनि दुरा ।

दो०—पुनि रावन अति कोप करि छाड़िसि^१ सक्ति प्रचंड ।

चली बिभीषन सन्मुख^२ मनहुँ काल कर दंड ॥

तुरत बिभीषनु पाछें मेला । सनमुख रामसहेउ सोइ सेला ॥
देखि बिभीषनु प्रभु स्रम पाएउ^३ । गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धाएउ ॥
देखा स्रमित बिभीषनु भारी । धाएउ हनूमान गिरिधारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता । हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ॥
बुधि बल निसिचरु परे न पारा । तब मारुतसुत प्रभु संभारा^४ ॥
अंतर्धान भएउ छन एका । पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते । जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥
देखे कपिन्ह अमित दससीसा । भागे भालु बिकट भट^५ कीसा ॥

दो०—सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस ।

सजि बिसिषासन एक सर^६ हते सकल दससीस ॥

प्रभु छन महँ माया सब काटी । जिमि रबि उएँ जाहि तम फाटी ॥
भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे । फिरे एक एकन्ह तब टेरे ॥
सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी । भालु कपिन्ह^७ रिस भई घनेरी ॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा । सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा ॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे । सरन्ह मारि घायल कपि कीन्हे ॥
देखि भालुपति निज दल घाता । कोपि माँझ उर मारेसि लाता ॥

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ तें महि परा ।

गहे^८ भालु बीसहु कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा ॥

मुरुछित बहोरि विलोकि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो ।

निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो ॥

दो०—गइ मुरुछा तब^९ भालु कपि सब आए प्रभु पास ।

निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास ॥

^१ पुनि दस कंठ क्रुद्ध होइ छाड़ी ।

^२ सन्मुख चली बिभीषनहि ।

^३ पायो; धायो । ^४ पार्थो; संभार्थो ।

^५ जहं, तहं भजे भालु अह ।

^६ सजि सारंग एक सर ; खँचि सरासन लवन लगि ।

^७ भालुकपि । ^८ गहि । ^९ मुरुछा बिगत; गै मुरुछा तब ।

तेहीं निसि सीता पहि जाई । त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई ॥
 सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी । सीता उर भइ त्रास घनेरी ॥
 मुख मलीन उपजी मन चिंता । त्रिजटा सन बोलीं तब सीता ॥
 जेहि कृत कपट कनकमृग भूटा । अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा ॥
 ऐसेहु दुख जो राखु मम प्राना । सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥
 बहु बिधि कर' बिलाप जानकी । करि करि सुरति कृपानिधान की ॥
 कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी । उर सर लागत मरइ सुरारी ॥
 प्रभु ता तें उर हतै न तेही । येहि कें हृदयँ बसहि बँदेही ॥

दो०—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान ।

तब रावनहि' हृदय मुहुँ मरिहहि रामु सुजान ॥

अस कहि बहुत भाँति समुभाई । पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई ॥
 राम सुभाउ सुमिरि बँदेही । उपजी बिरह बिथा अति तेही ॥
 जब अति भएउ बिरह उर दाह । फरकेउ बाम नयन अरु बाह ॥
 इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा । निज सारथि सन खीभन लागा ॥
 सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही । धिग धिग अधम मंदमति तोही ॥
 तेहि पद गहि बहु बिधि समुभावा । भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा ॥
 सुनि आगवनु दसानन केरा । कपि दल खरभर भएउ घनेरा ॥
 जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी । धाए कटकटाइ भट भारी ॥

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार ।

अंतरहित होइ निमिष मुहुँ कृत माया बिस्तार ॥

मरइ न रिपु स्रम भएउ विसेषा । राम बिभीषन तन तब देखा ॥
 नाभीकुंड सुधा^१ बस जा कें । नाथ जिअत रावनु बल ताकें ॥
 सुनत बिभीषन बचन कृपाला । हरषि गहे कर बान कराला ॥
 सायक एक नाभिसर सोखा । अपर लगे भुज सिर करि रोषा ॥
 लै सिर बाहु चले नाराचा । सिर भुज हीन रुंड महि नाचा ॥
 धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा । तब सर हति प्रभु कृत जुग^२खंडा ॥

^१ करत; करति ।

^२ रावन कहूँ; रावन के ।

^३ नाभीकुंड पियूष ।

^४ डुइ ।

गर्जेउ मरत घोर रव भारी । कहाँ रामु रन हतौं पचारी ॥
मंदोदरि आगे भुज सीसा । धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥

दो०—कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद ।

हरषे बानर भालु सब^१ जय सुखधाम मुकुंद ॥

पति सिर देखत मंदोदरी । मुरुछित बिकल धरनि खसि परी ॥
जुबति बृंद रोवति उठि धाई । तेहि उठाइ रावन पहि आई ॥
पति गति देखि ते करहि पुकारा । छुटे चिकुर न सरीर संभारा^२ ॥
उर ताड़ना करहि विधि नाना । रोवत करहि प्रताप बखाना ॥
तव बल नाथ डोल नित धरनी । तेजहीन पावक ससि तरनी ॥
भुज बल जितेहु काल जम साईं । आजु परेहु अनाथ की नाईं ॥
काल बिबस पति कहा न माना । अग जग नाथु मनुज करि जाना ॥
रुदनु करत बिलोकि^३ सब नारी । गएउ विभीषनु मन दुख भारी ॥
बंधु दसा देखत^४ दुख कीन्हा । राम अनुज कहूं आयेसु दीन्हा ॥
लछिमन जाइ ताहि^५ समुभाएउ^६ । बहुरि विभीषन प्रभु पहि आएउ ॥
कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका । करहु क्रिया परिहरि सब सोका ॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयेसु मानी । विधिवत देस काल जिअं जानी ॥

दो०—मय तनयादिक नारि सब^७ देइ तिलांजलि ताहि ।

भवन गई रघुबीर^८ गुन गन बरनत मन माहि ॥

आइ बिभीषन पुनि सिर नाएउ^९ । कृपासिंधु तब अनुज बोलाएउ ॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथी । सारेहु तिलकु कहेउ रघुनाथा ॥
पिता बचन में नगर न आवौं । आपु सरिस कपि अनुज पठावौं ॥
तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना । कीन्ही जाइ तिलक की रचना ॥
सादर सिंहासन बैठारी । तिलक कीन्ह^{१०} अस्तुति अनुसारी ॥
जोरि पानि सबहीं सिर नाए । सहित बिभीषन प्रभु पहि आए ॥

^१ भालु कीस सब सरपे ।

^२ छूटे कच नहिं बहुष संभारा ।

^३ देखी ।

^४ बिलोकि ।

^५ तब प्रभु अनुजहिं ।

^६ तेहि बहु बिधि ।

^७ क्रमशः समुभायो, आयो ।

^८ मंदोदरी आवि सब ।

^९ रघुपति ।

^{१०} क्रमशः नायो, बोलायो ।

^{११} सारि ।

दो०—सुनत राम के बचन मृदु^१ नहिं अघाहिं कपि पुंज ।

बारहिं बार बिलोकि मुख^२ गहहिं सकल पद कंज ॥

पुनि प्रभु बोलि लिएउ हनुमाना । लंका जाहु कहेउ भगवाना ॥
समाचार जनकिहि सुनावहु । तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु ॥
तव हनुमंत नगर महुँ आए । सुनि निसिचरी निसाचर धाए ॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही । जनकसुता दिखाइ पुनि^३ दीन्ही ॥
दूरहिं ते प्रनामु कपि कीन्ही । रघुपति दूत जानकी चीन्ही ॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता । कुसल अनुज कपि सेन समेता ॥
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा । मातु समर जीत्यौ दससीसा ॥
अबिचल राजु बिभीषनु पावा^४ । सुनि कपि बचन हरष उर छावा ॥

छं०—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा ।

का देउं तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा ॥

सुनु मात मै पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं ।

रन जीति रिपु दल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं ॥

दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदय बसहुँ हनुमंत ।

सानुकूल रघुवंस^५ मनि^६ रहहु समेत अनंत ॥

अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता । देखौ नयन स्याम मृदु गाता ॥
तव हनुमान राम पहिं जाई । जनकसुता कै कुसल सुनाई ॥
सुनि बानी पतंग कुलभूषन^७ । बोलि लिए जुबराज बिभीषन ॥
मारुतसुत के संग सिधावहु । सादर जनकसुतहिं लै आवहु ॥
तुरतहिं सकल गए जहँ सीता । सेवहिं सब निसिचरी बिनीता ॥
बेगि बिभीषन तिन्हहिं सिखावा^८ । सादर तिन्ह सीतहिं अन्हवावा^९ ॥
दिब्य वसन^{१०} भूषन पहिराए । सिबिका रुचिर साजि पुनि लाए ॥

^१ प्रभु के बचन स्रवन सुनि ।

^२ बार बार सिर नार्वाहिं ।

^३ तिन्ह ।

^४ क्रमशः पायो, छायो ^५ कोसल पति ।

^६ सुनि संदेस भानुकुल भूषन ।

^७ क्रमशः सिखायो, तिन्ह बहु बिधि मंजन करवायो, सिखाए । सादर

तिन्ह सीतहिं अन्हवाए ।

^८ बह्न प्रकार ।

तापर हरषि चढ़ी बैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥
 देखन कीस भालु^१ सब आए । रक्षक कोपि निवारन धाए ॥
 कह रघुबीर कहा मम मानहु । सीतहि सखा पयादे आनहु ॥
 देखहि^२ कपि जननी की नाई । बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं ॥
 सीता प्रथम अनल महुँ राखी । प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी ॥

दो०—तेहि कारन करुनायतन^३ कहे कछुक दुर्बाद ।

सुनत जातुधानीं सकल^४ लागीं करै बिषाद ॥

प्रभु के वचन सीस धरि सीता । बोलीं मन क्रम वचन पुनीता ॥
 लछिमन होहु धरम के नेगी^५ । पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥
 देखि राम रुख लछिमन धाए । प्रगटि कृसानु^६ काठ बहु लाए ॥
 प्रबल अनल बिलोकि^७ बैदेही । हृदयें हरष नहिं भय कछु तेही ॥
 जाँ मन बच क्रम मम उर माहीं । तजि रघुबीर आन गति नाही ॥
 तौ कृसानु सब कै गति जाना । मोकहुँ होहु श्रीखंड समाना ॥

छं०—श्रीखंड सम पावक प्रबेसु कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।

जयकोसलेस महेस बंदति चरन रति अति निर्मली ॥

प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे ।

प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहि खरे ॥

दो०—श्री जानकी^८ समेत प्रभु सोभा अमित अपार ।

देखत हरषे भालु कपि^९ जय रघुपति सुख सार ॥

तब रघुपति अनुसासन पाई । मातलि चलेउ चरन सिरु नाई ॥
 आए देव सदा स्वारथी । बचन कहहिं जनु परमारथी ॥
 दीनबंधु दयाल रघुराया । देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥
 भव प्रवाह संतत हम परे । अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे ॥

^१ भालु कीस ।

^२ देखहुँ ।

^३ करुनानिधि ।

^४ सब ।

^५ निति; जुति; जुत; नय ।

^६ पावक प्रगति ।

^७ पावक प्रबल देखि ।

^८ जनकसुता ।

^९ देखि भालु कपि हरषे ।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए । हरषि उठे सब प्रभु पहि आए ॥
सुधा वृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर । जिए भालु कपि नहि रजनीचर ॥

दो०—सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान ।

देखि सुअवसर राम^१ पहि आए संभु सुजान ॥

करि बिनती जव संभु सिधाए । तब प्रभु निकट बिभीषन आए ॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी । बिनय सुनहु प्रभु सारंगपानी ॥
सकुल सदल प्रभु रावनु मारा^२ । पावन जसु त्रिभुवन बिस्तारा ॥
दीन मलीन हीनमति जाती । मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ॥
अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै । मज्जन करिअ समर स्रम छोजै ॥
देखि कोस मंदिर संपदा । देहु कृपाल कपिन्ह कहूँ मुदा ॥
सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ । पुनि मोहि सहित अवधपुर^३ जाइअ ॥
सुनत बचन मृदु दीन दयाला । सजल भए द्वौ नयन बिसाला ॥

दो०—तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भात ।

दसा भरत कै सुमिरि^४ मोहि निमिष कल्प सम जात ॥

सुनत बिभीषन बचन राम के । हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥
बहुरि बिभीषन भवन सिधाए । मनि गन बसन बिमान भराए ॥
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा । हँसि करि कृपासिधु तब भाषा ॥
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन । गगन जाइ बरषहु पट भूषन ॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबहीं । बरषि दिए मनि अंबर सबही ॥
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं । मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं ॥
चितइ सबन्ह पर कीन्ही दाया । बोले मृदुल बचन रघुराया ॥
तुम्हरे बल मैं रावनु मारा^५ । तिलकु बिभीषन कहूँ पुनि सारा^६ ॥
निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू । सुमिरेहु मोहि डरहु^७ जनि काहूँ ॥
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर । जोरि पानि बोले सब सादर ॥

^१ प्रभु । ^२ क्रमशः मारघो; बिस्तारघो ।

^३ प्रभु ।

^४ भरत दसा

सुमिरत मोहि । ^५ क्रमशः मारघो, सारघो ।

^६ डरपहु; डरेहु; डरपेहु ।

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा । हमरे होत बचन सुनि मोहा ॥
दीन जानि कपि किए सनाथा । तुम्ह त्रैलोक ईस रघुराथा ॥

दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि ।

हरष बिषाद समेत तब चले बिनय बहु भाखि^१ ॥

जामवंत कपिराज नल अंगदादि^२ हनुमान ।

सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान ॥

कहि न सकहि कछु प्रेमबस भरि भरि लोचन बारि ।

सन्मुख चितवहि राम तन नयन निमेष निवारि ॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई । लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई ॥

मन महुँ बिप्र चरन सिरु नादा^३ । उत्तर दिसिहि बिमान चलावा ॥

चलत बिमान कोलाहलु होई । जय रघुबीर कहै सब कोई ॥

सिधासन अति उच्च मनोहर । श्री समेत प्रभु बैठे तापर ॥

रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर । कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर ॥

कह रघुबीर देखु रन सीता । लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता ॥

हनुमान अंगद के मारे । रन महि परे निसाचर भारे ॥

कुंभकरन रावन द्वौ भाई । इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई ॥

दो०—यह देखु सुंदर सेतु जहँ^४ थापेउँ सिव सुखधाम ।

सीता सहित कृपायतन^५ संभुहि कीन्ह प्रनाम ॥

जहँ जहँ कृपासिंधु^६ बन कीन्ह बास बिस्राम ।

सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम ॥

सपदि^७ बिमान तहाँ चलि आवा । दंडकवन जहँ परम सुहावा ॥

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा । चित्रकूट आएउ जगदीसा ॥

तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा । चला बिमानु तहाँ ते चोखा ॥

बहुरि राम जानकिहि देखाई । जमुना कलि मल हरनि सोहाई ॥

^१ सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि । ^२ कपिपति नोल रीछपति अंगद नल ।

^३ क्रमशः नायो, चलायो । ^४ इहाँ सेतु बांध्यों अरु; देखहु सुंदर सेतु एह ।

^५ कृपानिधि । ^६ करुणसिंधु । ^७ तुरत ।

पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनामु करु सीता ॥
तीरथपति पुनि देखि प्रयागा । देखत^१ जन्म कोटि अघ भागा ॥

दो०—तब रघुनायक श्री सहित अवधहि कीन्ह^२ प्रनाम ।

सजल बिलोचन पुलक तनु^३ पुनि पुनि हरषित राम ॥

प्रभु हनुमंतहि कहा बुभाई । धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु । समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥
तुरत पवनसुत गवनत भएऊ । तब प्रभु भरद्वाज पहिं गएऊ ॥
मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी । चढ़ि विमान प्रभु चले बहोरी ॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु^४ आए । नाव नाव कह लोग बुलाए ॥
तब सीता पूजी सुरसरी । बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ॥
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा । सुदरि तब अहिवात अभंगा ॥
सुनत गुहा धाएउ प्रेमाकुल । आएउ निकट परम सुख संकुल ॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही । परेउ अविन तन सुधि नहिं तेही ॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियो उर लाई ॥

दो०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग ।

जहें तहें सोचहि नारि नर कृततनु राम बियोग ॥

भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहि बार ।

जानि सगुन मन हरष अति लागे करन^५ बिचार ॥

रहेउ^६ एक दिनु अवधि अधारा । समुभत मन दुख भएउ अपारा ॥
कारन कवन नाथ नहिं आएउ । जानि कुटिल किधौं मोहि बिसराएउ ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी । राम पदारविंदु अनुरागी ॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा । ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा ॥
जौ करनी समुभै प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कलप सत कोरी ॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ॥

^१ निरखत ।

पुलकित तन ।

^२ सीता सहित अवध कहें कीन्ह कृपाल ।

^३ सुन्यौ प्रभु; सुनाहि ।

^४ करे ।

^५ सजल नयत

^६ रहा; रहे ।

मोरें जिअँ भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई ॥
बीते अवधि रहहिं जौ प्राना । अधम कवन जग मोहिं समाना ॥

दो०—राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत ।

बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गएउ जनु पोत ॥

मन महँ बहुत भाँति सुख मानी । बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी ॥
जासु बिरह सोचहु दिनु राती । रटहु निरंतर गुन गन पाँती ॥
रघुकुलतिलक सो जन^१ सुखदाता । आएउ कुसल देव मुनि त्राता ॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत । सीता अनुज सहित^२ पुर^३ आवत ॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा । तृषावंत जिमि पाइ^४ पियूषा ॥
को तुम्ह तात कहाँ तें आए । मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥
मारुतसुत मै कपि हनुमाना । नाम मोर सुनु कृपानिधाना ॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर । सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर ॥
मिलत प्रेमु नहिं हृदयँ समाता । नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते । मिले आजु मोहि रामु पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता । तो कहूँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥
तब हनुमंत नाइ पद माथा । कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥

सो०—भरत चरन सिरु नाइ तुरति गएउ कपि राम पहिं ।

कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ^५ प्रभु जान चढ़ि ॥

हरषि भरत कोसलपुर आए । समाचार सब गुरहिं सुनाए ॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई । आवत नगर कुसल रघुराई ॥
सुनत सकल जननी उठि धाई । कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए । नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥
जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं । बाल बृद्ध कहूँ संग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहूँ बूझहि भाई । तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥

दो०—हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत ।

चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपा निकेत ॥

^१ सुजन ।

^२ सहित अनुज ।

^३ प्रभु ।

^४ पाव ।

^५ चले ।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर । कपिन्ह देखावत नगर मनोहर ॥
 सुनु कपीस अंगद लंकेसा । पावन पुरी रुचिर येह देसा ॥
 जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरयू पावनि ॥
 जा मज्जन ते बिनिहि प्रयासा । मम समीप नर पावहि वासा ॥
 अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी । मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
 हरषे सब कपि सुनि प्रभु वानी । धन्य अवध जो राम बखानी ॥

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान ।

नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहि जाहु ।

प्रेरित राम चलेउ सो हरष बिरह अति ताहु ॥

आए भरत संग सब लोग । कृस तन श्री रघुवीर बियोगा ॥

वामदेव बसिष्ठ मुनिनायक । देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥

धाइ धरे^१ गुर चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥

भेंटि कुसल बूझी मुनिराया । हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया ॥

सकल द्विजन्ह मिलि नाएउ माथा । धरम धुरंधर रघुकुल नाथा ॥

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज ॥

परे भूमि नहि उठत उठाए । बर^२ करि कृपासिंधु उर लाए ॥

स्यामल गात रोम भए ठाढ़े । नव राजीव नयन जल बाढ़े ॥

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ ।

लछिमन भरत मिले तब^३ परम प्रेम दोउ भाइ ॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेटे । दुसह बिरह संभव दुख मेटे ॥

सीता चरन भरत सिरु नावा । अनुज समेत परम सुख पावा ॥

प्रभु बिलोकि हरषे पुरवासी । जनित बियोग बिपति सब नासी ॥

छन महँ^४ सबहि मिले भगवाना । उमा मरम येह काहु न जाना ॥

येहि विधि सबहि सुखी करि रामा । आगे चले सील गुन धामा ॥

कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि वच्छ जनु धेनु लवाई ॥

दो०—भेंटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि ।

रामहि मिलत कैकई हृदयें बहुत सकुचानि ॥

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही । चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ॥
 देहिं असीस बृष्णि कुसलाता । होउ^१ अचल तुम्हार अहिवाता ॥
 सब रघुपति मुख कमल बिलोकहि । मंगल जानि नयन जल रोकहि ॥
 कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहि । चितवत कृपासिधु रनधीरहि ॥
 हृदयें बिचारति बारहि बारा । कवन भाँति लंकापति मारा ॥
 अति सुकुमार जुगल मम बारे । निसिचर सुभट महा बल भारे ॥

दो०—लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मानु ।

परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गानु ॥

लंकापति कपीस नल नीला । जामवंत अंगद सुभ सीला ॥
 हनुमदादि सब बानर बीरा । धरे मनोहर मनुज सरीरा ॥
 भरत सनेहु सील व्रत नेमा । सादर सब वरनहि अति प्रेमा ॥
 पुनि रघुपति सब सखा बोलाए । मुनि पद लागहु^२ सकल सिखाए ॥
 गुर बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे । इन्हकी कृपा दनुज रन मारे ॥
 ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे । भए समर सागर कहूँ बेरे ॥
 मम हित लागि जन्म इन्ह हारे । भरतहुँ तें मोहि अधिक पिआरे ॥
 सुनि प्रभु बचन मगन सब भए । निमिषि निमिषि उपजत सुख नए ॥

दो०—कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नाएउ माथ ।

आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥

प्रभु जानी कैकई लजानी । प्रथम तासु गृह गए भवानी ॥
 ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा । पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा ॥
 कृपासिधु तब^३ मंदिर गए । पुर नर नारि सुखी सब भए^४ ॥
 गुर बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई । आज सुघरी सुदिन सुभदाई^५ ॥

^१ होइ; होहु ।

^२ लागन कुसल ।

^३ जब ।

^४ क्रमशः गएऊ, भएऊ ।

^५ समुदाई; सुखवाई ।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचंद्र बैठहि सिंघासन ॥
मनि बसिष्ठ के बचन सुहाए । सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए ॥

दो०—तत्र मुनि कहेउ समंत्र सन सुनत चलेउ सिर नाई^१ ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रव्य मँगाइ ।
हरष समेत बसिष्ठ पद पुनि सिरु नाएउ आइ ॥

राम कहा सेवकन्ह बोलाई । प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ॥
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए । सुग्रीवादि तुरत^२ अन्हवाए ॥
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे । निज कर राम जटा निरुआरे ॥
अन्हवाए प्रभु तीनिउँ भाई । भगत बछल कृपाल रघुराई ॥
पुनि निज जटा राम बिचराए । गुर अनुसासन माँगि नहाए ॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अंग अनंग कोटि छबि लाजे^३ ॥

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जुन तुरत कराइ ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ ॥
राम बाम दिसि सोभित रमा रूप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि ॥

प्रभु बिलोकि मुनि मनु अनुरागा । तुरत दिव्य सिंघासन माँगा ॥
रवि सम तेज सो बरनि न जाई । बैठे रामु द्विजन्ह सिर नाई ॥
जनकसुता समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ॥
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयेसु दीन्हा ॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार बार आरती उतारीं ॥
बिप्रन्ह दान बिबिध विधि दीन्हे । जाचक सकल अजाचक कीन्हे ॥
सिंघासन पर त्रिभुवन साई । देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई ॥

दो०—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार ।
अंतरधान भए पुनि गए ब्रह्म आगार ॥

^१ हरषाई ।

^२ सुग्रीवादि तुरंत; सुग्रीवादि प्रथमहि ।

^३ देखि सत लाजे; कोटि छबि छाजे ।

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कैलास ।
 तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास ॥
 ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति ।
 जात न जाने देवस तिन्ह^१ गए मास षट बीति ॥

तब रघुपति सब सखा बोलाए । आइ सबन्हि सादर सिर नाए ॥
 परम प्रीति समीप बैठारे । भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
 तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई । मुख पर केहि बिधि करौ बड़ाई ॥
 ता तें मोहिं तुम्ह अति प्रिय लागे । मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
 अनुज राज संपति बैदेही । देह गेह परिवार सनेही ॥
 सब मम प्रिय नहि तुम्हहि समाना । मृषा न कहौ मोर येह बाना ॥

दो०—अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।

सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम ॥

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए । को हम कहाँ बिसरि तन गए ॥
 एक टक रहे जोरि कर आगे । सकहि न कछु कहि अति अनुरागे ॥
 परम प्रेमु तिन्ह कर प्रभु देखा । कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेषा ॥
 प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं । पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं ॥
 तब प्रभु भूषन बसन मँगाए । नाना रंग अनूप सुहाए ॥
 सुग्रीवहि प्रथमहि पहिराए । बसन भरत निज हाथ बनाए ॥
 प्रभु प्रेरित लछिमनु पहिराए । लंकापति रघुपति मन भाए ॥
 अंगद बैठ रहा नहिं डोला । प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला ॥

दो०—जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ ।

हिय धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ ॥

तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि ।

अति बिनीत बोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि ॥

मरती बेर नाथ मोहि बाली । गएउ तुम्हारेहि कोछे घाली ॥
 मोरे तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥

तुम्हड़ बिचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि भवन काजु मम काहा ॥
बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना । राखहु सरन नाथ^१ जन दीना ॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहौ । पद पंकज बिलोकि भव तरिहौ ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही । अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ॥

दो०—अंगन बचन बिनीत सुनि रघुपति कहुनासीव ।

प्रभु उठाइ उर लाएउ सजल नयन राजीव ॥

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ ।

बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ ॥

भरत अनुज सौमित्रि समेता । पठवन चले भगत कृत चेता ॥
अंगद हृदयँ प्रेमु नहिं थोरा । फिर फिर चितव राम की ओरा ॥
बार बार कर दंड प्रनामा । मन अस रहन कहहि मोहि रामा ॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी । सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी ॥
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी । चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी ॥
अति आदर सब कवि पहुँचाए । भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥
तब सुग्रीव चरन गहि नाना । भाँति बिनय कीन्ही^२ हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा । पुनि तब चरन देखिहौ देवा ॥
पुन्य पुज तुम्ह पवनकुमारा । सेवहु जाइ कृपाआगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरन्ता । अंगद कहइ सुनहु हनुमन्ता ॥

दो०—कहेहु दंडवत प्रभु सै^३ तुम्हहि कहौ कर जोरि ।

बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि ॥

अस कहि चलेउ बालिसुत फिर आएउ हनुमन्त ।

तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत ॥

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा । दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू । मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता । सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी । परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥

^१ जानि ।

^२ कीन्हे ।

^३ सन ।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा । प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा ॥
 रघुपति चरित देखि पुरबासी । पुनि पुनि कहहि धन्य सुखरासी ॥
 रामराज बैठे त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ॥
 बयर न कर काहू सन कोई । राम प्रताप बिषमता खोई ॥

दो०—बरनास्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।

चलहि सदा पावहि सुखहि^१ महि भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहि काहुहि व्यापा ॥
 सब नर करहि परसपर प्रीती । चलहि स्वधर्म निरत श्रुति रीती^२ ॥
 चारिउ चरन धर्म जग माही । पूरि रहा सपनेहुँ अध नाही ॥
 अल्प मृत्यु नहि कवनिउँ पीरा । सब सुदर सब बिरुज सरीरा ॥
 नहि दग्धि कोउ दुह्ली न दीना । नहि कोउ अबुध न लक्षनहीना ॥
 सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी । सब कृतज्ञ नहि कपट सयानी ॥
 भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
 राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
 सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेवक नर नारी ॥
 एक नारि ब्रत रत सब भारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जीतहु मनहि सुनिअ अस^३ रामचन्द्र कें राज ॥

कोटिन्ह वाजिमेघ प्रभु कीन्हे । दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ॥
 पति अनुकूल सदा रह सीता । सोभाखानि सुसील बिनीता ॥
 जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी । विपुल सकल सेवा विधि गुनी ॥
 निज कर गृह परिचरजा करई । रामचंद्र आयेसु अनुसरई ॥
 जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवाविधि जानइ ॥
 कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवइ सवन्हि मान मद नाहीं ॥

दो०—जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ ।

राम पदारबिंद रति करति मुभावहि खोइ ॥

^१ सुख ।

^२ नीती ।

^३ अस सुनिअ जग ।

सेवहिं सानुकूल सब भाई । राम चरन रति अति अधिकाई ॥
 प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं । कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं ॥
 रामु करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
 हरषित रहहिं नगर के लोगा । करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ॥
 अह्निसि बिधिहि मनावत रहहीं । श्री रघुवीर चरन रति चहहीं ॥
 दुइ सुत सुदर सीता जाए । लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ॥
 द्वौ बिजई बिनई गुनमंदिर । हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुदर ॥
 दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह करे । भए रूप गुन सील घनेरे ॥
 दो०—ज्ञान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार ।

सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार ॥

प्रात काल सरऊ^१ करि मज्जन । बैठहि सभा संग द्विज सज्जन ॥
 बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं । सुनहि राम जद्यपि सब जानहिं ॥
 अनुजन्ह संजुत भोजनु करही । देखि सकल जननी सुख भरहीं ॥
 भरत सत्रुहन दूनौ भाई । सहित पवनसुत उपवन जाई ॥
 बूझहि बैठि राम गुनगाहा । कह हनुमान सुमति अवगाहा ॥
 सुनत बिमल गुन अति सूख पावहि । बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहि ॥
 सब के गृह गृह होहि^२ पुराना । राम चरित पावन बिधि नाना ॥
 नर अरु नारि राम गुन गानहिं । करहिं दिवस निसि जात न जानहिं ॥

दो०—अवधपुरी वासिन्ह कर सुख संपदा समाज ।

सहस सेस नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज ॥

नारदादि सनकादि मुनीसा । दरसन लागि कोसलाधीसा ।
 दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं । देखि नगर बिराग बिसरावहिं ॥
 धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रवि ससि दुति निंदत ॥
 बहु मनि रचित भरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं ॥
 सुमन बाटिका सबहिं लगाईं । बिबिधि भाँति करि जतन बनाईं ॥
 मोर हंस सारस पारावत । भवनन्ह पर सोभा अति पावत ॥

^१ सरजू ।

^२ गृह होहि बेद ।

जहँ तहँ देखहि^१ निज परिछाही । बहु बिधि कूजहि नृत्य कराहीं ॥
राज दुआर सकल बिधि चारू । बीथी चौहट रुचिर बजारू ॥

दो०—उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर ।

बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर ॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा ॥
पनिघट परम मनोहर नाना । तहाँ न पुरुष करहि अस्नाना ॥
राजघाट सब बिधि सुदर बर । मज्जहि तहाँ बरन चारिउ नर ॥
बीर तीर देवन्ह के मंदिर । चहुँ दिसि तिन्हकी^२ उपवन सुदर ॥
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी । बसहिं^३ ज्ञानरत मुनि संन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई । बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥
पुर सोभा कछु बरनि न जाई । बाहेर नगर परम रुचिराई ॥
देखत पुरी अखिल अध भागा । बन उपवन बापिका तड़ागा ॥

दो०—राम^४ नाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ ।

अनिमादिक सुख संपदा रही अवध सब छाइ ॥

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा । संग परम प्रिय पवनकुमारा ॥
सुंदर उपवन देखन गए । सब तरु कुसुमित पल्लव नए ॥
जानि समय सनकादिक आए । तेजपुज गुन सील सुहाए ॥
ब्रह्मानंद सदा लयलीना । देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा । समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
आसा बसन व्यसन येह तिन्हही । रघुपति चरित होहिं तहँ सुनही ॥
तहाँ रहे सनकादि भवानी । जहँ घटसंभव मुनि बर ज्ञानी ॥
राम कथा मुनिवर बहु^५ बरनी । ज्ञान जोति^६ पावक जिमि अरनी ॥

दो०—देखि राम मुनि आवत हरखि दंडवत कीन्ह ।

स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहुँ दीन्ह ॥

कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई । सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छवि अतुल बिलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ॥

^१ देखत; निरखहि ।

^४ रमानाथ ।

^२ तिन्हके; जिन्हकी ।

^५ मुनि बहु बिधि ।

^३ सर्बाहि ।

^६ ज्ञानजोनि; ज्ञानजोग ।

एक टक रहे निमेष न लावहिं । प्रभु कर जोरे सीस नवावहि ।
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे । परम मनोहर बचन उचारे ॥
सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी । पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी ॥

दो०—बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ ।

ब्रह्मभवन सनकादि गे अति अभीष्ट बर पाइ ॥

पुनि रघुपति निज मंदिर गए । येहि विधि चरित करत नित नए ॥
नित नव चरित देखि मुनि जाही । ब्रह्मलोक सब कथा कहाही ॥
एक बार रघुनाथ बोलाए । गुरु द्विज पुरबासी सब आए ॥
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन^१ । बोले बचन भगत भव^२ भंजन ॥
जौं अनीति कछु भाषौ भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥
बड़े भाग मानुष तनु पावा । सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्ह गावा ॥
येहि तन कर फल बिषय न भाई । स्वर्ग^३ स्वल्प अंत दुखदाई ॥
जौ परलोक इहाँ सुख चहहू । सुनि मम बचन हृदयें दृढ़ गहहू ॥
सुलभ सुखद मारग येह भाई । भगति मोरि पुरान श्रुति गाई ॥
सुनत सुधा सम बचन राम के । गहे सबनि पद कृपाधाम के ॥
जननि जनक गुरु बंधु हमारे । कृपानिधान प्राण ते प्यारे ॥
अस^४ सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ । मातु पिता स्वारथ रत ओऊ ॥
सब के बचन प्रेम रस साने । सुनि रघुनाथ हृदयें हरषाने ॥
निज निज गृह गए आयेसु पाई । बरनत प्रभु बतकही सुहाई ॥

दो०—उमा अवधवासी नर नारि कृतारथ रूप ।

ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप ॥

हनुमान भरतादिक भ्राता । संग लिए सेवक सुखदाता ॥
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए । गज रथ तुरग में गावत भए ॥
देखि कृपा करि सकल सराहे । दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ^५ चाहे ॥
हरन सकल स्त्रम प्रभु स्त्रम पाई । गए जहाँ सीतल अवैराई ॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई । बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥
मारुतसुत तब मारुत करई । पुलक बपुष , लोचन जल भरई ॥

^१ सदसि अनुज मुनि ।

^२ भय ।

^३ असि ।

^४ जेइ ।

दो०—तेहि अवसर मुनि नारद आए करतल बीन ।

गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन ॥

दो०—प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम ।

सोभासिंधु हृदयें धरि गए जहाँ बिधि धाम ॥

रामचरित जे सुनत अघाहीं । रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं ॥

भवसागर चह पार जो पावा । राम कथा ता कहूँ दढ नावा ॥

यह सुभ संभु उमा संबादा । सुख संपादन समन विषादा ॥

भव भंजन गंजन संदेहा । जन रंजन सज्जन प्रिय येहा ॥

राम उपासक जे जग माहीं । येहि सम प्रिय तिन्हकें कछु नाहीं ॥

रघुपति कृपाँ जथामति गावा । मे यह पावन चरित सुहावा ॥

येहि कलिकाल न साधन दूजा । जोग जज्ञ जप तप वन पूजा ॥

रामहि सुमिरिअ माइअ रामहि । संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥

छं०—पाई न केहि गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना ।

गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥

आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अधरूप जे ।

कहि नाम वारक तेऽपि पावन होहि राम नमामि ते ॥

रघुबंसभूषन चरित येह नर कहहि सुनिहि जे गावहीं ।

कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीं ॥

सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरे ।

दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुपति^१ हरे ॥

सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो ।

सो एक राम अकाम हित निर्वाणपद सम आन को ॥

जाकी कृपा लव लेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ ।

पाएउ परम बिस्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥

दो०—मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर ।

अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर ॥

^१ रघुबर ।

शब्दकोश

अ

अँगवाना—अपने सिर लेना, सहना ।
अंचल रोपना—हाथ फैलाकर विनय करना ।

अँथवना—अस्त होना, डूबना, मरना ।

अवक—आँख, नेत्र ।

अँवराई—आम का बाग, उद्यान ।

अँवारी—(अ० अमारी) अंबारी, हाथी की पीठ पर रखने का छज्जेदार हौदा ।

अकनना—(स० आकर्णन) कर्णगोचर करना, सुनना ।

अकल—अखंड ।

अचगरी—(सं० अति + करण) ज़्यादाती, नटखटी, शरारत ।

अछत—रहते हुए, उपस्थिति में ।

अज—जिसका जन्म न हो, अजन्मा ।

अजगव—शिव का धनुष, पिताक ।

अजयमख—विजय पाने की इच्छा से किया जाने वाला यज्ञ ।

अजिर—आँगन ।

अथाई—(सं० स्थायि, प्रा० ठाईँअ) बैठने का स्थान, चौपाल वा चौवारा ।

अनइस—(सं० अनिष्ट) अनैस, अहित, बुराई ।

अनपायनी—(सं० अनपायिनी) स्थिर, अचल, अनश्वर ।

अनामय—निरामय, दोषरहित ।

अनिमादिक—अष्टसिद्धियां अर्थात्

१ अणिमा, २ महिमा, ३ गरिमा,

४ लघिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य,

७ ईशित्व और ८ वशित्व ।

अनी—(सं० अणि) अग्रभाग, नोक ।

—(सं० अनीक) दल, सेना ।

अनोह—इच्छा रहित, निश्चेष्ट ।

अनुभवति—अनुभव करती है, समझ लेती है ।

अनैसे—बुरे भाव से (दे० अनइस) ।

अपडरना—शंकित होना ।

अपनपौ—अपने को, ममता ।

अभिजित—एक नक्षत्र, शुभ मुहूर्त ।

अमिअँ—(सं० अमृत) अमिय ।

अय—(सं० अयस्) लोहा ।

अरगाना—(हि० अलगाना) पृथक् हो जाना, चुप्पी साध लेना ।

अरनी—(सं० अरणी) शमीगर्भ अश्वत्थ के काठ का बना यंत्र जिसके द्वारा यज्ञ के समय मथकर आग निकालते थे ।

अरभक—(सं० अर्भक) बच्चा ।

अरुन—(सं० अरुण) सूर्य का सारथी प्रातः कालीन अरुणिमा, लाल ।

अरुन चूड़—(सं० अरुण चूड़) कुक्कुट, मुर्गा ।

अरुन सिखा—कुक्कुट, मुर्गा ।

अर्क—सूर्य, मदार ।

अलीक—भूट, असत्य, मिथ्या ।

अवगाह—(सं० अवगाध) अथाह कठिन, अनंत ।

अवगाहना—डुबकी लगाना ।
 अवघट—(सं० अवघट्ट) अटपट, दुर्गम ।
 अवचट—अनजान, अचक्का ।
 अवसेर—(सं० अवसेर) बाधक, उल-
 भूत, बिलंब ।
 असनि—(सं० अशनि) वज्र ।
 अहिराज—सर्पों का राजा, शेषनाग ।

आ

आँक—(सं० अंक) दृढ़ निश्चय ।
 आपनपौ—दे० अपनपौ ।
 आयुध—हथियार, शस्त्रास्त्र ।
 आरति—दुःख, अभिलाषा ।
 आसावसन—(सं० आशावास) दिग-
 म्बर ।
 आसु—(सं० आशु) शीघ्र ।

उ

उछंग—(सं० उत्संग) गोदी, कोरा ।
 उतग—(सं० उत्तग) ऊँचा, श्रेष्ठ ।
 उताइल—उतायल, शीघ्र ।
 उपचार—व्यवहार, खुशामद ।
 उपरना—दुपट्टा, चादर ।
 उपल—पत्थर ।

ए

एघमस्तु—ऐसा ही हो, स्वीकृति ।

ओ

ओऊ—वह भी ।
 ओधना—(सं० आबंधन) काम में
 लगा देना, फँसा देना ।

क

कंपति—समुद्र ।
 कदंब—एक वृक्ष का नाम, समूह ।
 कल्प—(सं० कल्प) ब्रह्मा के एक
 दिन का समय जिसमें १४
 मन्वंतर वा ४३२०००००००
 वर्ष होते हैं ।

कारुण्य—इच्छानुसार रूप धारण
 कर लेने वाला ।

कारमुक—(सं० कार्मुक) धनुष ।
 कालनेमि—एक राक्षस जो रावण का
 मामा था ।

किकिनि—(सं० किकिणी) करधनी
 क्षुद्र घटिका ।

कि वा—या, यातो, अथवा ।

किमपि—कुछ भी ।

किसलय—नया कोमल पत्ता ।

कुठारी—कुल्हाड़ी, टांगी ।

कुदाँव देना—विश्वासघात करना,
 धोखा देना ।

कुधर—पर्वत, पहाड़ ।

कुलह—(फा० कुलाह) शिकारी
 पक्षी की आँखों पर का ढक्कन,
 टोपी ।

कुसकेतु—राजा सीरध्वज जनक के
 छोटे भाई कुशध्वज ।

कूलद्रुम—नदी तट के वृक्ष, निर्बल ।

कृतात—यमराज, काल ।

कैरव—श्वेत कमल, कुमुद ।

कोंछ—(सं० कक्ष) अचल का कोना,
 गोदी शरण ।

कोतल—(फा०) राजा की सवारी का
 सजा सजाया घोड़ा जिस पर
 कोई सवार न हो ।

कोदंड—धनुष ।

कोपर—कुंडादार बड़ा थाल ।

कोहाब—(सं० क्रोध) मान, रूठना ।

ख

खँभार—(सं० शोभ) भय, व्याकुलता ।

खर्व—अपूर्णग, छोटा ।

खाटी मीठी कहना—निर्णयपूर्वक
 कहना ।

खीस—(सं० किष्क) नष्ट, बर्बाद ।

खोज मारना—लीक वा पैर के चिह्न
मिटकर वा बचाकर पता न
लगने देना।

खोरि—(स० खोट) दोष।

ग

गथ—(सं० गन्थ, प्रा० गत्थ) पृजी
गांठ का धन, मूल्य।

गहगहे—(सं० गद्गद) उमंग से भरा,
भलीभाँति।

गहरू—बिलब।

गाधि—ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के पिता
गाल बजाना वा मारना—बढ़ बढ़ कर
बोलना, व्यर्थ बकना।

गुदारा—नाव पर उतारने की क्रिया
उतारा।

गोतीत—ज्ञानेन्द्रियो से परे, अगोचर।

गोना—छिपाना।

घ

घटज—घड़े से उत्पन्न हुए अगस्त्य नाम
के ऋषि।

घट संभव—अगस्त्य ऋषि।

घटाटोप—बादलो की भाँति चारो ओर
से घेर लेने वाला दल।

घाटारोह—घाट से उतरने न देना।

घालना—रखना, कर डालना।

घुमरना—घोर शब्द करना।

च

चचरीक—भ्रमर।

चखपूतरि—आँखो की पुतली,
अत्यंत प्रिय।

चतुरंग—हयदल, गजदल, रथ दल
और पैदल नामक चारों अंगों
वाली सेना।

चपेट—धक्का, झपट, आघात।

चपेटना—झपटना, दबोचना।

चरु—हव्यान्न, हविष्य, यज्ञ का प्रसाद।

चांडसरना—काम का पूरा होना,
लालसा पूरी होना, काम
चलना।

चाहि—अपेक्षाकृत अधिक, बढ़ कर।

चिकुर—शिर के बाल।

चूड़ाकरन—हिंदुओं के बालको का
मंडन संस्कार।

चूडामणि—चोटी में पहनने का शीश-
फूल गहना।

चोखा—(सं० चोक्ष) वेग से, शीघ्र।

चोप—उत्साह, उमंग, चाव।

चौहट—चौहट्टा, चौक।

छ

छत—(सं० क्षत) घाव, फोड़ा।

छति—(सं० क्षति) हानि।

छत्रक दड—कुकुर मुत्ते की डंठल।

छरू—(सं० क्षर) नश्वर, नाशवान्।

ज

जंत्रित—(सं० यंत्रित) बंद, अवरुद्ध।

जनेत—बारात।

जयजीव—जय हो तथा जियो संबंधी
अभिवादन।

जल्पना—बढ़ बढ़ कर बातें करना,
डींग मारना, व्यर्थ बकना।

जवास—हिगुआ।

जातकर्म—हिंदुओं के बालकों के जन्म
समय का संस्कार।

जातुधान—राक्षस, असुर।

जाम—एक पहर वा तीन घंटे का समय
जून—(सं० जूर्ण) जूर्ण तृण के समान
साधारण, तुच्छ पुराने।

जूह—(सं० यूथ) झुंड, समूह।

जठरी—बूढ़ी।

जोहारना—अभिवादन करना।

भ

भूष—मत्स्य, मगर।

भाखना—भीखना, खीजना।

भारी—संपूर्ण, कुल, समूह।

ट

टंकोर—धनुष की प्रत्यंचा का शब्द।

ठ

ठनमनना—लुढ़कना, ढनमनाना।

ठवनी—ठवनि, बैठने वा खड़े होने का ढंग।

ठाट—रचना, ढांचा।

ठाहर—स्थान, टिकने की जगह।

ड

डोरियाना—रस्सी से बाध कर ले जाना।

ढ

ढोटा—लडका, बेटा।

त

तनोरुह—शरीर पर उगे हुए बाल।

तमकना—आवेश में आना।

तमारि—सूर्य।

तमीचर—निशाचर, राक्षस।

तरकना—तर्क करना, उछल पड़ना।

तरनी—नाव।

ताटक—कान में पहनने का एक गहना कर्णफूल, तरकी।

ताड़का—एक राक्षसी जो मारीच की मां थी और जिसे विश्वामित्र के अनुरोध से राम ने मारा था।

तीर—किनारा, निकट, बाण।

तुराई—(सं० तूल) रूई भरा बिछौना।
तोशक।

तृनगहना—हीनता प्रकट करना, गिड़-गिड़ाना।

तृन तोरना—किसी सुंदर वस्तु को कुदृष्टि से वचाने का उपाय करना वा संबंध तोड़ना।

तोय निधि—जल का आश्रय, समुद्र।

तोरन—(सं० तोरण) सजा सजाया बहिर्द्वार, बंदनवार।

थ

थपति—(सं० स्थपति) थवई

द

दमनीय—दमन होने योग्य।

दर्भ—डाभ, कुश।

दवारी—बन की आग।

दसगात—(सं० दशगात्र) दशकर्म, दस दिनो की पिंडदान क्रिया जिसके द्वारा पुराणानुसार प्रेत का दशांग शरीर क्रमशः बनकर तैयार होता है।

दसमौलि—दस सिरों वाला रावण।

दाप—(सं० दर्प) घमंड, बल।

दारिका—कन्या, बालिका।

दुद्रुभि—एक राक्षस का नाम, नगारा।

दुराव—छल, भेदभाव।

देव ऋषि—नारद।

देवसरि—गंगा नदी।

ध

धर्षना—दबाना, नीचा दिखलाना।

धुआँ—धज्जी, दुर्गति, धुरी।

धनुधूरि—गोधूलि का समय।

न

नफ़ीरी—(फ़ा०) तुरही, शहनाई।

नवगुन—तपस्या, कोमलता, संतोष, क्षमा, अतृष्णा जितेंद्रियता, दान, दयालुता, त्याग नामक ब्राह्मणों के नव गुण।

नांदीमुख—पुत्रजन्मादि उत्सवों के आरंभ में होनेवाला आभ्युदयिक श्राद्ध।

नाक—स्वर्ग, नासिका, प्रतिष्ठा।
 नागपास—वृष्ण का सांपों वाला फंदा।
 नाराच—लोहे का बाण जिसमें पांच
 पख लगे हों।
 नाहरू—नहरूवा अथवा नारू नाम का
 एक रोग वा चमड़े का टुकड़ा।
 पालिभाषा में नहारू तात को
 कहते हैं।
 निदरना—निरादर करना, बढ़ जाना।
 निन्नर—गभङ्ग।
 निकाम—यथेष्ट।
 निकेत—घर, मंदिर।
 निगम—वेद, मार्ग।
 निबेरना—सुलभाना, निभाना।
 निमि—राजा जनक के एक पूर्व पुरुष।
 नियोग—प्रेरणा, निश्चय।
 निरु आरना—बंधन खोलना।
 निसान—डंका, नगाड़ा, ध्वजा।
 निहार—कुहरा, पाला, बर्फ।
 नीर निधि—जल का आश्रय, समुद्र।
 नेई—(सं० नेमि) घर बनाते समय
 गहरी नाली के रूप में खुदा गढ़ा
 जिसका भीतर से दीवार की जुड़ाई
 होती है, नीव।
 नेगी—नेगपानेवाला, हक्कदार।
 नेति—(सं० न + इति) अनंत अथवा
 अनिर्वचनीय।

प

पंचानन—पांच मुखवाला, शिव।
 पँवारना—हटाना, फेंकना।
 पटल—पर्दा, आवरण।
 पतंग—सूर्य, फतिगा।
 पदपीठ—खड़ाऊ, पीढ़ा।
 पदुमराग—(सं० पद्मराग) माणिक
 वा लाल नामक रत्न।
 पनवार—पत्तल।
 पनसफल—कटहल का फल।

पनारा—पनाला, परनाला।
 परमिति—प्रमाणित ज्ञान, निश्चित।
 परिकर—कमरबंद, पटुका।
 परिध—एक मुसलाकार शस्त्र।
 परिचरजा—परिचर्या, सेवा।
 परिचारिका—सेविका।
 परेखना—प्रतीक्षा करना, राह देखना।
 पलोटना—पैर दबाना।
 पवि—वज्र, बिजली।
 पस्यामि—(सं० पश्यामि) देखता हूँ।
 पाँवरी—खड़ाऊँ।
 पाठीन—एक प्रकार की मछली।
 पाथ—जल, रास्ता।
 पाथोज—कमल।
 पारथिव—मृत्तिका से बना शिव-लिंग,
 पार्थिव लिंग।
 पारना—सकना, डालना।
 पारावत—परेवा, कबूतर।
 पावकसर—अग्नि बाण।
 पावस—वर्षा ऋतु।
 पाहन कृमि—पत्थर में रहने वाला कीड़ा।
 पुत्रकाम—पुत्र की इच्छा से किया
 गया यज्ञ।
 पुलकित—हर्ष के मारे जिसके रोमांच
 हो आए हों।
 पैसार—पैठ, प्रवेश।
 पोच—अधम, तुच्छ, नीच।
 पोत—पशु पक्षियों का छोटा बच्चा।
 प्रघोर—अत्यंत घोर।
 प्रदोष—संध्या समय।
 प्रभंजन—वायु, आंधी।
 प्रमान—प्रमाणित, चरितार्थ, प्रमाण,
 स्वीकार योग्य।
 प्रहस्त—रावण का पुत्र और सेनापति।

फ

फबना—जंचना, सुंदर दीखना।
 फर—बाण की नोक।

फराक—(फा० फराख) विस्तृत,
लंबा चौड़ा।

व

वगमेल—वाग मिलाए हुए पक्तिबद्ध
होकर साथ साथ, कतार में।

वछलता—वात्सल्य, प्रेम।

बजाकर—डंका पीटकर, खुल्लम-
खुल्ला।

बद—बोलो, कहो।

बधूटी—पुत्र की स्त्री, सुहागिन, बहू।

बनज—कमल।

बरोरू—सुंदर जघनो वाली।

बलीमुख—बंदर।

बवना—बीज डालना, बोना।

बसीठी—बसीठ, दूत, संदेशवाहक।

वाचना—(१) पढ़ना (२) छोड़ना।

बाइस—(सं० वायस) काग।

बागुर—फंदा।

वान—(१) बाण (२) बाणासुर।

बाना—भेष, स्वभाव।

बारीस—जल का मालिक, समुद्र।

बासव—इंद्र।

बाहिनी—वह सेना जिसमें ८१ रथ
८१ हाथी २४३ सवार और ४०५
पैदल हो, फौज।

बिगोना—(सं० बिगोपन) छिपाना
वा नष्ट कर देना।

बिघटना—बिगाडना, तोड़ना।

बिडारना—भयभीत करके भगा देना।

बितान—मंडप, चंदोबा, शामियाना।

बिबरना—(सं० विवरण) खोलकर
पूरा सुलझाना, बिलगाना।

बिसूरना—चिंता करना, खेद करना।

बीथी—गली, रास्ता।

बीह—बीस की संख्या।

वृदारक—देवता, श्रेष्ठ, व्यक्ति।

वृक—भेड़िया।

बेगना—जल्दी चलाना वा भेजना।

बेरा—बेड़ा, जहाजों का समूह।

बेसर—खच्चर, गदहा।

व्यवहरिया—महाजन, लेनदेन करने
वाला।

ब्रात—समूह, दल।

भ

भँवाना—घुमाना, फिराना

भगतकृत चैता—भक्तों पर कृपादृष्टि
रखने वाला।

भाथा—तरकश, तूणीर।

भिडियाल—एक हथियार जिससे डंडे
की तरह फेंक कर मारते हैं।

भेक—मेढ़क।

भेला—भिड़ंत, भेंट।

म

मकरी—मगर की मांदा।

मधामेघ—मघा नक्षत्र के समय के
बादल।

मज्जा—नली की हड्डी के भीतर का
गूदा।

मधुमास—चैत का महीना।

मनिदीप—मणि के प्रकाश द्वारा प्रका-
शित करने वाला दीप।

मनियार—चमकीला, उज्ज्वल।

मयंक—चंद्रमा।

मण्ट—मौन, चुपचाप।

मसान जगाना—तंत्रों के अनुसार मुर्दा
सिद्ध करना।

माडवी—राजा जनक के अनुज कुश-
ध्वज की लड़की जो भरत को
व्याही गई थी।

माखना—गर्व करना, क्रोध करना।

मागध—वंश की विरुदावली कहने
वाला, भाट।

मातली—इंद्र का सारथी।

मार—कामदेव ।

मारगन—(सं० मार्गण) बाण, तीर ।

माल्यवंत—रावण का नाना और मंत्री ।

माष—रोष, क्रोध ।

मुकुर—दर्पण, शीशा ।

मुठभेरी—मुठभेड़, सामना, भिड़ंत ।

मुरना—मुड़ना, पलटना ।

मुहमीठ—केवल बातचीत का अच्छा, कपटी ।

मृगया—आखेट, शिकार ।

मखला—करधनी, सीमा ।

मेलना—डाल देना ।

मैनाक—एक पर्वत का नाम ।

र

रँवनी—रमणी, स्त्री ।

रजाइ—आज्ञा, हुक्म ।

रदपट—होंठ ।

रहसना—प्रसन्न होना ।

रहसि—एकांत में ।

राँचना—चाहना, प्रेम करना ।

राकेस—(सं० राकेश) चंद्रमा ।

राजीव—कमल ।

रिछेस—भालुओं के राजा जाम्बवंत ।

रिषय—ऋषि लोग ।

रुंड—धड़, कबंध ।

रूरा—सुंदर, श्रेष्ठ ।

रौताई—सरदारी, ठकुराई ।

ल

लवाई—नई व्याथी गौ ।

लहकौर—दुलहा और दुलहिन का एक दूसरे के मुख में कौर डालना कोहबर की एक रीति ।

लोनाई—लावण्य, सुंदरता ।

लोहा लेना—भिड़ जाना, लड़ना ।

श

श्रीखंड—श्वेत चंदन, हरि चंदन ।

श्रुति कीरति—राजा जनक के अनुज कुशध्वज की कन्या जो शत्रुघ्न को ब्याही थी ।

स

संकुल—पूर्ण, भरा ।

सँकलना—समेटना, कसना ।

संघट—संयोग, मिलन ।

संजुग—(सं० संयुग) रणभूमि, संग्राम ।

सँजोइल—भलीभांति सजाया हुआ, सुसज्जित ।

संधानना—धनुष चढ़ाना, निशान लगाना ।

संभारना—संभालना, स्मरण करना ।

संभारी—पूर्ण ।

संभ्रम—उतावली के साथ ।

सचु—सुख, आनंद ।

सतानंद—गौतम ऋषि के पुत्र एवं राजा जनक के पुरोहित ।

सतिभाय—अच्छे भाव से ।

सदसि—समाज, सभा ।

सपदि—शीघ्र ।

सपरन—सपर्ण, पल्लवों सहित ।

सप्तसागर—पौराणिक सात समुद्र—
दधि, दुग्ध, घृत, लवण, जल, ईक्षु
तथा मदिरा से भरे हुए ।

समयसिर—समयानुकूल, उचित ।

समितना—एकत्र होना ।

समुहाना—सामने आना, सम्मुख होना ।

सरपि—(सं० सपि) घृत, घी ।

सर रचना—चिता तैयार करना ।

सरबँ करना—श्रम करना, कसरत करना ।

सरोरुह—कमल ।

सलभ—पतिगो ।

सहसभुज—सहास्रार्जुन नामक राजा ।

सहिदानी—चिह्न, पहचान ।

- साँव करन—(सं० श्यामकर्ण) एक प्रकार का घोड़ा जिसका सारा शरीर श्वेत होता और कान काले होते ।
- साका—ख्याति, यश, स्मारक ।
- माखामृग—बदर ।
- माथरी—कुश की चटाई, चटाई ।
- मारगपानी—धनुर्धर, विष्णु ।
- साहनी—(साधनिक) अश्वारोही सेना का अधिकारी
- मिमपा—शीशम का वृक्ष ।
- सिखी—मयूरी, मोरनी ।
- सिराना—मिट्टना, बन पड़ना ।
- सिल्पकर्म—कारीगरी ।
- मिविका—(सं० शिविका) पालकी ।
- मीकर—बुद्ध, कण, पसीना ।
- मीदना—दुःख पाना, कष्ट भेलना ।
- मुआर—रसोइया, रसोई बनाने वाला ।
- मुआसिनी—विशेषतः आसपास की स्त्री, सुहागिन, सधवा ।
- मुखेन—मुखपूर्वक ।
- मुतीछी—कड़वी, लगने वाली ।
- मुनासीर—ईद्र, देवता ।
- मुपासी—सुखदायक, आनंद प्रद ।
- मुग्भि—मुग्धित, सुवासित ।
- मुवेल्—लंका के त्रिकूट पर्वत का एक शिखर ।
- मुकर खेत—शूकर क्षेत्र, सोरो, सरयू एवं घाघरा के संगम का एक तीर्थ ।
- मूत—सारथी, पौराणिक ।
- मूपकार—दे० 'सुआर' ।
- सूपोदन—दाल भात ।
- सेल—बरछा, भाला ।
- सेल—पर्वत, पहाड़ ।
- सोधना—धुँदना, पता लगाना ।
- स्यदन—युद्धोपयोगी रथ ।
- स्त्रग—फूलों की माला ।
- स्त्रवनपूर—कर्णफूल, तरकी ।
- हँकार—ऊँचे स्वर से पुकार कर बुलाने की क्रिया, बुलाना ।
- हटकना—रोकना, डाटना, मना करना ।
- हथ बासना—नाव के सामान को प्रयोग में लाना, मिल कर पकड़ना, हथियाना ।
- हयसाल—घुड़साल, अस्तबल ।
- हरिअर सूझना—अपने ही मन की बातों का दीख पड़ना ।
- हरीस—बानरो का राजा, सुग्रीव ।
- हरुअ—(सं० लघुक) हल्का ।
- हरुआना—हल्का हो जाना, छोटे रूप में आ जाना ।
- हवि—हव्य, यज्ञ का प्रसाद, खीर ।
- हांती—छोड़ी हुई, त्याग की हुई ।
- हाटक—सोना ।
- हिसना—घोड़े का हिनहिनाना ।
- ही—थी ।
- हुंति—(प्रा० हितो) ओरसे, से, लिए, निमित्त ।
- हुमगना—हुमकना, मारने के लिए पैरों को कस कर तानना, उछलना ।
- होते—थे ।

कथा-प्रसंग

अंधतापस—अंधक मुनि नामक एक वैश्य तपस्वी, अपनी अंधी स्त्री तथा अपने पुत्र श्रवण के साथ, अयोध्या के निकट रहता था। एक दिन जब संध्या हो चुकी थी श्रवण अपने माता-पिता के लिए जल लाने सरयू किनारे गया और शिकारी राजा दशरथ ने, उसके भरते हुए घड़े का शब्द सुन कर हाथी के भ्रम से, उसे शब्द-बेधी बाण से मार डाला। अंधक मुनि अपने पुत्र के वियोग में अपनी पत्नी के साथ जलकर मर गया और दशरथ को शाप देता गया, “तुम्हें भी पुत्र शोक में ही प्राण त्याग करना पड़ेगा।” राजा दशरथ को अपने पुत्र रामचंद्र के वियोग में इस बात का स्मरण हुआ और मरने के पहले उन्होंने यह कथा कौशल्या से कह सुनाई।

अगस्त्य मुनि—‘ऋग्वेद’ के अनुसार इनका जन्म, शृंगार करके आकाश मार्ग से जाती हुई उर्वशी नामक अप्सरा को देख कर काम पीड़ित हो जाने वाले मित्रावरुण ऋषि के वीर्यपात करने पर हुआ था। सायणाचार्य का कहनाई है कि अगस्त्य एक घड़े से उत्पन्न हुए थे जिस कारण इन्हें ‘घटज’, ‘घटयोनि’, ‘कुंभज’ आदि भी कहते हैं। ञ्चे विध्य पर्वत द्वारा सूर्य का मार्ग रुक जाने के समय, देवताओं की प्रार्थना पर, अगस्त्य मुनि उसके निकट गए और जब वह इन्हें गुरु के रूप में प्रणाम करने के लिए पृथ्वी की ओर गिरा तो उसे यह कहते हुए ये चले गए, “जब तक मैं न लौटूँ तब तक तुम इसी प्रकार पड़े रहना।” तब से ये फिर कभी वहाँ वापस नहीं गए जिस कारण इनका नाम ‘अगस्त्य’ पड़ गया। पुराणों के अनुसार इन्होंने एक बार समुद्र का जल अपने चुल्लू में ही भर कर पी लिया था और भक्त सुतीक्ष्ण इन्हीं के शिष्य थे। ‘राम चरित मानस’ में इनका नाम कई बार आया है।

अहल्या—अहल्या वृद्धाश्रय की पुत्री तथा महर्षि गौतम की रूपवती पत्नी थी। एक बार जब गौतम ऋषि गंगा स्नान के लिए गए थे इन्द्र उन्हीं का रूप धारण कर उनके आश्रम में चला आया और अहल्या के साथ उसने भोग-विलास किया।

बाहर निकलते ही उसके साथ गौतम ऋषि की भेंट हो गई और योगबल द्वारा सारा वृत्तांत जान कर उन्होंने इंद्र को 'सहस्र भग' हो जाने का शाप दे दिया। इसी प्रकार उन्होंने अहल्या को भी पत्थर के रूप में परिणत हो जाने का शाप दिया था जिस दशा से विश्वामित्र के कहने पर रामचंद्र ने उसे पैं से छूकर उद्धार किया।

कद्रू और विनता—ये दोनों कश्यप ऋषि की पत्नियां थी और कद्रू के पुत्र सर्प थे तो विनता के गरुड़। एक बार दोनों सौते में इस बात पर विवाद चला कि सूर्य के घोड़ों का रंग क्या है; कद्रू ने उसे काला कहा और विनता ने श्वेत बतलाया। निश्चय किया गया कि उनमें से जो हारेगी वह दूसरी की दासी बन कर काम करेगी। कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों को पहले से ही भेज दिया जिन्होंने घोड़ों के शरीर में लिपट कर उन्हें काला रूप दे दिया और विनता को हार मान कर उसकी दासता स्वीकार करनी पड़ी। मंथरा ने यह कथा कैकेयी से उसके हृदय में सौतिया डाह का भाव उत्पन्न करने के लिए कही थी।

कागभुशुंडि और गरुड़—कागभुशुंडि अपने पूर्वजन्म में एक भक्त ब्राह्मण थे। उन्हें एक ऋषि ने शाप देकर कौए की योनि में भेज दिया था जिसमें रहते हुए भी उनकी भक्ति पूर्ववत् बनी रही। वे मेरु पर्वत के उत्तर नील शैल पर सदा राम-कथा कहने में निरत रहते थे और कहा जाता है कि वे अभी तक अमर हो कर वही करते हैं। गरुड़ को जब, मेघनाद के नागपाश से रामचंद्र को छुड़ाने पर उनके ईश्वरत्व के विषय में संदेह हुआ तो उन्होंने कागभुशुंडि के ही निकट जाकर उसे दूर कराने की चेष्टा की। कागभुशुंडि ने उनसे सारी राम-कथा कह डाली और भक्ति साधना की प्रधानता भी सिद्ध की। कागभुशुंडि को राम-कथा शिव से प्राप्त हुई थी और उन्होंने स्वयं इसे याज्ञवल्क्य ऋषि को दी थी जिनसे फिर भरद्वाज को मिली। 'राम चरित मानस' में कागभुशुंडि और गरुड़ के संवाद के प्रसंग अनेक स्थलों पर आते हैं और उसमें इनकी आत्म-कथा भी दी गई है। इनकी एक 'काग-भुशुंडि रामायण' भी प्रसिद्ध है।

गंगावतरण—अयोध्या नरेश सगर को अपनी केशिनी रानी से असमंजस और सुमति रानी से साठ सहस्र पुत्र थे। असमंजस बड़ा निर्दयी था जिस कारण उसका देश निकाला हो गया। राजा सगर के अश्वमेध का घोड़ा इंद्र ने चुरा

लिया और उसे कपिल मुनि के आश्रम में ले जाकर बाँध दिया। घोड़े को ढूँढ़ते हुए सगर के साठ सहस्र पुत्र मर्हषि कपिल के यहाँ पहुँचे जिन्होंने 'चोर' कहने के कारण जला दिया। सगर के पुत्र असमंजस का लड़का अंशुमान किसी प्रकार घोड़े को ले आया किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी अपने पितरों का उद्धार न कर सका। अंशुमान के पुत्र भगीरथ ने इसके लिए बड़ा तप किया और ब्रह्मा से गंगा जल माँगा तथा उसे फिर जटा में रखने के लिए शिव को प्रसन्न किया। शिव की जटा से पृथ्वी तल तक गंगा को लाने के लिए भी भगीरथ को प्रयत्न करने पड़े और तब कही वह उसे अपने भस्मी-भूत पुरुषों तक लाकर उनका उद्धार कर सका। गंगा का नाम भगीरथ के ही कारण 'भागीरथी' पड़ गया। विश्वामित्र ने राम एवं लक्ष्मण को गंगा नदी के स्वर्ग से पृथ्वी तल तक आने की इस कथा का ही परिचय दिया था।

तपस्विनी—विश्वकर्मा की कन्या हेमा ने अपने नृत्य द्वारा शिव को प्रसन्न कर दिव्य स्थान प्राप्त किया और वहाँ गंधर्व कन्या के साथ रही। ब्रह्म लोक की ओर जाते समय हेमा अपनी सखी से कहती गई, "त्रेता में सीता की खोज के लिए जब रामदूत आवेंगे तो उनकी सहायता करना और उनके दिए हुए पते से रामचंद्र के दर्शन कर परमपद की प्राप्ति कर लेना। तब से वह प्रतीक्षा में बैठी रही और जब हनुमान आदि बानर बिबर में प्रवेश कर उसके निकट गये तो उसने उनका अतिथि सत्कार किया। उसने बानरों से अपनी कथा भी कह सुनाई और फिर रामचंद्र के दर्शनार्थ किष्किंधा चली गई।

दंडक बन—इक्ष्वाकु राजा के पुत्र दंडक विंध्याचल एवं नील गिरि के मध्यवर्ती प्रांत के शासक थे। वे शुक्राचार्य के शिष्य थे जिनकी बड़ी पुत्री अरजा का उन्होंने कौमार्य भंग कर दिया और शुक्राचार्य ने क्रोध करके उन्हें शाप दिया, "सौ योजनपर्यंत पत्थर बरसा कर इंद्र तुम्हारा राज्य नष्ट कर देंगे।" जिस कारण वह प्रांत निर्जन हो गया और दंडक के ही नाम पर 'दंडकारण्य' कहलाया। दंडक बन में ही गोदावरी के किनारे एक पंचवटी नामक स्थान था जहाँ राम, लक्ष्मण एवं सीता के साथ कुटी बना कर रहते थे। अगस्त्य ऋषि के कहने पर जब रामचंद्र वहाँ रहने लगे तब से शुक्राचार्य के उक्त 'उग्र शाप' का प्रभाव जाता रहा। पंचवटी में ही रहते समय लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक काटी और खरदूषण के साथ युद्ध हुआ।

दधीचि—दधीचि एक बड़े धर्मशील और आत्मत्यागी ऋषि थे। वृत्रासुर ने जब देवताओं पर अत्याचार किए और वे दुखी हो इंद्र के साथ इनके पास गए तो इन्होंने उनके माँगने पर अपनी हड्डी तक समर्पित कर दी जिसका वज्र बनाया गया। कुछ लोग सायण भाष्य आदि के आधार पर दधीचि को घोड़ा से अभिन्न बतलाते हैं।

दुदुभि—दुदुभि नाम का एक राक्षस था जिसे मार कर बालि ने ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया था। पर्वत पर उसका रक्त देख कर वहाँ के मतंग ऋषि ने बालि को शाप दिया कि यदि फिर कभी तुम यहाँ आये तो तुम्हारा मस्तक फट जायगा। इसी कारण बालि वहाँ नहीं जा पाता था और सुग्रीव के लिए वह एक सुरक्षित स्थान हो गया था। दुदुभि की हड्डियों पर ताड़ के सात विशाल वृक्ष उग आए थे जिन्हें सुग्रीव के कहने पर रामचंद्र ने एक ही बाण द्वारा काट गिराया और इस प्रकार उनके बल पर सुग्रीव को विश्वास हो गया।

दुइ वरदान—देवासुर सग्राम के समय महाराज दशरथ को इंद्र ने महायतार्थ बुलाया। युद्ध के समय संयोगवश दशरथ के रथ के पहिये की धुरी की कील टूट कर निकल गई, किंतु राजा के साथ गई हुई कैकेयी ने उसके छिद्र में अपना हाथ डाल कर संभाल लिया। रथ इस प्रकार अवसर नष्ट होने से बच गया और दशरथ ने प्रसन्न होकर कैकेयी से वर माँगने को कहा। कैकेयी ने उस समय कोई वर नहीं माँगा, किंतु दो वरों के लिए राजा से वचन लेकर उन्हें उनके पास धरोहर की भाँति रख दिया। ये ही दो वर पीछे समयानुसार 'भरत का राज्याभिषेक' तथा 'राम का वनवास' के रूप में परिणत होकर दशरथ के लिए प्राणघातक सिद्ध हुए। मथुरा ने इन्हीं दो पुराने वरों का कैकेयी को स्मरण दिलाया था और इन्हें उपर्युक्त रूप में माँगने की सलाह भी दी थी।

दुर्वासा—दुर्वासा ऋषि अत्रि मुनि के पुत्र और महान् क्रोधी थे। एक बार ये अयोध्या के राजा अंबरीष के यहाँ पहुँचे जब वे एकादशी व्रत के पारण की तैयारी में लगे थे और उनसे भोजन का निमंत्रण लेकर ये स्नान करने चले गए। राजा के लिए पारण का नियत समय कम था, इसलिए दुर्वासा के लौटने में बिलंब देव कर उन्होंने थोड़ा सा जल पी लिया। जब ये लौट कर आये तो इन्हें इस बात पर बड़ा क्रोध हुआ और इन्होंने अपनी जटा पटक कर एक राक्षसी उत्पन्न कर दी जो

अंबरीष की ओर दौड़ पड़ी। परंतु राजा के अंगरक्षक विष्णु के सुदर्शन चक्र ने राक्षसी को मार डाला और वह फिर दुर्वासा की ओर भी भपटा। दुर्वासा को इस दशा में ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव किसी में भी महायत्ना नहीं मिल सकी और ये अंत में अंबरीष की ही शरण में आये। इस कथा का प्रसंग वहाँ आया है जहाँ रामचंद्र के वाण से भयभीत होकर भागते हुए जयत को कोई शरण नहीं दे रहा था।

नल और नील—ये दोनों वानर विश्वकर्मा के पुत्र थे। वचपन में ये समुद्र तट वासी ध्यानस्थ ऋषियों के शालिग्राम की मूर्तियों को जल में फेंक देते थे जिस कारण क्रोधित होकर उन्होंने इन्हें शाप दिया था कि तुम्हारे छुए पत्थर अब से कभी जल में नहीं डूबेंगे। रामचंद्र की आज्ञा से सेतु बांधते समय इस शाप ने नल और नील के लिए वरदान का काम किया। इस कथा का परिचय रामचंद्र को समुद्र ने ही कराया। बौद्ध जातक के अनुसार जलडमरूमध्य का द्योतक भी समझा जाता है।

नारद वचन—नारद मुनि देवर्षि कहला कर प्रसिद्ध थे और ये बड़े कलहप्रिय तथा हरिकीर्तन प्रेमी थे। एक बार जब जानकी पार्वती की पूजा करने जा रही थी तो मार्ग में उनकी इनमें भेट हो गई और इन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया, “तुम इसी उद्यान में पहले पहल अपने भावी पति को देखोगी, अतएव यहाँ पर जिस किसी को देख कर तुम्हारा मन पूर्णतः आकृष्ट हो जाय उसे ही अपना पति जानना।” पुष्प वाटिका में रामचंद्र का सौंदर्य देख कर जब जानकी उन पर मुग्ध हुई तो उन्हें नारद की उक्त बात स्मरण हो आई।

निमि—निमि राजा इक्ष्वाकु के पुत्र थे और इन्हीं से मिथिला का विदेह-वंश चला था। एक बार निमि ने वशिष्ठ ऋषि को सहस्र वार्षिक यज्ञ करने के लिए बुलाया, किंतु इंद्र के यहाँ पचशत वार्षिक यज्ञ के लिए वरण हो चुकने के कारण, वे इनके यहाँ नहीं आ सके। निमि ने इस पर गौतमादि ऋषियों को बुला कर अपना यज्ञ आरंभ कर दिया जिससे रुष्ट होकर वशिष्ठ ने इन्हें शाप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहेगा और निमि ने भी वशिष्ठ को उसी प्रकार का शाप दिया। दोनों के प्राण छूट गए। वशिष्ठ ने फिर मित्रावरुण के यहाँ जाकर जन्म लिया, किंतु निमि को यह बात पसंद न आई और देवताओं के अनुरोध पर इन्होंने मनुष्यों के पलकों पर रहना स्वीकार किया जिस कारण ये ‘विदेह’ कहलाने लगे और इनके वंशजों का भी यही नाम चला। पुष्प वाटिका की कथा में इसी का प्रसंग आया है।

याज्ञवल्क्य और भरद्वाज—याज्ञवल्क्य एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम था जो वैशम्पायन के शिष्य थे। एक बार मकर स्नान करने के लिए प्रयाग आने पर वे वहाँ के निवासी भरद्वाज ऋषि के आग्रह पर कुछ दिनों के लिए ठहर गए। प्रयाग में दोनों ऋषियों का सत्संग चलता रहा जिसमें याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज के प्रति पूरी रामकथा कह डाली। गोस्वामी तुलसीदास ने उसी याज्ञवल्क्य और भरद्वाज के संवाद के आधार पर अपने ग्रंथ 'राम चरित मानस' की रचना की। इस संवाद के ही अंतर्गत क्रमशः कागभुशुडि संवाद एवं शिवपार्वती संवाद की कथाओं का भी समावेश किया गया है।

शबरी—शबरी शबर नामक एक जंगली जाति की स्त्री थी और इसका वास्तविक नाम श्रमणा था। यह परम तपस्विनी थी। इसके गुरु ने इसे मरते समय कहा था, "तू इसी कुटी में रह, कुछ दिनों के अनंतर तुझसे यही पर राम और लक्ष्मण मिलेंगे।" तबसे यह वही रहती रही और सीता की खोज में निकले हुए राम और लक्ष्मण इसके यहाँ स्वयं पहुँच गए। इसने दोनों भाइयों का बड़ा सत्कार किया और सीता की खोज में सहायता के लिए सुग्रीव से मित्रता करने की सलाह दी। रामचंद्र की अनुमति से यह वही जल कर भस्म हो गई।

शिव और पार्वती—शिव प्रसिद्ध त्रिदेवों में से एक हैं। इन्होंने परशुराम को बाण विद्या सिखलायी और तपस्या करने पर रावण को वर दिया। इन्होंने राजा जनक को 'पिनाक' नामक एक धनुष दिया था जिसे रामचंद्र ने सीता स्वयंवर के अवसर पर तोड़ा था। शिव ने रामचंद्र के ईश्वरत्व में संदेह करने के कारण अपनी पत्नी गौरी का परित्याग कर दिया जो जल कर सती हो गई। गौरी ने फिर हिमालय पर्वत के घर जन्म लिया और पार्वती कहलायी तथा इनका विवाह एक बार फिर शिव के साथ हुआ। शिव ने पार्वती को संपूर्ण राम-कथा का उपदेश दिया जो शिव पार्वती संवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी संवाद को कागभुशुडि ने गुरु के प्रति कहा जिसे फिर याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज के प्रति दुहराया और तुलसीदास ने अपने 'राम चरित मानस' ग्रंथ में लिपिबद्ध किया। तुलसीदास ने इस बात की चर्चा अपनी रचना के आरंभ में ही कर दी है।

शिवि—ये काशी के राजा थे जिनके यज्ञ में विघ्न डालने के उद्देश्य से इंद्र ने, अग्नि को कबूतर बना कर और अपना भेष बाज का धारण कर, इनकी यज्ञशाला में

पहुँचन का निश्चय किया। बाज के भय से कबूतर शिव की गोद में जा गिरा। शिव ने बाज को संतुष्ट कर के कबूतर की रक्षा करने के निमित्त क्रमशः अपने सारे शरीर का मांस देना चाहा था जिस कारण इनके आत्म-त्याग की प्रशंसा है।

“सिर और सैल कथा”—अपने सौतेले भाई कुबेर के ऐश्वर्य को देखकर रावण ने तपस्या ठानी, किंतु जब दस सहस्र वर्षों के अनंतर भी वह सफल न हो सका तो क्षुब्ध होकर उसने अपने दसों सिर काट-काट कर अग्नि में होम करना आरंभ कर दिया। ब्रह्मा ने इस पर प्रसन्न होकर रावण को वरदान दिया कि तुम्हें आज से देवता, दैत्य, यक्ष, गंधर्व आदि में से कोई भी नहीं हरा सकेगा। यह वरदान पाते ही उसने कुबेर को जा हराया, उससे लंका छीन ली और पुष्पक विमान भी ले लिया। एक बार जब वह पुष्पक पर चढ़ कर कैलास के निकटवर्ती जंगलों से होकर जा रहा था तो उसे शिव के पार्षद नंदी ने रोक दिया जिस पर क्रुद्ध होकर रावण ने कैलास को ही उखाड़ फेंकना चाहा। रावण को अपने सिरों के काटने और कैलास पर्वत के उखाड़ने का बड़ा गर्व था। अंगद के साथ संवाद में उसने इसे कई बार कहा।

हरिश्चंद्र—ये अयोध्या के राजा थे जिनसे द्वेष कर के इंद्र ने दानशीलता की परीक्षा के लिए विश्वामित्र को भेजा। विश्वामित्र ने इनका सारा राज्य इनके स्वप्न में ही दानस्वरूप ले लिया और फिर उपदान के लिए इनके यहाँ पहुँचे। हरिश्चंद्र ने ‘तीन लोक से न्यायी’ काशी में जाकर अपनी पत्नी को एक ब्राह्मण के हाथ सपुत्र बेच दिया और शेष दक्षिणा के लिए स्वयं भी एक डोम के हाथ बिके। वे श्मशान घाट पर कर उगाहने की नौकरी करते थे। इस कारण, अपने पुत्र के मरने पर जब इनकी स्त्री उसे जलाने के लिए स्वयं वहाँ पर पहुँची तो इन्होंने उससे भी कर माँगना अपना कर्तव्य समझा और उसे अपनी साड़ी का अंश फाड़ना पड़ा। हरिश्चंद्र के इस प्रकार धर्म पालन की कथा शिव एवं दधीचि के आत्मत्याग वाले प्रसंगों की ही भाँति प्रसिद्ध है।

नामानुक्रमणी

अद्वैत १४४	गुप्त, मैथिलीशरण ७३
अभिनद ६९	गुलेरी, चन्द्रधर शर्मा ६२
अमर मिह ७३	गौड, रामदाम ६५
अलबेरुनी ७३	ग्राउज ११
अवस्थी, मदगुशरण ४६	ग्रियर्सन १२, १३, १७, २१, ३२
उपाध्याय, भरतसिंह ७६	ग्रीन्म ११
एकनाथ ७२	चक्रवस्त ७४
ओत्त कुथन ६९	चि-चि-आ-ये ८६
कवन ६९	जयदेव ६७, १३३
काटे, रामचन्द्र गोविंद १०	टार्विनिय ९१
कालिदाम ४६, ६७	तामी, गासादि ११
कुमारदाम ६९	तिरुमल ७०
कृतिवाम ७१	तुलसीदाम ९, १०, ११, १२, १३,
कृष्णमोहन ६८	१४, १५, १८, १९, २०, २२,
केशवदाम ७०, १४०, १४१, १४२	२४, २५, २६, २८, २९, ३१, ३२,
कोदोराम ३५	३३, ३४, ३५, ३६, ३८, ४०, ४१,
कौटिल्य १००	४२, ४३, ४५, ५२, ५३, ५४, ५५,
क्षेमेद्र ६७	८०, १०९, ११०, ११५, ११६,
गिरिधरदाम ७२	११७, ११९, १२१, १२२, १२७,
गुणभद्र ८०, ८१, ८२, ८३, ८७	१२८, १२९, १३३, १३७, १३८,
गुप्त, दीनदयालु १३	१३९, १४०, १४१, १४२, १४३,
गुप्त, माताप्रसाद १४, १६, १७, १९,	१४४, १४५, १४६, १४७, १४८,
२६, २८, २९, ३३, ३५, १४७,	१४९, १५०, १५२, १५३, १५५,
१५७, १५८	१५६, १५७, १५८, १५९, १६०,

१६३, १६५ ।	भट्ट, दिवाकर प्रकाश ७०
दीक्षित, भागीरथ प्रसाद २१	भवभूति ६७, १३४
दीक्षित, राजपति १४	भवानीदाम ११
द्विवेदी, गौरीशंकर १३	भारद्वाज, रामदत्त १३
द्विवेदी, रामगुलाम १७, ३४	भालण ७२
द्विवेदी, सुधाकर ३२	भाम ६७
धनंजय ६८	भोज ६९
धीरनाग ६८	माधव कदलि ७२
नजीर ७४	माधोदास १४४
नरहरि ७०	मिश्रबधु २१, २२
नागचंद ८०	मुरारि ६७
पाठक, शिवलाल १७	मुल्ला मसीह ७३
पाणिनि १०१	मैकडानेल १०२
पार्जिटर ९९, १००	मैक्समूलर ९७
पोलिये ९१	मोरो पत ७२
प्रवरसेन ६९	मोल्ला ७०
प्रेमी, नाथूराम ८०, ८१, ८२, ८३	याकोबी ९३, ९६, ९७, १०३, ११३
फेनिचियो ९१	योगीश्वर ८८
वड्थवाल ११	रघुनंदन ७१
वदायूनी, अब्दुल कादिर ७३	रघुराज सिंह ७३
वनर्जी, जी० एन० ९५	रघुवरदास ११
वलरामदाम ७१	रविषेण ८०
वालकदाम ७३	राजशेखर ६७
बुद्धुराज ६९	राइस, ई० पी० ८१
बुल्के ४८, ४९, ५५, ५६, ६४, ६६, ७८, ९१, ९६, ९८, १०१, १०४, १०५, १४४, १४६	रोजेरियुस ९१
वेदिल, चंद्रभान ७३	लालपुरी, अमानत राय ७३
भट्ट, गोविंद वल्लभ १३	वसाली, शाह जलालुद्दीन ७४
	वाल्मीकि १०, २८, ५२, ६६, ७१, ९३, १०१, १०२

विद्यालंकार, जयचंद्र १००

विमल सूरि ८०, ८२

विल्सन ११, १६, १८, २४

वेबर ९१, ९२, ९४, ९५

शंकर देव ७२

गर्मा, भद्रदत्त १३

शास्त्री, रजनीकांत १६, १००

शृंग १५५

शेषदत्त ३५

श्यामसुन्दरदास ११

श्रीधर ७२

मंघ्याकर ६८

सहाय, शिवनंदन १२, ३४

माई, मोहन २७

साकृत्यायन' राहुल ८०

सिंह, नामवर १३९, १४०

सीताराम, लाला १२

सुतीक्ष्ण ४७

सुभट्ट ६८

सूरदाम ३६, ७२, १४३, १५०

मोंगर, शिवसिंह ११, १६

मेन, दिनेशचंद्र ७१, ९२, ९३, ९५,
९६, ९८

मोनेरा ९१

स्मिथ ३०

स्वर्यभू देव ८०, १३८

हरदत्त ६८

हस्तिमल्ल ६८

होमर ९२

ह्वीलर ९३

